लोकायतन और परवर्ती पंत काव्य

LOKAYATHAN AUR PARAVARTHI PANT KAVYA

Thesis submitted to the

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

For the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

R. LATHIKA BAI

SUPERVISING TEACHER

DR. N. RAMAN NAIR
PROFESSOR AND HEAD OF THE DEPARTMENT
(DEAN, FACULTY OF HUMANITIES)

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN - 682 022

1988

CERTIFICATE.

This is to certify that this THESIS is a bonafide record of work carried out by Smt. R. LATHIKA BAI under my supervision for Ph.D. and no part of this has hitherto been submitted for degree in any University.

Dr. N. RAMAN NAIR
(Supervising teacher)

Department of Hindi,
Cochin University of
Science & Technology,
COCHIN Pin 682022
Date 10.10.1988

ACKNOWLEDGEMENT

This work was carried out in the Department of Hindi Cochin University of Science & Technology, Cochin - 22 during the tenure of fellowship awarded to me by the University Grants Commission. I sincerely express my gratitude to the Cochin University of Science & Technology and University Grants Commission for their help and encouragement.

R. LATHIKA BAI

Department of Hindi,
Cochin University of
Science and Technology,
COCHIN, Pin 682022,

Date 10.10.1988

प्राक्कथन

प्राक्कथन

बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक से लेकर आठवें दशक के उत्तरार्द्ध तक व्याप्त सुमित्रानंदन पन्त जी का कृतित्व आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपना अनुपम स्थान रखता है । छायावाद के उन्नायक एवं उसके श्रेष्ठ सुकुमार कवि के रूप में ही नहीं, प्रगतिवाद के पुरस्कर्ता एवं नवचेतनावाद के प्रौढ कवि के रूप में भी पन्त जी हिन्दी काव्यजगत् में सदा स्मरणीय रहेंगे ।

एक विकासशील कवि होने के कारण पन्त जी की कला में समयानुकूल अनेक परिवर्तन आ गये हैं । भावात्मकता, कल्पनात्मकता एवं वैचारिक सुबोधता उनके काव्य में सर्वत्र मिलती है । इनकी आरंभकालीन छायावादी रचनाओं में प्रेम, प्रकृति और श्रृंगार की मनोरम झाँकियाँ मिलती हैं तो "युगांत", "युगवाणी", "ग्राम्या" आदि रचनाओं में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति और बाद के स्वर्णकाव्यों में आध्यात्मिक चेतना का विकास मिलता है । सारी आध्यात्मिक चेतना "लोकायतन" तथा परवर्ती काव्यों में एक दार्शनिक समाजवादी चेतना के रूप में अभिव्यक्त होती है ।

हिन्दी साहित्य में पन्त की आरंभकालीन छायावादी रचनाओं और मध्यकालीन सामाजिक-यथार्थवादी रचनाओं पर अनेक लोगों ने शोध किया है। किन्तु "लोकायतन" से आरंभ होकर "संक्रांति" तक व्याप्त उनकी परवर्ती काव्यकृतियों का समग्र अध्ययन अभी तक देखने में नहीं आया। लोकायतन" और परवर्ती रचनाओं का पन्त-काव्य के इतिहास में एक विशेष महत्व है। पन्तजी ने काव्यसरिणी के छायावादी, रहस्यवादी और प्रगतिवादी हर मोड के स्पंदन को पहचान लिया था और उसके अनुरूप उनकी काव्यधारा भी बदलती रही। ऐसी अवस्था में पन्तजी की परवर्ती रचनाओं में समसामयिक हिन्दी काव्य-बोध का कहाँ तक प्रभाव हुआ है वह एक विचारणीय विषय है।

"लोकायतन" और परवर्ती रचनाओं की एक विशद अंतरंग परिचर्या के द्वारा उनमें अभिव्यक्त दार्शनिक, सामाजिक, राजनीतिक विचारधाराओं और प्राकृतिक दृश्यांकनों तथा मौलिक विशेषताओं का आकलन करना प्रस्तुत प्रबन्ध का लक्ष्य है। छायावाद के चतुर्स्तम्भों में एकमात्र प्रसादजी ने "कामायनी" नामक एक महाकाव्य लिखा था, जिसके कारण उनको खूब ख्याति प्राप्त हुई। लेकिन छायावाद के पतन के दशकों बाद उसके उन्नायक कवि पन्तजी ने जिन दो महान महाकाव्यों "लोकायतन" और "सत्यकाम" की रचना की है, उनकी ओर अभी तक पाठकों का विशेष ध्यान नहीं गया है। ये दोनों महाकाव्य पन्त-काव्य के विकास में कहाँ तक महत्वपूर्ण हैं, इसका विवेचन पन्त के काव्य-जीवन की पृष्ठभूमि में करना रोचक होगा। चूँकि इस ओर अभी तक आलोचकों का ध्यान अधिक नहीं गया है इसलिये पन्त के इन परवर्ती काव्यों का अध्ययन एक साहित्यिक अनिवार्यता बन गया है। अत: अब पन्तजी के स्वर्गवास के दस वर्ष के उपरान्त, उनके पूरे काव्य-संसार का पुनर्मूल्यांकन करना उचित एवं प्रासंगिक महसूस होता है। इस दिशा में एक शुभारंभ है पन्तजी के परवर्ती काव्यों का प्रस्तुत अध्ययन। इस प्रबन्ध के हर एक अध्याय में सुदीर्घ भूमिकाओं से बचकर सीधे काव्यभूमि पर उतरने का प्रयास मैं ने किया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध को आठ अध्यायों में विभाजित किया गया है । प्रथम अध्याय में, "पन्त का व्यक्तित्व और कृतित्व" में उनकी कृतियों के द्वारा उनके महान व्यक्तित्व को परखने की कोशिश की गयी है । पन्त जी के काव्य में समय समय पर जितने मोड आये हैं उतने कदाचित् ही अन्य किसी आधुनिक हिन्दी कवि में मिलते हैं । प्रारंभिक कृति "वीणा" से लेकर अंतिम काव्य "संक्राति" तक अनेक परिवर्तन और मोड आये हैं । कविरूप में उनका अंतिम लक्ष्य मानव का उन्नयन है ।

दूसरे अध्याय में "लोकायतन कृति-परिचय" में लोकायतन की कथावास्तु, चरित्र-चित्रण और उद्देश्य की विस्तृत चर्चा की गयी है ।

तीसरे अध्याय में "लोकायतन की परवर्ती रचनायें" में सभी कृतियों की विशद चर्चा की है । प्रस्तुत अध्याय में यह स्पष्ट किया गया है कि नवीन मूल्य बोध से भरे हुए इन परवर्ती काव्यों में कवि की समन्वय भावना लक्षित है ।

चौथे अध्याय में लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में अभिव्यक्त दार्शनिक विचारधारा का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इसमें पन्तजी की दार्शनिक विचारधारा का विश्लेषण किया गया है ।

पाँचवें अध्याय में लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में सामाजिक और राजनीतिक विचारधारा का अध्ययन प्रस्तुत है ।

छठे अध्याय में "लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में शिल्पपक्ष" में काव्य भाषा, बिम्ब, प्रतीक, अप्रस्तुत योजना एवं छंद योजना की चर्चा की है ।

पन्त की काव्य भाषा के विकास की दृष्टि से परवर्ती रचनायें महत्वपूर्ण हैं । प्रारंभिक रचनाओं की कोमलकांत पदावली इन रचनाओं में दार्शनिक एवं बौद्धिक हो गयी है । बौद्धिकता के कारण इस काल की भाषा अधिक सूत्रात्मक और प्रौढ हो गयी । इन काव्यों में पन्तजी अनेक नये नये शब्दों के जन्मदाता हैं । व्याकरण के जड बन्धनों को माननेवाले नहीं । दार्शनिक तत्वों से भरे हुए उनके बिम्ब परवर्ती रचनाओं की बडी उपलब्धि है । प्रस्तुत अध्याय में शिल्पपक्ष के सब तत्वों पर विचार किया गया है ।

सातवें अध्याय में लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में प्रकृति-चित्रण में उनकी काव्ययात्रा के विभिन्न चरणों के प्रकृति चित्रण का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए परवर्ती रचनाओं के प्रकृति चित्रण की विशेषतायें उद्घाटित की गयी हैं । लोकायतन और परवर्ती रचनाओं के प्रकृति वर्णन में पन्तजी के विचारक या दार्शनिक रूप ही प्रमुख है ।

उपसंहार के रूप में उपर्युक्त अध्यायों के अध्ययन के आधार पर "लोकायतन और परवर्ती रचनाओं" का समग्र मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है । प्रस्तुत प्रसंग में पन्तजी की समन्वयात्मक काव्यदृष्टि को स्पष्ट करने का प्रयत्नकिया है । इस प्रकार 1964 में प्रकाशित "लोकायतन" से लेकर 1977 में प्रकाशित "संक्रांति" तक की पन्तजी की काव्यकृतियों का अन्तरंग तथा बहिरंग विशद विवेचन तथा मूल्यांकन प्रस्तुत करने का प्रयास इस शोधप्रबन्ध में किया गया है ।

प्रस्तुत शोध का प्रणयन कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग के अध्यक्ष एवं प्रोफसर गुरुदेव डॉ॰ एन॰ रामन नायर के निर्देशन में हुआ । इस शोध प्रबन्ध की निर्विघ्न परिसमाप्ति केलिये उन्होंने जो सुझाव एवं मार्ग-दर्शन दिया है उसकेलिये उनके प्रति बहुत आभारी हूं ।

शोधकार्य की पूर्ति में मुझे हिन्दी विभाग के प्रोफसर डॉ. पी.वी. विजयन से जो प्रोत्साहन और सहायता प्राप्त हुई है मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूं ।

कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के पुस्तकालय की अध्यक्षा श्रीमती कुञ्ञिक्कावुट्टी तंपुरान तथा सहायक एम.ए. अमीन के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकाशित करती हूं । इसके अलावा गुजरात विद्यापीठ, गुजरात विश्वविद्यालय, बंबई विश्वविद्यालय, बंबई विद्यापीठ के पुस्तकालयों के प्रति भी मैं आभारी हूं ।

शोधकार्य के संदर्भ में मुझे डॉ. शिवकुमार मिश्र, अध्यक्ष, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, गुजरात, डॉ. कुंजबिहारी वार्ष्णेय, अध्यक्ष, गुजरात विद्यापीठ और डॉ. तारकनाथ बाली, प्रोफसर, दिल्ली विश्वविद्यालय आदि हिन्दी के प्रतिष्ठित आलोचकों से विचार-विमर्श करने का सौभाग्य मिला है, उनके प्रति मैं कृतज्ञता प्रकाशित करती हूं ।

कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के अधिकारियों और यू.जी.सी. के अधिकारियों के प्रति भी मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूं ।

जिन जिन लोगों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस शोध-प्रबन्ध के प्रस्तुतीकरण में सहयोग दिया है उन सब के प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं ।

हिन्दी विभाग,
कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय, कोचिन
तारीख 10.10.1988

लतिकाबाई, आर.

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय — 1 - 59

1. पन्तजी का व्यक्तित्व और कृतित्व

1.1. जीवन - चित्र
1.2. काव्य - व्यक्तित्व और उसका विकास क्रम
1.2.1. जीवन के प्रति उन्मुखता
1.2.2. भावदृष्टि
1.2.3. जीवन दर्शन
1.2.4. पूर्णता की खोज
1.2.5. सामंजस्य-भावना
1.3. पन्त - काव्य के विभिन्न मोड़
1.3.1. प्रथम चरण सौंदर्य चेतना का युग
1.3.2. द्वितीय चरण समाज चेतना का युग
1.3.3. तृतीय चरण अध्यात्म चेतना का युग
1.4. निष्कर्ष

दूसरा अध्याय — 60 - 104

2. लोकायतन : कृति परिचय

2.1. लोकायतन में प्रबन्ध योजना के लक्षण
2.1.1. कथावस्तु और उसका संघटन

पृष्ठ संख्या

2•1•2•	नामकरण
2•1•3•	उद्देश्य
2•1•4•	रस और भाव व्यंजना
2•1•5•	नायक और चरित्र चित्रण
2•1•6•	वस्तु वर्णन
2•1•6•1•	नमक सत्याग्रह वर्णन
2•1•6•2•	भारत विभाजन
2•1•6•3•	असहयोग आन्दोलन
2•1•6•4•	यात्रा वर्णन
2•1•6•5•	वासन्ती पर्व वर्णन
2•1•6•6•	प्रकृति वर्णन
2•1•7•	भाषा, शब्द चयन और छन्द
2•1•8•	लोकायतन का शिल्प
2•1•8•1•	प्रतीक
2•1•8•2•	बिम्ब
2•1•8•3•	छंद
2•2•	लोकायतन में अभिव्यक्त कल्पना
2•2•1•	भावी समाज और संस्कृति
2•2•2•	पात्र योजना में कल्पना
2•2•3•	दृश्यविधान में कल्पना
2•3•	निष्कर्ष ।

पृष्ठ संख्या

तीसरा अध्याय 105 - 176

3. लोकायतन की परवर्ती रचनायें

3.1. किरणवीणा
3.2. पुरुषोत्तम राम
3.3. पौ फटने से पहले
3.4. पतझर एक भाव क्रांति
3.5. गीतहंस
3.6. शंखध्वनि
3.7. शशि की तरी
3.8. समाधिता
3.9. आस्था
3.10. सत्यकाम
3.10.1. कथावस्तु जिज्ञासा
3.10.2. जबाला
3.10.3. दीक्षा
3.10.4. मन का निर्जन
3.10.5. प्राण ब्रह्म
3.10.6. साक्षात्कार
3.10.7. ब्रह्माग्नि
3.10.8. आत्मब्रह्म
3.10.9. जीवब्रह्म
3.10.10. गुरुकुल
3.10.11. मातृशक्ति

पृष्ठ संख्या

3·10·12· सत्यकाम की विशेषतायें
3·11· गीत - अगीत
3·12· संक्रांति
3·13· निष्कर्ष ।

चौथा अध्याय 177 - 249

4· लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में पन्त की दार्शनिक विचार-धारा

4·1· पन्त की दार्शनिक विचारधारा
4·2· उपनिषद् दर्शन
4·3· शंकर वेदान्त
4·4· विवेकानंद की विचारधारा
4·5· गांधीवादी दर्शन
4·6· सर्वात्मवाद
4·7· पन्तजी का नवीन जीवन दर्शन
4·8· अरविंद दर्शन
4·8·1· ब्रह्म
4·8·2· जीवात्मा
4·8·3· जगत्
4·8·4· अतिमानस
4·8·5· मोक्ष
4·9· अरविंद दर्शन के मूल सिद्धांत लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में

पृष्ठ संख्या

4·9·1· ब्रह्म

4·9·2· जगत्

4·9·3· जीवात्मा

4·9·4· अतिमानस

4·9·5· मोक्ष

4·10· लोकायतन और परवर्ती काव्यों पर अरविंद-दर्शन के विशिष्ट सिद्धान्तों का प्रभाव

4·10·1· विकास सिद्धांत

4·10·2· रूपान्तर सिद्धांत

4·10·3· अवरोहण - आरोहण सिद्धान्त

4·10·4· अवतार सिद्धान्त

4·10·5· साधना सिद्धान्त

4·11· निष्कर्ष

पाँचवाँ अध्याय 250 - 335

5· लोकायतन और परवर्ती रचनाओं की सामाजिक और राजनीतिक विचारधारा

5·1· भावी मानव

5·1·1· मानवतावाद

पृष्ठ संख्या

5·2· नवीन जीवन मूल्य
5·2·1· जाति-पाँति, वर्ग-भेद, ऊँच-नीच आदि के स्थान पर समानता
5·2·2· नारी
5·2·3· शादी
5·2·4· दहेज प्रथा
5·2·5· परिवार नियोजन
5·2·6· बच्चों के प्रति
5·2·7· शिक्षा
5·2·8· कर्मण्यता की प्रधानता
5·2·9· विश्व-बन्धुत्व
5·2·10· मित्रता
5·2·11· मध्यवर्ग
5·2·12· अतियान्त्रिकता
5·2·13· जीवन में समन्वयवाद की प्रधानता
5·2·14· प्रेम की विशुद्धि
5·3· भावी समाज एवं संस्कृति का स्वरूप
5·4· राजनीतिक विचार-धारा
5·5· निष्कर्ष ।

छठा अध्याय 336 - 407

6· लोकायतन और परवर्ती रचनाओं का शिल्पपक्ष

6·1· भाषा
6·2· बिम्ब विधान

पृष्ठ संख्या

6·3· प्रतीक विधान

6·4· अप्रस्तुत विधान

6·5· छन्द योजना

6·6· काव्य रूप

6·1·1· ध्वनीय विश्लेषण

6·1·2· शाब्दीय विश्लेषण

6·1·3· मुहावरों का प्रयोग

6·1·4· व्याकरणिक प्रयोग

6·1·5· तुक

6·1·6· संगीत

6·1·2·1· संस्कृत के शब्द

6·1·2·2· उर्दू एवं फारसी के शब्द

6·1·2·3· अँग्रेज़ी के शब्द

6·1·2·4· ग्रामीण और आंचलिक शब्द

6·1·2·5· नूतन शब्द निर्माण

6·1·2·6· बहु प्रयुक्त शब्द

6·2·1· पन्तजी के काव्य में बिम्ब-विधान

6·2·2· ऐन्द्रिक बिम्ब

6·2·2·1· दृश्य बिम्ब

6·2·2·2· स्पर्श बिम्ब

6·2·2·3· घ्राण बिम्ब

6·2·2·4· श्रवण बिम्ब

6·2·3· मानस बिम्ब

6·2·4· इतर बिम्ब

6·3·1· सांस्कृतिक और मिथकीय प्रतीक

पृष्ठ संख्या

6.3.2.	ऐतिहासिक प्रतीक
6.3.3.	साहित्यिक प्रतीक
6.3.4.	राजनीतिक प्रतीक
6.3.5.	रूढ़ या परम्परागत प्रतीक
6.3.6.	अध्यात्म चेतना प्रतीक
6.4.1.	परम्परागत अलंकार
6.4.1.1.	मालोपमा
6.4.1.2.	उपमान
6.4.1.3.	उत्प्रेक्षा
6.4.1.4.	काव्यलिंग
6.4.1.5.	निदर्शना
6.4.1.6.	दृष्टान्त
6.4.1.7.	अपह्नुति
6.4.2.	पाश्चात्य अलंकार
6.4.2.1.	मानवीकरण
6.4.2.2.	विशेषण विपर्यय
6.5.1.	अहीर
6.5.2.	पद्मिर
6.5.3.	अरिल्ल
6.5.4.	डिल्ला
6.5.5.	तरल नयन
6.5.6.	योग
6.5.7.	सुखदा
6.5.8.	कोकिला
6.5.9.	हीर

6.5.10. रोला

6.5.11. विषम मात्रिक छन्द

6.5.12. मिश्र छन्द

6.5.13. नवीन छन्द

6.5.14. विदेशी छंद

6.5.15. शोक गीति

6.5.16. मुक्त छन्द

6.7. निष्कर्ष ।

सातवाँ अध्याय

7. लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में प्रकृति-चित्रण

7.1. प्रकृति का नैसर्गिक सौंदर्य चित्रण

7.2. बिम्ब विधान ।

7.3. प्रतीक रूप ।

7.4. मानवीकरण ।

7.5. रहस्यमय रूप ।

7.6. निष्कर्ष ।

आठवाँ अध्याय

उपसंहार

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

पहला अध्याय

पन्तजी का व्यक्तित्व और कृतित्व

पहला अध्याय

1. पन्तजी का व्यक्तित्व और कृतित्व

पन्तजी के काव्य को समझने केलिये उनके साधारण व्यक्तित्व और काव्य-व्यक्तित्व के विकास का समानांतर अध्ययन अत्यंत आवश्यक है । व्यक्तिगत जीवन में पन्तजी जैसे शालीन, मधुर, अभिजात, सहानुभूतिशील और बौद्धिक हैं वैसे ही अपने काव्य में भी । उनके साधारण व्यक्तित्व का जिस क्रम से विभिन्न प्रभावों के अन्तर्गत तथा अपनी स्वाभाविक प्रेरणा का विकास हुआ, उनका काव्य-व्यक्तित्व भी उसी क्रम से विकसित हुआ । इसलिये पन्त के संदर्भ में इन दोनों का अध्ययन समान रूप से महत्वपूर्ण है ।

1.1 जीवन चित्र

अल्मोडे जिले के कौसानी गाँव में पन्त का जन्म 20 मई सन् 1900 को हुआ । उनके पिताजी गंगादत्तजी चाय बगीचे की मैनेजरी के साथ ही

मकान बनाने की लकडी का व्यापार करते थे । बचपन में उनका नाम गोसाईंदत्त था । माता सरस्वती देवी पुत्र जन्म के कुछ ही घंटों बाद चल बसीं, पर माँ की गोद का अभाव प्रकृति की गोद ने बहुत कुछ पूरा किया उनका जन्म स्थान प्राकृतिक दृष्टि से बहुत सुन्दर है । प्रकृति के कवि के रूप में पन्त की जो प्रसिद्धि हुई उसकी पृष्ठभूमि कौसानी के प्राकृतिक वातावरण में निर्मित हुई । बाल्यकाल में प्रकृति का जो साहचर्य उनको प्राप्त हुआ वह उनके मन-प्राणों पर सदैव किसी न किसी रूप में छाया रहा है । प्रकृति में उन्होंने एक व्यापक चेतना का स्फुरण और मानवीय जगत् के प्रति संवेदनशीलता देखी । उनके कवि व्यक्तित्व के प्रस्फुटन केलिये, उनके बचपन में ही सभी परिस्थितियाँ अनुकूल बन गयीं ।

बच्चों के विकास और शिक्षा केलिये पन्त प्रकृति को अनिवार्य शिक्षक मानते हैं "बचपन में मुझे पुस्तकों से कहीं अधिक कौसानी की हँसमुख चंचल हरियाली ने और स्वच्छ नीले आसमान ने सिखाया है । मेरे मन में उसने अपनी स्वच्छता और सुंदरता की अमिट छाप लगा दी है । मैं बराबर सोचा करता हूँ कि बच्चों को प्रकृति के खुले आँगन में अपना अधिक समय बिताना चाहिये । धरती की हरियाली, आसमान की नीलिमा, नदी और तालाबों के पानी की स्वच्छता, धूप का उजलापन और हवा की निर्मल चंचलता उन्हें अनजाने में चुपचाप जो पाठ सिखाती है अथवा जो सीख देती है वह बचपन में पुस्तकों को रटने से नहीं सकती । इसलिये बच्चों को कमरे में छिपी हुई कालीनों के बदले हरी-भरी धरती और दूब के मैदानों को अधिक प्यार करना चाहिये ।"[1]

---

1. सुमित्रानंदन पन्त जीवन और साहित्य प्रथम खण्ड
- शांति जोशी, पृ.45

स्वभाव से कुछ अन्तर्मुखी होने के कारण समवयस्कों से विशेष मित्रता तो थी नहीं, उनका अधिक से अधिक समय प्रकृति निरीक्षण और साहित्यिक कृतियों की संगति में ही बीतने लगा । बचपन में उन्हें प्रकृति और पिता दो ही संबल थे । "फूल, पक्षी तथा कल्पना लोक की झाँकियाँ पन्त को प्रिय थीं जिनका अद्वितीय आह्लाद कक्षा की एकरसता में दुष्प्राप्य था ।[1]"

1916-1917 की जाडे की छुट्टियों में "हार" उपन्यास लिखा । बनारस में रहते समय उनका परिचय रवीन्द्र तथा श्रीमती सरोजिनी नायडू के साहित्य से हुआ । संस्कृत के कवियों में विशेषतः कालिदास और भवभूति का जमकर अध्ययन करने का अवसर मिला । हिन्दी में रीतिकाल के कवियों का उन्होंने खूब अध्ययन किया । इन विभिन्न प्रभावों का प्रतिफलन "वीणा" और "ग्रंथि" में स्पष्ट देखा जा सकता है । अंग्रेजी के नव स्वच्छंदतावादी कवियों - वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स आदि का अध्ययन भी उन्होंने किया । 1921 में आनंद भवन में गाँधीजी के भाषण सुनने का भाग्य उनको मिला । उससे कुछ प्रभावित होकर और बहुत कुछ अपने भाई की प्रेरणा से पढाई बीच में ही छोड दी । इसके बाद मानसिक बौद्धिक स्तर पर भी और जीवन की ठोस भौतिक भूमि पर भी उन्हें लगातार संघर्ष में जीना पडा । उस अशांति के परिहार केलिये उन्होंने अध्यात्म और दर्शन में मन लगाया । उपनिषद्, गीता, रामायण, रामकृष्ण-वचनामृत, विवेकानंद, रामतीर्थ, पतंजलि, योग-वाशिष्ठ्य, रस्किन, टॉल्स्टॉय, कार्लाइल, थोरा, इमरसन आदि का गंभीर अध्ययन उन्होंने किया ।

---

1. सुमित्रानंदन पन्त जीवन और साहित्य प्रथम खण्ड
- शांति जोशी, पृ.50

सन् 1926 में "पल्लव" प्रकाशित हुआ । पिछले अध्ययन तथा प्रभावों के साथ "पल्लव" की कविताओं में उन्नीसवीं शती के अंग्रेज़ कवियों का विशेष प्रभाव रहा है । पल्लव की लंबी कवितायें - विशेषतः "परिवर्तन" कवि के मानसिक अन्तःसंघर्ष और बौद्धिक मंथन का परिचय देती है । इस समय तक कवि के मन पर चल रहा एक तरह का संघर्ष समाप्त ही हुआ था कि दूसरा संघर्ष प्रारंभ हो गया । इसी बीच पन्त के परिवार की आर्थिक स्थिति भी डावांडोल हो गयी । भाई और पिताजी की मृत्यु ने पन्त के दुःख को और भी बढ़ा दिया । पर इतने मानसिक तनावों व दबावों को झेलकर भी कवि का मन कहीं कुंठित नहीं हुआ । उनके "गुंजन" और "ज्योत्स्ना" में हम इन विषम परिस्थितियों की कोई छाया नहीं पाते । यह हमारे कवि की असाधारण तटस्थता और साहस का परिचायक है । निस्संदेह वेदान्ती की सी समत्व भावना के साथ उन्होंने सुख-दुख को ग्रहण किया ।

कालाकांकर में प्रायः दो वर्ष रहने के बाद पन्तजी अल्मोड़े लौट आये । वहाँ उन्होंने मार्क्स तथा फ्राइड को ध्यान से पढ़ा । गान्धीजी के नेतृत्व में आदर्शवादी कर्मवादिता का जो प्रकाशन देशव्यापी असहयोग आन्दोलन में देखने में आया, उसका प्रभाव तो उनपर रहा ही था, अब रूसी क्रांति के बाद सामाजिक यथार्थ की जो नवीन अवधारणा प्रतिष्ठित हुई उसका भी प्रभाव वे ग्रहण करने लगे । इन सब की सम्मिलित प्रतिक्रिया स्वरूप विश्वजीवन तथा मानव जीवन के प्रति उनकी आस्था तथा आशा बढ़ती ही गयी । इस काल के इस नवीन भाव तथा विचार जगत् को पन्तजी ने अपने काव्य संग्रह "युगान्त" तथा कहानियों में प्रारंभिक अभिव्यक्ति दी ।

"युगान्त" में पहली बार उनका ध्यान प्रकृति-मुख से हटकर मानव-मुख पर गया । इस कृति से मानवीय दुःख दर्द के प्रति प्रतिबद्धता का जो सिलसिला शुरू हुआ था वह रूप बदलकर आखिर तक जारी रहा। विभिन्न स्तरों पर मानवीय समस्याओं से जूझकर मानवीय पूर्णता की खोज का प्रयास "पल्लव" के बाद की सारी रचनाओं में मिलता है । निश्चित रूप से इस जीवनोन्मुखता की बहुत सी पृष्ठभूमि इसी काल में व्यक्तिगत समस्याओं, मार्क्सवाद के अध्ययन तथा साथ ही बाइबिल के पारायण द्वारा निर्मित हुई । इसी समय गाँधीजी से उनकी मुलाकात हुई । गाँधीजी के कारण पन्तजी की अपनी चेतना या आत्मा में एक नवीन तेजोमय सात्त्विकता का आविर्भाव हुआ । जिस प्रकार भी हो, पन्त के कवि-व्यक्तित्व पर गाँधीजी का प्रभाव अधिक स्पष्ट रूप से उनके काव्य में ही रेखांकित किया जा सकता है ।

1936 में पन्तजी कालाकांकर चले गये । राष्ट्रीय आंदोलनों की प्रतिध्वनि कालाकांकर में भी सुनाई देती थी । इसलिये कालाकांकर के एकांत में भी महात्मागाँधी के उपवासों तथा आमरण व्रतों से कवि का मन उद्वेलित होता रहता था और वे सतत् देशव्यापी मुक्ति आन्दोलन से नाना स्तरों पर अपने को जुडा हुआ पाते थे । वास्तव में इन्हीं परिस्थितियों और मनःस्थिति में उन्होंने "युगवाणी" और "ग्राम्या" की रचना की । यहाँ तक आते आते कवि स्पष्टतः एक वस्तुनिष्ठ दृष्टि से अपने चारों ओर के संसार को देखने लगे और उसकी विषमताओं और विसंगतियों के मूल में जाकर उनका निदान खोज निकालने केलिये व्यग्र हुआ । "युगवाणी" में और बाद में "ग्राम्या" में यह भी स्पष्ट दिखाई दिया कि कवि ने एक ही समय पडे हुए दो प्रभावों - मार्क्सवाद और गाँधीवाद को किस प्रकार आत्मसात् किया

गांधीजी के सांस्कृतिक दृष्टिकोण से पन्त यहाँ उतने ही प्रभावित दिखाई पड़ते हैं, जितने मार्क्स के वस्तुवादी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से । दोनों परस्पर असमान विचारधारायें उन्नत: पन्त की नवीन जीवन दृष्टि में एक ही भूमिका में उतारी गयी है । यह इस बात का प्रमाण है कि पन्त का स्वतंत्र विचारक व्यक्तित्व भी उनके कवि-व्यक्तित्व से कम गौरवशाली नहीं है

सन् 1940 में पन्तजी कालाकांकर छोड़कर अल्मोडा चले गये । "ग्राम्या" के लेखन के बाद से ही पन्त को अनुभव होने लगा था कि राजनीतिक, आर्थिक संघर्ष के साथ ही मनुष्य की नवीन मानसिक संरचना केलिये एक सांस्कृतिक आन्दोलन की भी उतनी ही आवश्यकता है । इसी प्रेरणा से वशीभूत होकर उन्होंने सन् 1942 में "लोकायतन" नाम से एक व्यापक संस्कृति पीठ की योजना बनाई, जिसमें रंगमंच को सांस्कृतिक प्रेरणा का माध्यम बनाने का विचार किया गया था । 1943 में उन्होंने दो तीन महीने तक उदयशंकर के दल के साथ भारत भ्रमण भी किया, पर इससे उनके मन के अवसाद और अशांति को कोई समाधान न मिल सका । उनके मन में अकेले गांधीवाद या अकेले मार्क्सवाद के प्रति असंतोष का जो क्षीण स्वर "युगवाणी", "ग्राम्या" में ही परिलक्षित होता है, वह अब अधिक तीव्र होकर उनके मन को मथने लगा था । उन्हें लगने लगा था कि बाह्यरूप से एक सुव्यवस्थित तंत्र में रहने पर भी यदि मानव जीवन भीतर से उन्नत न हो सके और यदि उसमें उच्चतम मानवीय गुणों का विकास होने के बदले वह केवल समतल शक्तियों से जूझने केलिये मात्र बन जाय और उसे मनुष्यत्व के मूल्य पर बाह्य व्यवस्था तथा संतुलन स्थापित करना पडे तो ऐसा समाज या तंत्र और जिसके भी योग्य हो, मनुष्य के योग्य नहीं कहा जा सकता ।

उदयशंकर के दल के साथ पन्तजी पांडिचेरी, श्री अरविन्द-आश्रम गये । श्री• अरविन्द-आश्रम के वातावरण से अज्ञात ढंग से वे अत्यन्त प्रभावित हुए । आश्रम के स्वस्थ आत्मिक प्रभाव के अतिरिक्त श्री अरविंद के संपर्क से उनकी अध्यात्मिकता संबंधी नवधारणायें और भी पुष्ट और

संवलित हुई । इस दक्षिण भारत प्रवासकाल में ही पन्त ने अपनी दो कविता संग्रहों "स्वर्णकिरण" तथा "स्वर्णधूलि" की कवितायें लिखीं । इन रचनाओं में कवि की नवीन जीवन दृष्टि तथा काव्यदृष्टि को स्वाभाविक अभिव्यक्ति मिली । सन् 1949 में लिखी "उत्तरा" में भी उन्होंने वही जीवन दृष्टि दिखायी है ।

1950 में पन्तजी आल इन्डिया रेडियो में परामर्शदाता के पद पर नियुक्त हुए । सन् 1957 तक वे रेडियो से सीधे संबद्ध रहे । इसी बीच उनके "रजतशिखर", "शिल्पी", "अतिमा" और "सौवर्ण" ये चार काव्यसंग्रह पकाशित हुए । 1958 में "वाणी" प्रकाशित हुई । इस प्रकार "स्वर्णकिरण" और "स्वर्णधूलि" से लेकर "वाणी" तक की काव्ययात्रा कवि पन्त की बहु-आयामी जीवन दृष्टि का प्रकाशन करती है । उनकी बाद की कृतियों में भी बराबर इस स्वर की प्रधानता रही है । यह जीवन दर्शन उनकी अगली कृतियों में भी बराबर हमारे कवि का संबल बना है । अवश्य ही उनकी बाद की और कृतियों में भाव, विचार और कला के नये नये स्तर उद्घाटित हुए हैं, पर उन सब के मूल में यह जीवन दर्शन सदैव सक्रिय रहा है जिसमें संदेह नहीं ।

1858 में "कला और "बूढा चाँद" का प्रकाशन हुआ । निस्संदेह रूपविधान की दृष्टि से यह संग्रह पिछले संग्रहों से कुछ भिन्न है । बिम्ब-योजनायें बहुत नयी है । 1958 में ही चिदम्बरा का भी प्रकाशन हुआ । इसमें "युगवाणी" से "अतिमा" तक की रचनाओं का संचयन है । 1961 में राष्ट्रपति की ओर से "पद्मभूषण" की उपाधि इस कृति केलिये प्राप्त हुई । इसी वर्ष "कला और बूढा चाँद" पर साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कार प्राप्त हुआ ।

1964 में "लोकायतन" प्रकाशित हुआ । लोकायतन कदाचित् पन्त की सर्वाधिक विवादग्रस्त कृति रही है । यह पन्त के नवीन चेतनावाद का उत्कर्ष बिन्दु है । इस कृति के बाद पन्त की "पौ फटने से पहले", "किरण-वीणा", "पतझर एक भाव क्रांति", "गीतहंस", "शंखध्वनि", "शशि की तरी", "समाधिता", "आस्था", "गीत-अगीत" और "संक्रांति" कृतियाँ आयीं । इन संग्रहों की कवितायें विकासवादी कही जा सकती हैं । इसी बीच साहित्य के क्षेत्र में असंख्य छोटे बड़े आन्दोलन आये और चले गये पर पन्त अन्त तक अपनी उसी अंतश्चेतना के सहारे सृजन के मार्ग पर बढ़ते रहे हैं । यह उनकी गहन रचनात्मक दृष्टि का ही परिचायक है कि उन्होंने अपनी नवीनतम कृतियों में भी साहित्य में व्याप्त अनास्था की धुंध के विरुद्ध अपनी आस्था और नवमानवता का अपना स्वप्न बनाये रखा है 1967 में विक्रम विश्वविद्यालय ने उन्हें डी॰लिट्॰ की उपाधि दी । 1968 में उन्हें भारतीय ज्ञानपीठ का एक लाख रूपये का पुरस्कार प्राप्त हुआ 1970 में वे साहित्य अकादमी के सामान्य सदस्य चुने गये । इस प्रकार अनेक संघर्षों के उपरान्त पन्त उस स्थिति को प्राप्त कर सके थे जिसे हम सफलता की स्थिति कह सकते हैं । बड़ी बात है कि व्यक्तिगत रूप से पन्तजी अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक कोमल, सौम्य, चिन्तनशील, एकांतप्रिय और दूसरों की भावनाओं का ध्यान रखनेवाले बने रहे ।

1·2· काव्य-व्यक्तित्व और उसका विकास क्रम

पन्त के साहित्य के किसी भी गंभीर अध्येता के समक्ष उनके समग्र विशिष्ट काव्य-व्यक्तित्व का एक स्पष्ट, परिभाष्य रूप उभरता है । पन्त के काव्य व्यक्तित्व को उसकी समग्रता में समझे बिना न तो उनकी

बृहद् काव्य-यात्रा को ठीक ठीक आकलित किया जा सकता है, न उनके काव्य में प्रकट होनेवाले कुछ ऊपरी विरोधाभासों को सही परिप्रेक्ष्य में रखकर निरसित ही किया जा सकता है ।

1·2·1· जीवन के प्रति उन्मुखता

पन्त के काव्य-व्यक्तित्व की पहली विशेषता यह है कि जीवन के प्रति उनकी सहज उन्मुखता। पन्तजी सदैव अपने को जीवन की गति के केन्द्र में स्थापित करते रहे और उस गति की धड़कनों को सीधे सुनते, अन्य शब्दों में वे समय का आंतरिक साक्षात्कार लगातार करते रहे । संवेदनशील कवि के लिये बाह्य जीवन-व्यापार भी अपने अन्तस में सतत् घटती हुई एक प्रक्रिया है जो उसकी चेतना को बराबर परिचालित करती रहती है । कोई कवि अंतर्मुख है या बहिर्मुख, यह बात प्राय: जीवन के प्रति उसकी उन्मुखता का स्वरूप निश्चित करती है, इसमे संदेह नहीं ।

पन्त ने प्रारंभिक कृति "वीणा" में सरस्वती से यह आशीर्वाद मांगा था -

अधरामृत से इन निर्जीवित
शब्दों में जीवन लाओ,
आँखों ने जो देखा, कर को
उसे खींचना सिखलाओ ।[1]

ये पंक्तियाँ 1918 में लिखी हुई थीं । उस काल में भी

1· वीणा - पन्त, पृ·2

पन्तजी की दृष्टि बाह्य "वास्तव" के प्रति ही थी, यह यहाँ स्पष्ट दिखाई देता है। पन्त की प्रकृति संबंधी कविताओं में इसी कारण प्रकृति अपने समस्त रूपाकार के साथ प्रस्तुत होती है, व्यक्तिगत भावों या आवेगों संवेगों के साथ लिपटी हुई, उन पर आश्रित अथवा उनसे निर्धारित होकर नहीं। पन्त की वृत्ति गोचर प्रकृति के रूपावयवों का सीधा साक्षात्कार करके उन्हीं में रमती है, उन्हें अपनी भावना के रंग में रंगकर नहीं देखती। वास्तव में पन्त की संवेदनात्मकता ही इस ढंग की है कि वे सीधे रूपात्मकता से प्रभावित होते हैं और उसी ताजगी के साथ वे अपने संवेदन को कविता में उतार भी देते हैं उसमें अपनी काँट-छाँट, विश्लेषण-संश्लेषण आदि का मेल नहीं करते।

यही बात मनोदशाओं और मन:स्थितियों के अंकन में भी दिखाई देती है। पन्तजी अपने पाठक को मनःस्थितियाँ और मनोदशायें देते हैं, गहन रूप से विश्लेषित और संश्लेषित भाव दृश्य नहीं। पन्त अन्त:स्थित भावों का आकलन-अध्ययन करके संश्लिष्ट भाव-चित्र प्रस्तुत करने की बजाय सांकेतिकता के सहारे उनके संवेदन को मूर्त कर देते हैं। संवेदन की ताजगी ही उनके भाव चित्रों की जान है, संश्लिष्टता नहीं। इसके उदाहरण भी पन्त के प्रथम चरण के काव्य से ही प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

इन बातों पर बल देने का तात्पर्य इतना ही था कि अपने काव्यकाल के जिस खण्ड में पन्त प्राय: अन्तर्मुख समझे गये हैं, उस खंड में भी वे वस्तुत: उस प्रकार अन्तर्मुख नहीं थे जिस प्रकार उदाहरणार्थ प्रसाद "कोई भी अन्तर्मुख कवि वस्तु अथवा भाव के संवेदनाजन्य प्रभाव तक ही अपने को नहीं रखता। उसके भीतर की तत्त्वव्यवस्था ऐसी होती है कि वह सतत् ताजा भावों और प्रतिक्रियाओं में हस्तक्षेप करती चलती है।

अन्तर्मुख कवि इसीलिये सहज ही विश्लेषण और संश्लेषण की प्रवृत्ति प्रदर्शित करने लगता है । इस वास्तवोन्मुखता के कारण ही पन्त अपने प्रथम चरण के काव्य में भी जीवन-विमुखता के दोष से बच गये हैं । जब छायावादी कविता का यौवन-काल था तब भी पन्त रहस्यवादी और स्वकीय दुःख आदि की निवृत्ति करनेवाली उक्तियों पर कम ही उतरे ।

पन्तजी की प्रेरणा सदैव अपने बाहर के जीवन से आती है । आत्मकेन्द्रित वे जीवन में कुछ रहे हों, साहित्य में कभी नहीं रहे । वास्तव में अरविंद का दर्शन, जिससे अपनी इस काव्यभूमि में पन्त प्रवाहित हुए थे, स्वयं भी अन्तर्मुख नहीं है । इस जीवनोन्मुखता के आग्रह के कारण इस दिशा में अरविंद से भी आगे बढ गये हैं । इसलिये आन्तरिक मुक्ति का लोकव्यापी प्रसंग पन्त की दृष्टि से कभी ओझल नहीं हुआ । उनकेलिये जिस प्रकार बाह्य बन्धनों से मुक्ति एक सामूहिक वस्तु है, उसी प्रकार आन्तरिक मुक्ति भी । पन्त की "लोकायतन" के बाद से "संक्रांति" तक उनकी दृष्टि सर्वत्र जीवनोन्मुख रही है । "वीणा" से "संक्रांति" तक की उनकी काव्य-यात्रा में यह जीवनोन्मुखता सदैव भिन्न भिन्न आयामों में प्रकट होती रही है । इसलिये निर्भ्रान्त रूप से इसे उनके काव्य-व्यक्तित्व की प्रथम विशेषता के रूप में स्वीकार किया जा सकता है ।

1·2·2· भावदृष्टि

"पन्त की काव्य-व्यक्तित्व की दूसरी विशेषता को उनकी भाव-दृष्टि कहा जायेगा । भाव-दृष्टि से तात्पर्य उस विचार पद्धति से है जो विश्लेषणमूलक बौद्धिक चिन्तन से भिन्न कवि स्वभावोचित चिन्तन से

उत्पन्न होती है । कवि पन्त में यह भाव पुष्ट होती हुई, यह अधिक प्रौढ रूप में उनकी बाद की रचनाओं में उभरती है । कुछ लोग उसे पन्त की बौद्धिकता कहते हैं । लेकिन बौद्धिकता से जिस विश्लेषणमूलक दृष्टि की अपेक्षा होती है, वह पन्त के काव्य में नहीं है । पन्त अपने चतुर्दिक के जीवन का सीधा सामना या साक्षात्कार करते हैं और उसे अपने ग्रहण के अनुरूप चित्रित कर देते हैं । विचारों का सामना भी वे इसी तरह करते हैं । ठहरकर वे अपने संवेदनों से विश्लिष्ट और संश्लिष्ट बौद्धिक विचार का रूप नहीं देते । इसका अर्थ यह नहीं है कि पन्त निष्कर्षों की खोज नहीं करते या उन्हें निष्कर्षों की उपलब्धि ही नहीं हुई । उनका समस्त परवर्तीकाव्य निष्कर्षों की उपलब्धि का काव्य है । यहाँ इतना ही कहना है कि निष्कर्षों की उपलब्धि उन्होंने बौद्धिक पद्धति की बजाय संवेदनात्मक पद्धति पर की । ऐसा न मानने पर उनकी सतत् परिवर्तनशीलता और विकासशीलता को समझ पाना कठिन होगा । बौद्धिक निर्णय बाँधते हैं, परिवर्तनशीलता उनमें बहुत कम होती है । इसलिये बौद्धिकता पन्त की दृष्टिकेलिये अनुपयुक्त या कम से कम अपर्याप्त शब्द है । भावदृष्टि से पन्त की बौद्धिकता का सही रूप सामने आता है । इसके अतिरिक्त एक और भी बात है । भावदृष्टि कहने से हमारे सामने पन्त के समस्त काव्य में आद्यन्त व्याप्त एक विशेष प्रवृत्ति आ जाती है ।

पन्तजी इतने संवेदनशील हैं कि कुछ काल तक भी जीवन से दृष्टि हटाकर बौद्धिक काट-छाँट में उलझना उनकेलिये प्राय: संभव नहीं होता । इसलिये विचारों का भी उन्होंने उसी प्रकार संवेदना के स्तर पर साक्षात्कार किया है जिस प्रकार दृश्य-चित्रों आदि का । उनकी अद्‌भुत संवेदन क्षमता को विचार जहाँ तक ग्राह्य हुए है, वहाँ तक उनका काव्य संवेदन का काव्य है, जहाँ विचार स्वतंत्र रूप से "कथित" हुए हैं

वहाँ संवेदना का योग न होने से काव्यात्मकता की हानि हुई है । अपनी स्वाभाविक वास्तवोन्मुखता के कारण वे प्रत्येक विचार को एकदम से खींचकर जीवन-संदर्भों में ले आते हैं । कोई विचार-पद्धति बौद्धिक विश्लेषण के हिसाब से ठीक है, सिर्फ इतने से पन्त का काम नहीं चलता । वे उसे जीवन-व्यापक जीवन के संदर्भ में संवेदना के स्तर पर घटित करते हैं, उसे एक जीवन्त जीवन-पद्धति के रूप में देखना चाहते हैं । इस के बिना उनकेलिये विचार की पूर्णता नहीं । अरविन्द के दर्शन को स्वीकार करके पन्तजी ने किस व्यापक जीवन के संदर्भ में उसे स्थापित कर लोकायन से उसका रूप ही एकदम परिवर्तित या व्यापक कर दिया, वह इस बात का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन है । "लोकायतन" में जिस प्रकार के व्यापक सामंजस्य का अवतरण किया गया है वह बुद्धि के स्तर पर विश्लेषण के आधार पर घटित नहीं हो सकता । इन बातों के आधार पर हम कह सकते हैं कि पन्त में भाव-दृष्टि है, बौद्धिकता नहीं और आगे बढ़कर हम यह भी कहना चाहते हैं कि बौद्धिकता कम से कम संदर्भों में, भावदृष्टि से कुछ छोटी पड़ती है ।

1·2·3· जीवन-दर्शन

पन्त के काव्य-व्यक्तित्व की तीसरी विशेषता उनका जीवन दर्शन है । उन्होंने जीवन-दर्शन का रूप अपनी बहुत बाद की, प्रौढ वय की कृतियों में ही दिया है । पर कवि केलिये जीवन दर्शन का महत्व नहीं होता, उसकेलिये महत्व जीवन-दृष्टि का होता है । यह जीवन दृष्टि जितनी गतिशील होगी, कवि उतना ही जीवन्त होगा । पन्त की जीवन्तता का यही रहस्य है । पन्त की जीवन दृष्टि आद्यन्त मुख्यत: दो प्रेरक तत्वों से परिचालित हुई है - एक को हम पूर्णता की खोज कह सकते हैं, दूसरे को सामंजस्य की खोज । आगे इन दोनों का अलग-अलग

पन्त के काव्य-व्यक्तित्व की स्वतंत्र विशेषताओं के रूप में अध्ययन करेंगे ।

1·2·4· पूर्णता की खोज

पल्लव की भूमिका में पन्त ने कविता को परिपूर्ण क्षणों की वाणी[1] कहा है । कवि की खोज प्रारंभ से ही पूर्ण जीवन की खोज है । कोई दर्शन, कोई वाद, कोई संप्रदाय-दृष्टि उस खोज की सारी शर्तों को पूरा नहीं कर पाती । इसीलिये पन्त गाँधी से भी पूरी तरह सहमत नहीं होते, मार्क्स से भी नहीं, अरविंद से भी नहीं । इसका अर्थ यह नहीं कि जिस चीज़ को गाँधी, मार्क्स या अरविंद नहीं पा सके उसे पन्त ने प्राप्त कर लिया । इसका अर्थ केवल यह है कि पन्त की पूर्णता की खोज प्रकृत्या इन सबसे भिन्न प्रकार की थी । अपनी अपनी पद्धति पर गाँधीजी, मार्क्स और अरविंद ने भी एक पूर्ण जीवन का स्वरूप कल्पित किया । ये तीनों जिस तरह परस्पर भिन्न निष्कर्षों पर पहुचते हैं, उसी प्रकार पन्त इन तीनों से ही भिन्न निष्कर्षों पर पहुंचते हैं । अपनी विलक्षण भाव-दृष्टि द्वारा वे जीवन की पूर्णता की एक ऐसी परिकल्पना को अपने काव्य में संवेद्य बनाकर प्रस्तुत करते हैं, जिस में जड और चेतन, व्यष्टि और समष्टि, बाह्य जगत् और आंतर जगत् सब का सामंजस्य उद्घाटित होता है ।

पन्तजी में पूर्णता की एक खोज निरन्तर दिखाई पडती है । सौंदर्य-चेतना, भू-चेतना, बौद्धिक-चेतना और सूक्ष्म-चेतना इस क्रम से इस खोज का विकास प्रायः निरूपित किया जाता है । यह क्रम पन्त की सतत् विकासमान चेतना को मोटे तौर पर रेखांकित करता है -

---

1· पल्लव - पन्त, पृ·34

पूर्ण से पूर्णतर की ओर, यही पन्त की यात्रा रही । पन्तजी ने बार बार अपने काव्य में व्याप्त इस पूर्णताकामी दृष्टि की ओर ध्यान आकृष्ट किया है । संपूर्णता के प्रति कवि का यह लगाव इन पंक्तियों में कितनी उत्कटता के साथ व्यक्त हुआ है

पूर्ण मनुज बन-उससे भी अतिशय
मनुज सत्य चित् कण रहता निश्चय,
प्रतिपग पर परिपूर्ण चेतना क्रम
परम पूर्णता में होता तन्मय ।[1]

जीवन में पूर्णता की इस खोज में पन्त की दृष्टि मुख्यत: मंगल भावना पर रही है । पूर्णतर की प्राप्ति का आकर्षण कवि को शुद्ध व्यक्तिगत जिज्ञासा की शांति केलिये नहीं है । उसके मूल में मानवता के मंगल की अभिलाषा एवं आग्रह है -

"व्यक्ति की मुक्ति, पूर्णता व्यर्थ
जगत् यदि बंधन ग्रस्त, अपूर्ण
सर्व के संग ही संभव श्रेय,
सर्व ही में अभिव्यंजित पूर्ण ।"[2]

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.562
2. वही, पृ.319

1.2.5. सामंजस्य-भावना

पन्त के काव्य-व्यक्तित्व की अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता जो उनकी जीवन-दृष्टि को निर्धारित करती है, उनकी सामंजस्य भावना है। जीवन के वैषम्यों, अनेकताओं और विरोधों में पन्त सदैव एक सामंजस्य की खोज करते रहते हैं।

पन्त में सामंजस्य के कई आयाम हैं। सबसे पहले तो उसमें "स्व" और "पर" का, अन्त:और बाह्य का सामंजस्य है जिसकेकारण वे विश्व-वेदना को अपने प्राणों में उतार पाते हैं -

"समदिग जीवन था केवल वितरण
अनिश्चित कर ही में शुभ सर्जन,
बहिरंतर को कर सित संयोजित
सर्व पूर्ण बनता था भू जीवन।"[1]

पन्त ने अपनी काव्य-यात्रा इसी मूल सामंजस्य के साथ शुरू की थी। अपने अंत: को बाह्य के साथ, विश्व के साथ, जीवन के साथ सामंजितकर लेने के उपरान्त कवि जग-जीवन के वैषम्यों का सीधा संवेदन प्राप्त करके उनके भीतर अनुस्यूत एक स्वाभाविक एकत्व को भावित करने की योग्यता स्वभावत: ही प्राप्त कर लेता है। अपने कृतित्व के बहुत प्रारंभिक काल में भी व्यक्ति और वस्तु-जगत् का वह द्वन्द्व पन्त के समक्ष नहीं है

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.553

जो अधिकांश रोमांटिक कवियों के सम्मुख रहता है । पन्त केलिये इस प्रकार का विभाजन कभी रहा ही नहीं । इसे अद्वैतवाद के अध्ययन का प्रभाव कहा जाता है पर वास्तव में यह कवि की स्वाभाविक वृत्ति का परिणाम है ।

"गुंजन" तक आते-आते कवि जीवन से पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर चुका होता है और आगे उसकेलिये जीवन की विषमतायें स्वकीय हो जाती हैं । "ज्योत्स्ना" में इसी सामंजस्य की ओर व्यापक भूमियों की तलाश है । "ग्राम्या" में "ग्राम-देवता" प्रायः अपने स्वर में अन्य कविताओं से कुछ अधिक प्रखर और विद्रोही है, पर यहाँ भी पन्तजी की दृष्टि अंतर और बाह्य जगत् के विरोध की बजाय उनके अन्योन्याश्रय संबंध पर ही जमती है । "ग्राम्या" के बाद के पन्त का समस्त काव्य एक प्रकार से सामंजस्य का ही काव्य है । बाह्य और अन्तर, आत्मतत्त्व और भूततत्त्व, अर्थ और संस्कृति, व्यष्टि और समष्टि, ऊर्ध्व संचरण और समतल संचरण आदि सब का सामंजस्य, पन्त जी के "स्वर्णकिरण" से "संक्रान्ति" तक के काव्य में अत्यन्त व्यापक स्तर पर प्रकट हुआ है । इस सामंजस्य में कवि ने जीवन की पूर्णतम अभिव्यक्ति का मार्ग अन्वेषित कर लिया है । पन्तजी का यह सामंजस्यवाद भी लोकमंगल की भावना से ही प्रेरित है । पन्त अपने इस विराट् सामंजस्य को मनुष्य के बीच अवतरित देखना चाहते हैं ।

1.3. पन्त-काव्य के विभिन्न मोड

पन्त का काव्य-व्यक्तित्व एक विशेष प्रकार के द्रवत्व से युक्त है बहुत से प्रभावों को घुलाने और बहुत सी भूमियों में ढलने की उनमें असाधारण क्षमता है । परमहंस, गाँधी, मार्क्स, अरविंद सभी पन्त के काव्य-व्यक्तित्व की निरंतरता में कुछ दूर तक चलते हैं पर उसके नैरन्तर्य को कहीं भी नहीं करते

न उसमें कोई अभीप्सित मोड ही पैदा करते हैं। पन्त के काव्यविकास की रूपरेखा को प्रकृति से मानव, मानव से जन-जीवन, जन-जीवन से दिव्य-जीवन और दिव्य-जीवन से नवमानव की शब्दावली में प्रस्तुत किया जाता है। कवि ने स्वयं अपने काव्य-विकास को स्पष्ट करने केलिये इसी भाषा को अपनाया है। इस के मूल में कवि का समन्वयवादी दृष्टिकोण बतलाया जाता है जो रसायन की भाँति परस्पर-विरोधी विचारधाराओं में अन्तर को पाटने और विरोध का परिहार करने में सफल कहा जाता है।[1]"

कुछ आलोचकों ने तो पन्त के काव्य-व्यक्तित्व को रेखाचित्रों में बाँधने का प्रयास किया है और यह माना है कि पन्त में एक ही शिखर नहीं है, छोटे - छोटे कई शिखर हैं।[2] इस प्रकार की परिकल्पना निरर्थक है क्योंकि पन्त का काव्य-व्यक्तित्व द्विधाविधा, अनेकधा अंतर्विरोधों से ग्रस्त न होकर समग्रता में है। पन्त के स्थूल काव्य-विभागों से दृष्टि को हटाकर मूल विशेषताओं की ओर उन्मुख किये बिना पन्त के काव्य-व्यक्तित्व की समग्रता को ठीक-ठीक समझना असंभव है। समर्थ प्रतिभायें अपनी रचना यात्रा में उत्तरोत्तर समृद्ध ही होती जाती हैं, वे अपनी समस्त समृद्धि के साथ ही नव-नव मार्गों पर संक्रमण करती हैं। पन्त के काव्य के विभिन्न मोडों की चर्चा करके उनके काव्य-व्यक्तित्व रेखांकित करने का प्रयास करेंगे। उनके काव्य में समय समय पर जितने मोड आये हैं उतने कदाचित् ही अन्य किसी कवि में मिलते हैं। प्रारंभिक कृति "वीणा" से लेकर अंतिम काव्य "संक्रांति" तक अनेक परिवर्तन और मोड आये हैं। उनके काव्यों से यह स्पष्ट है कि कवि - कल्पना के प्रेरणा स्रोत समय समय पर

---

1. सुमित्रानंदन पन्त - सं. इन्द्रनाथ मदान, पृ.222
2. समीक्षा की समस्यायें - गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ.147

बदलते रहे हैं । इसलिये कल्पना की अभिव्यक्ति में भी परिवर्तन का आना स्वाभाविक है । कवि रूप में उनका अंतिम लक्ष्य मानव का उन्नयन है । मानव के शुभेच्छु पन्तजी अपनी विचारधाराओं का काव्यात्मक प्रयोग करते गये । इस प्रयोग में पहले वे सौंदर्य द्रष्टा रहे, फिर उन्हें शिवत्व की अनुभूति हुई तो ये चिन्तन-मनन में लगे और बाद में वे सत्यान्वेषी हो गये । इस प्रकार सौंदर्य दृष्टि, चिंतन-मनन और अन्त में सत्यान्वेषण उनकी काव्यधारा के विकास के सोपान हैं । इस आधार पर उनके काव्य-विकास को तीन चरणों में विभक्त कर सकते हैं -

अ· प्रथम चरण - सौंदर्य चेतना का युग

आ· द्वितीय चरण - समाज चेतना का युग

इ· तृतीय चरण - अध्यात्म चेतना का युग

१·३·१· प्रथम चरण - सौंदर्य चेतना का युग

इस युग में "वीणा", "ग्रन्थि", "पल्लव" और "गुंजन" आदि रचनायें आती हैं ।

पन्तजी का प्रारंभिक जीवन प्रकृति की गोद में बीता है । शैशवकाल में ही आपको माता के वात्सल्य से वंचित होना पड़ा था । मातृहीन बालक के हृदय में वात्सल्य के अभाव की पीड़ा कसकती रही । यह स्वाभाविक था कि वे प्राकृतिक सौंदर्य में छिपे हुए आकर्षण से उस अभाव की पूर्ति करते थे । प्रकृति के सौंदर्य ने उनकी कवि प्रतिभा पर जादू किया और वे अपनी कविता में पर्वतीय प्रकृति की सरल और चंचल सुन्दरता को अभिव्यक्त करने लगे ।

प्रकृति के प्रति पन्त का रुझान शुरू से ही है । पन्तजी का प्रथम काव्यसंग्रह "वीणा" सन् 1918-19 में प्रकाशित हुआ था । वे सदा ही संवेदनशील रहे हैं इसलिये युग के अनेक आन्दोलनों ने अतिशय रूप से उन्हें प्रभावित किया है । इसी कारण से उनके "वीणा" और "पल्लव" में "शैली-टेनीसन" की कल्पना, स्वर वैचित्र्य तथा सौंदर्य दृष्टि का संयुक्त प्रभाव परिलक्षित होता है।[1] "वीणा" की कविताओं में पन्तजी का बाल-कवि उडने केलिये पंख फडफडा रहा है । ये प्रारंभिक कवितायें "गीतांजली" से प्रभावित होने के कारण अधिकांश में प्रार्थनापरक है -

"मेरे चंचल मानस पर -
पादपद्म विकसा सुन्दर,
बजा मधुर वीणा निज मात
एक गान कर मम अन्तर ।"[2]

उनकी इस संग्रह की कविताओं की ओर एक सब से बडी विशेषता कोमल भावना की काव्य में अवतारणा और नव्य रूमानी शैलीका प्रयोग है।[3] उनकी भावुकता की ओर एक विशेषता है उसका मार्दव । ऐसी कवितायें "छाया", "अंधकार", "किरण", "सरिता", "प्रथम रश्मि का आना", "चातक" "मां" आदि हैं ।

---

1. पन्त का काव्यदर्शन - डॉ. प्रतापसिंह चौहान, पृ.2
2. वीणा - सुमित्रानंदन पन्त, पृ.8
3. पन्त का काव्यदर्शन - डॉ. प्रतापसिंह चौहान, पृ.2

"वीणा" में कवि ने अपने आपको बालिका के रूप में कल्पना की है । इस में दो प्रकार के भाव-विशेष दृष्टिगोचर होते हैं - प्रकृति के प्रति आत्मीयता तथा जिज्ञासा की भावना । इस कृति में उन्होंने अपने स्वप्नों से बाहर आकर अस्फुट गान गाये हैं, वे सुन्दर हैं, भोले हैं, कोमल हैं । परन्तु इन में भावी प्रौढता की आशा है, विश्वास है -

"मैं इतनों की सुख-सामग्री
हूँगी जगती के मग में
शोक-मुक्त होंगे द्रुत इतने
कोक मुझे कर अवलोकन ।"[1]

शुद्ध रहस्यवादी ढंग की कवितायें भी इस संग्रह में बहुत है । रहस्यवाद का स्वर "वीणा" में प्रकृति प्रेम के अतिरिक्त अन्य सभी स्वरों से कुछ अधिक ही मुखर प्रतीत होता है । रहस्यवादी प्रेमसंबंधी उक्तियों के साथ विश्व-प्रेम, लोक-प्रेम तथा जाति-प्रेम की उक्तियाँ भी जगह जगह दिखाई पडती हैं । इस संग्रह में ऐसे उदाहरण कुछ विरले हैं, पर जितने भी हैं वे एक प्रवृत्ति का प्रदर्शन तो करते ही हैं । निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है -

"विश्व-प्रेम का रुचिकर राग,
पर - सेवा करने की आग,
इसको संध्या की लाली सी
माँ ! न मन्द पड जाने दे,
द्वेष - द्रोह को सान्ध्य जलद सा
इसकी छटा बढाने दे ।"[2]

1• वीणा - पन्त, पृ•68

2• वही, पृ•23

वेदनावाद छायावाद की एक विशेषता है । वेदनासंबंधी कवि की यह उक्ति द्रष्टव्य है -

"वेदना! - कितना विशद यह रूप है !
यह अँधेरे हृदय की दीपक शिखा !
रूप की अंतिम छटा ! औ' विश्व की
आम चरम अवधि, क्षितिज की परिधि सी ![1]"

"ग्रंथि" में असफल प्रेम के नैराश्य में वेदना के उत्ताल तरंगों में फँसे कवि की मर्मस्पर्शी अनुभूतियों का चित्रण है । डा॰ नगेन्द्र के शब्दों में जब तारुण्य का बाल रवि उसके प्राणों को पुलकित कर रहा था, उसी समय मधुवेला में भाग्य ने उसके हृदय में एक ग्रन्थि डाल दी जिसे वह कदाचित् अभी तक नहीं खोल सका है[2] ।" कुछ लोगों का विचार है कि "ग्रन्थि" पन्तजी के अपने अनुभव पर आधृत है जिसमें उन्होंने अपनी प्रणय कहानी लिखी है ।

"छायावाद की कला का समस्त वैभव ग्रन्थि में समाहित हो गया है[3] ।" इस रचना में "कवि ने लौकिक प्रेम को अलौकिक प्रेम में प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की है और उसके जीवन-दर्शन से स्पष्ट होता है कि वह लौकिकता से बढ़कर पारलौकिकता का समर्थक है[4] ।" यह एक प्रणय काव्य है

---

1. ग्रंथि - पन्त, पृ॰13।
2. सुमित्रानंदन पन्त - नगेन्द्र, पृ॰37
3. सुमित्रानंदन पन्त कला काव्य और दर्शन - गोपालदास नीरज, सुधा सक्सेना, पृ॰113
4. ग्रन्थि - पन्त, पृ॰99

कभी कभी यह अनुमान भी व्यक्त किया गया है कि इसका आधार कवि के अपने जीवन का अनुभव है । इस संबंध में कुछ भी कहना संभव नहीं है पर एक बात तो इससे स्पष्ट होती है कि "ग्रन्थि" का कवि किस प्रकार अपने वर्णन कौशल द्वारा अपनी कथा में विश्वसनीयता और प्रामाणिकता का गुण उत्पन्न कर सका है । पन्त के काव्य में "ग्रन्थि" से श्रेष्ठ बहुत कुछ है, पर उससे अधिक मनोरम और हृदयहारी बहुत कम । इसका कलापक्ष वीणा की अपेक्षा अधिक पुष्ट है । इसमें हमें अलंकारों की एक चित्रित छटा मिलती है । इसमें रागतत्व का जो मार्मिक उद्वेलन मिलता है वह पन्त के संपूर्ण काव्य में विरल है ।

"पल्लव" में सन् 1918 से 1925 ई॰ तक की कवितायें संकलित है इसकी अधिकांश रचनाओं में एक परिपक्वता दिखाई पडी है । निश्चय ही कवि के छायावादी काव्य-व्यक्तित्व का सब से अच्छा प्रस्फुटन "पल्लव" में ही हुआहै । "पल्लव" का पन्त के ही काव्य में नहीं, संपूर्ण छायावाद युग में एक विशिष्ट स्थान है । कला की दृष्टि से यह अभूतपूर्व रचना मानी गयी है । आलोचकों का तो यहीं तक कहना है कि पन्त का सर्वोत्कृष्ट कवि रूप पल्लव में ही दिखाई पडता है[1] ।"

"पल्लव" की रचनाओं का कवि के काव्य-विकास में एक विशिष्ट स्थान है । इसमें प्रकृति संबंधी, प्रेम और सौंदर्य संबंधी, और चिन्तन संबंधी अनेक कवितायें हैं । इसकी कवितायें एक ओर कवि के उस मानसिक विकास की परिचायक हैं जो प्रेम और सौंदर्य के काल्पनिक जगत् से निकलकर जीवन की वास्तविकता और चिन्तन की ओर विकसित हो रहा था दूसरी ओर अध्ययन और मनन के माध्यम से आये युग प्रभाव को भी

1• पन्त का काव्य - डॉ॰ उपेन्द्र पृ॰25

अपने आप में समेटे हुए हैं । इस कृति में आते ही पन्तजी मननशील हो गये हैं इस की कुछ कवितायें यह संकेत देती हैं कि कवि की राग-भावना अब प्रकृति-जगत् तक सीमित नहीं रह गयी है अपितु कुछ व्यापक उदार होकर नारी जगत् को भी अंतर्भुक्त करने लगी है । नारी के प्रति भी मोह की उतनी ही तीव्रता है जितनी प्रकृति के प्रति, पर "पावनता का भाव यहाँ बराबर बना हुआ है।[1]"

इसमें "उच्छ्‌वास" और "आँसू" जैसी कुछ प्रगीत रचनायें प्रेमानुभूति से प्रेरित है । पन्त की सुप्रसिद्ध कवितायें जैसे "छाया", "मौन निमंत्रण", "बादल", "स्वप्न", "बालापन" आदि पल्लव के अन्तर्गत आती हैं । इनमें भावना और कल्पना का सुखद सामंजस्य है । डा॰ नगेन्द्र ने बताया है कि मौन निमन्त्रण का[2] तो प्रत्येक पद शैली के "स्काईलार्क" के प्रत्येक स्टेन्ज़ा की तरह कटा-छँटा है । इसके सभी चित्र अभिराम है जैसे

"कनक छाया में, जबकि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार
सुरभि-पीडित मधुपों के बाल
तडप, बन जाते हैं गुंजार,
न जाने, ढुलक ओस में कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन ।[3]"

1• कवियों में सौम्य सन्त, बच्चन, पृ•7।
"पन्तजी शायद ही कभी सुन्दरता के ऐसे रूप की कल्पना करते हों जिसके चारों और सात्विकता और पावनता की आभा रेखा न खिंची हो ।"

2• सुमित्रानंदन पन्त - डा॰ नगेन्द्र, पृ•96

3• पल्लव - पन्त, पृ•9।

"बालापन" कविता भी "पल्लव" की मुकुट-मणि है । उसके चित्र रंगीन है और उनमें एक आवेश है जो हृदय पर चिरस्थायी प्रभाव डालता है । "शैली", "कीट्स", "वर्डसवर्थ" और "टेनिसन" का कवि ने गंभीर अध्ययन किया है इसलिये उनकी छाया भी यत्रतत्र स्पष्ट है । वे शैली से अधिक प्रभावित हुए हैं । उनकी प्रसिद्ध कल्पनापूर्ण कविता "बादल" "शैली" की "क्लाउड" कविता से प्रेरित है लेकिन कवि ने शैली का अनुवाद करके नहीं रखा है । उसने बादल का मनोहर रूप ही लिया है जबकि शैली ने भयंकर रूप भी चित्रित किया है । उनकी कला पर टेनिसन का भी प्रवाह है जो अपनी ध्वन्यात्मकता और भावानुकूल शब्दचयन केलिये प्रसिद्ध थे । "पल्लव" में अंग्रेजी के इन कवियों की लाक्षणिकता, सांकेतिकता और प्रतीकात्मकता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है ।[1]" बादलों का ऐसा चित्रण तो सारे हिन्दी काव्य में नहीं मिलेगा -

बादलों के छायामय मेल
घूमते हैं आँखों में, फैल !

मेमनों - से मेघों के बाल -
कुदकते थे प्रमुदित गिरि पर ।
द्विरद दन्तों - से उठ सुन्दर
सुखद कर सीकर - से बढ़कर,
भूति - से शोभित बिखर बिखर,
फैल फिर कटि के - से परिकर ।[2]"

1· सुमित्रानंदन पन्त - सं· इन्द्रनाथ मदान, पृ·23।
2· पल्लव - पन्त, पृ·68

"पल्लव" की संभवत: सर्वोत्कृष्ट कविता "परिवर्तन" है । इसमें भाव, कल्पना और विचारों का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है । "परिवर्तन" के संबंध में निराला का कथन प्रसिद्ध है कि "यह किसी भी बड़े कवि की कविता से नि:संकोच मैत्री स्थापित कर सकता है[1] ।" बच्चन के शब्दों में "हिन्दी कविता केलिये पल्लव को मैं पंतजी की प्रमुख देन मानता हूँ, न कि किसी वाद अथवा दर्शन को[2] ।" परिवर्तन का कवि शास्ता है, महानायक है । वह भावनाओं के आवरण में तात्विक सत्य को रख देता है[3] ।"

पन्त के वर्णन में प्रकृति की दाहकता का निरूपण कल्पनाश्रित पर वस्तुगत है। प्रकृति की काल्पनिक भयावहता का वर्णन वह अपने विरह-दु:ख की व्यंजना केलिये एक प्रकार से अन्धकार के रूप में करता है । इस अन्तर को समझने केलिये अंधकार का यह रूप द्रष्टव्य है -

"पटक रवि को बलि सा पाताल
एक ही वामन पग में -
लपकता है तिमिर तत्काल,
धुएं का विश्व विशाल[4] !"

उसी प्रकार प्रकृति में अपनी मन:दशा का आरोपण भी कवि ने संस्कृत कवियों से भिन्न पद्धति पर किया है । कालिदासकेलिये प्रकृति में अपनी मन:स्थिति का प्रतिबिम्ब देखना अनुभूति का विषय था, आधुनिक

---

1. प्रबन्ध पद्म - निराला, पृ.165
2. कवियों में सौम्य सन्त - बच्चन, पृ.71
3. सुमित्रानंदन पन्त - जीवन और साहित्य - शांति जोशी, पृ.201,प्र.सं.
4. पल्लव - पन्त, पृ.66

कवि केलिये यह कल्पना का विषय है । इस से भी बडी बात यह है कि यहाँ प्रकृति में शाश्वत मानवीय भावों का आरोपण है - कवि केलिये दुःख, प्रतीक्षा, चाह आदि की भावनाओं का एक शाश्वत स्वरूप भी है न कि व्यक्तिगत भावों का । प्रसंगत: यहाँ यह भी उल्लेख कर देना होगा कि छायावादी कवि करुणा, वेदना आदि को जिस तरह शाश्वत प्रकृति का अंग समझता प्रतीत होता है उस तरह उल्लास, उत्फुल्लता आदि को नहीं । भाव प्रधान कविताओं में "मधुकरी", "मोह", "मुसकान", "विसर्जन" और "सोने का गान" उल्लेखनीय हैं । "मधुकरी" प्रकृति की कविता है । "पल्लव" की रचनाओं का शिल्प अत्यन्त प्रौढ एवं सुगठित है । सुन्दर शब्द चयन, लाक्षणिक प्रयोगों की अधिकता और अलंकारों की विचित्र शोभा सभी रचनाओं में है । इस की भाषा का प्रवाह भी आश्चर्यजनक है ।

"गुंजन" में आते ही कवि को जीवन के प्रति एक नवीन हर्षपूर्ण दृष्टिकोण मिलता है । यह कवि के जीवन में आशा का समय था । इस समय उनपर दार्शनिकता का प्रभाव भी पैदा हो गया । इनकी अधिकांश रचनाओं में आवेश की अपेक्षा चिन्तन एवं मनन का प्राधान्य है । "गुंजन" की कविताओं की दो साफ कोटियाँ दिखाई पडती हैं - एक को हम जीवन-संबंधी विचारपूर्ण कवितायें कह सकते हैं, दूसरी को प्रणय-कवितायें । इनके अतिरिक्त "नौकाविहार", "अप्सरा", "एक तारा" और "चाँदनी" जैसी कवितायें हैं जो इस विभाजन में सम्मिलित नहीं होती, फिर भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं ।

---

1. पन्त - गुंजन, पृ.28

सुख-दु:ख की मानवीय स्थिति के संबंध में कवि की यह उक्ति द्रष्टव्य है ।

"हँसने ही में तो है सुख
यदि हँसने को होए मन,
भाते हैं दु:ख में आते
मोती-से आँसू के कण ।"[1]

कवि की जीवनदृष्टि को ये पंक्तियाँ अत्यंत सहज ढंग से उद्घाटित कर देती हैं । कवि जीवन में सुख-दु:ख के सहज स्वीकार का पक्षपाती है । पर यह निष्ठुर विरागी का निस्संग स्वीकार नहीं है । सुख में हँसी और दु:ख में आँसू सहज मानवीय प्रतिक्रियायें हैं । इन का निषेध कवि को मानवीय प्रकृति के विरुद्ध जान पड़ता है । इसलिये वह सुख-दुख के सामंजस्य के सिद्धान्त को बाहर से मानव जीवन पर आरोपित नहीं करना चाहता वरन् सहज मानवीय प्रतिक्रियाओं में एक व्यापक सत्य की छाया देखना चाहता है और असहज प्रतिक्रियाओं - चाहे वह किसी प्रकार की हों - का निषेध करना चाहता है ।

जीवन के प्रति कवि का उल्लासमय आशीर्भाव इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है -

---

1. पन्त - गुंजन, पृ.28

"सुन्दर से नित सुन्दरतर,
सुन्दरतर से सुन्दरतम,
सुन्दर जीवन का क्रम रे
सुन्दर-सुन्दर जग जीवन ।"[1]

इस प्रसंग की अंतिम कविता "झर गयी कली, झर गयी कली" में कवि का जीवन संबंधी आदर्श व्यक्त हुआ है । "गुंजन" के चिन्तन प्रधान गीतों के पीछे कवि के किसी भीतरी आनंद के स्पर्श की अनुभूति छिपी हुई है। कवि की राय में "मेरी बर्हिमुखी प्रकृति, सुख-दुःख में समत्व स्थापित कर अंतर्मुखी बनने का प्रयत्न करती है ।"[2] वह अपने मन को विश्व-वेदना में तपाकर निष्कलुष और उज्ज्वल ही नहीं बनाना चाहता, बल्कि उसे जीवन की पूर्णता अथवा समग्रता में बांधने केलिये भी प्रेरित करता है -

अपने सजल-स्वर्ण से पावन
रच जीवन की मूर्ति पूर्णतम,
स्थापित कर जग में अपनापन,
ढल रे ढल आतुर मन ।"[3]

प्रणय-कवितायें इस संग्रह में दस के आसपास हैं । सबसे पहले भावी पत्नी के प्रति"कविता आती है । विशेष नवीनता न होने पर भी इस कविता के चित्र बडे ही भावपूर्ण और सुन्दर हैं ।

1· गुंजन - पन्त, पृ·29
2· शिल्प और दर्शन - पन्त, पृ·39
3· गुंजन - पन्त, पृ·11

इसके बाद श्रृंगार के गीत हैं। कुछ को छोड़कर अधिकांश गीत यथेष्ट प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ हैं। इन में भी "आज रहने दो यह गृह-काज" गीत विशेष रूप से उल्लेखनीय है। श्रृंगार भाव की उत्कटता की ऐसी व्यंजना पन्त के काव्य में प्रायः कम है। पन्त के श्रृंगार वर्णनों में प्रायः वैराग्य और संयम की एक हल्की झांकी रहती है -

"आज रहने दो यह गृह-काज,
प्राण ! रहने दो यह गृह-काज !
आज जाने कैसी वातास
छोड़ती सौरभ-श्लथ उच्छ्वास,
प्रिये, लालस-सालस वातास,
जगा रोओं में सौ अभिलाष !"[1]

अन्य कविताओं में यहाँ "जाके उर्वर आंगन में बरसो ज्योतिर्मय जीवन", "एक तारा", "चाँदनी", "अप्सरा" और "नौका-विहार" का उल्लेख आवश्यक है। शुद्ध काव्यकला की दृष्टि से देखा जाय तो उपर्युक्त दो गीतिमालाओं की अपेक्षा ये कवितायें अधिक सुन्दर हैं और "गुंजन" के वास्तविक सौंदर्य का आधार हैं। कवि के काव्य-व्यक्तित्व के विकास-क्रम पर ही मुख्य दृष्टि रखनेवाला पाठक या आलोचक सहज ही इस संग्रह की प्रारंभ की बौद्धिक कविताओं को सारा महत्व दे बैठता है।

"नौका-विहार" इस संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कविता है। जिस प्रकार "पल्लव" में "परिवर्तन" अपने विशिष्ट स्वर के कारण अलग दिखाई पड़ती है

---

1. गुंजन - पन्त, पृ.51

उसी प्रकार "गुंजन" में "नौका-विहार" अपनी विलक्षण सौंदर्य-चेतना, कलात्मक सौष्ठव, बारीकी और सफाई के कारण शेष सभी कविताओं से कुछ ऊपर दिखाई देती है । इसमें दार्शनिक चिन्तन आया है - अन्त में - पर उससे काव्य-सौंदर्य में व्याघात ही पहुंचा है । सहृदय पाठक को प्राकृतिक संश्लिष्ट कोमल चित्रों के बाद दार्शनिक विचार एकदम फीका लगता है । यह कमी भी इस प्रकार इस कविता के उत्कृष्ट अंशों की उत्कृष्टता की ही प्रमाण बन गयी है -

> तापस बाला गंगा निर्मल, शशि-मुख से दीपित मृदुकरतल,
> लहरे उर पर कोमल कुंतल !
> गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार-तरल सुंदर
> चंचल अंचल सा नीलांबर ।[1] "

"गुंजन" की विचार भूमिका जीवन में सुख-दु:ख के सामंजस्य या समन्वय का आधार लेती है । इस नई भूमिका को पन्त छायाछवियों की (पल्लवकाल की) जीवन भूमिका से भिन्न ठहराते हैं । पल्लवकाल में जीवन-दृष्टि का आधार "इच्छा" थी । पन्त उस इच्छा को अब "गुंजन" में "छल" कहने लगे हैं ।[2] "

"गुंजन" की भाषा के संबंध में कहा जाय तो कवि ने अपने चिन्तन और भावुकता के ताप में उसे गलाकर पूर्णतया मृदुल बना दिया है । गुंजन में विश्व के प्रति संवेदना, विस्मय की भावना, चिन्तन और मननशीलता, जीवन के प्रति आकर्षण और उनसे निर्मित विश्व - मानवता के प्रति कवि का दृष्टिकोण सामने आता है ।[3] "

1· गुंजन - पन्त, पृ·101

2· कवि सुमित्रानंदन पन्त - आ·नंददुलारे वाजपेयी, पृ·71

3· सुमित्रानंदन पन्त - काव्यकला और जीवन-दर्शन - सं·शचीरानी गुर्टू,पृ·13

इस प्रकार "वीणा", "ग्रन्थि" "पल्लव" और "गुंजन" काव्य कृतियों में विचार और भाव की अपेक्षा कल्पना का आधिक्य है । ये कृतियाँ छायावाद का प्रतिनिधित्व करने के बावजूद छायावाद के समस्त काव्य में अपनी अलग पहचान रखती हैं । पन्त के काव्य व्यक्तित्व के संदर्भ में जिन वैशिष्ट्य-प्रतिपादक तत्वों की चर्चा हम कर आये हैं वे यहाँ भी पन्त को उनके समकालीनों से अलग करते हैं ।

प्रकृति - प्रेम और सौंदर्य इस काल की काल्पनिक अभिव्यक्ति के मुख्य आधार बिन्दु रहे हैं । "वीणा" की बाल-कल्पना रहस्यमयी प्रकृति पर रीझी है । ग्रन्थि, पल्लव और गुंजन में उसका विस्तार प्रेम और सौंदर्य की ओर हुआ है ।

इस युग में पन्तजी ने भाषा और छन्द के क्षेत्र में नये प्रयोग किये । खड़ीबोली में एक कोमल शब्द-प्रवाह के वे आविष्कारक हैं । अनेक पुल्लिंग शब्दों को सौंदर्यभावना से प्रेरित होकर स्त्रीलिंग में प्रयोग किया है । शब्द योजना में शैली और कीट्स के सौंदर्यबोधक शब्दों की तरह हिन्दी में भी समास, और सन्धि के नियमों को अपने प्रयोग के अनुकूल परिवर्तित करने का प्रयत्न किया है । इसी प्रकार यद्यपि छन्दों के प्रयोग में पन्त ने रीतिकालीन रूढ़ियों का खण्डन किया है फिर भी छन्द को उन्होंने आवश्यक समझा है । कविता के नये रूप में पुराने छन्द विधान को भी अपनाया है । भाषा, छन्द और भाव सभी में इस युग की रचनाओं में सौंदर्य भावना की प्रधानता है । इस युग में भाषा और भाव की नूतन रमणीयता और काल्पनिक सुन्दरता ही कवि के काव्य विकास और शैली की विशेषता है ।

1·3·2· द्वितीय चरण - समाजचेतना का युग

इस युग में "युगान्त", "युगवाणी", "ग्राम्या" आदि रचनायें आती हैं।

"युगान्त" के साथ पन्तजी अपने सौंदर्य-चेतना के युग का अन्त कर देते हैं और प्रगतिवादी युग में पदार्पण करते हैं। इसमें प्रगति-युग के आरंभ होने की भूमिका है। वैसे तो "युगान्त" पन्त के सौंदर्य चेतना युग के अंत का ही सूचक नहीं है, बल्कि हिन्दी काव्य में छायावादी युग के अन्त और प्रगतिवादी युग के आरंभ का भी परिचायक है। कवि ने स्वयं कहा है- "युगान्त में "पल्लव" की कोमल-कांत कला का अभाव है। इसमें मैं ने जिस नवीन क्षेत्र को अपनाने की चेष्टा की है, मुझे विश्वास है, भविष्य में, मैं उसे अधिक परिपूर्ण रूप में ग्रहण एवं प्रदान कर सकूँगा।"[1] पन्तजी की कला इसमें एक नया मोड लेती है। इसी कारण से इस कृति का महत्व बहुत अधिक है। इसमें कवि गतयुग के सुन्दरम् को विस्मृतकर स्पष्ट रूप से सत्यं और शिवं का आवाहन करने लगा है - इसी कारण इसमें उसका हृदय मानव की कल्याण-कामना से पूरित है।"[2] बच्चनजी का कहना है - "युगान्त का कवि विद्रोही और क्रांतिकारी है और उसकी कविताओं का स्वर कर्णकटु और कठोर है।"[3]

प्रगतिवादी युग में भारतीय समाज दीर्घकालीन परतंत्रता के कारण विघटन, शोषण, एवं अन्याय के विभिन्न चक्रों के बीच अपनी अस्तित्वरक्षा के निमित्त प्रयासशील दृष्टिगत होता है। इस समीक्षा से इतना तो स्पष्ट ही हो गया कि पन्त का काव्य-व्यक्तित्व जीवंतता और गतिशील शक्तिमत्ता के स्वीकार से जुडा हुआ है। पन्तजी कहीं भी

1· युगान्त - पन्त, दो शब्द

2· सुमित्रानंदन पन्त - कला, काव्य और दर्शन - गोपालदास नीरज, सुधा सक्सेना, पृ·121

3· कवियों में सौम्य सन्त - बच्चन, पृ·75

अपनी स्वाभाविक एवं सचेत पकड से च्युत नहीं होते । "उनका काव्य-व्यक्तित्व उन सारे परिवर्तनों को तटस्थ द्रष्टा के रूप में घटित होने केलिये छोड देता है, किन्तु उनकी आंतरिक अनुशासिका शक्ति इन सारे घटनाक्रमों को एक सुनिश्चित क्रम में अपने अनुसार व्यवस्थित करती हैं एवं रचना के स्तर को उद्घाटित करती है । पन्त की काव्यानुभूति का यह वैशिष्ट्य परवर्तीकाल में भी विद्यमान रहता है । इसे हम पन्त के सचेत इतिहासबोध भी कह सकते हैं ।"

"युगान्त" में संगृहीत अधिकांश कवितायें कवि की भाव-चेतना में व्यापक परिवर्तन का संकेत देती हैं । मनुष्य कल्याण की चिरन्तन - इच्छा से अभिप्रेरित होकर पन्त अपनी भाषा, संवेदनात्मक स्तरों तथा अपनी कथन-मुद्राओं में स्पष्ट एवं सहज होते हैं । "युगान्त" तक आते आते पन्त का सौंदर्य के प्रति जो अतिरिक्त आकर्षण था वह भी काफी संयत होने लगता है ।

"युगान्त" का कवि वायवीय कल्पनाओं से मुक्त होने का प्रयत्न करता दीखता है । उसका सौंदर्यबोध यथार्थ के जीवंत स्पर्श केलिये लालायित है । इस कृति में कवि एक गंभीर दार्शनिक आस्था से जुड़करही मनुष्य-कल्याण की महान कल्पनामें लीन है किन्तु कहीं भी वह "दार्शनिकता" के प्रति अतिरिक्त रूप से आग्रहशील नहीं रहा है । युगान्त का कवि अपार्थिव एवं अमूर्त सत्यों को अपना काव्य-विषय नहीं बनाता वरन् अपनी शक्ति सिर्फ एक बिन्दु पर केन्द्रित कर देता है । वह बिंदु है मनुष्य तथा उसका लक्ष्य है मानवता का कल्याण ।

---

1. सुमित्रानंदन पन्त - व्यक्तित्व और कृतित्व - डॉ॰रामजी पाडेय,
- पृ॰58

व्यक्ति और समाज के बीच एक अपूर्व संगति की कल्पना का संकल्प "युगान्त" में प्राय: ही दिखलाई पड़ता है । कवि ने आलोच्य कृति का नाम "युगान्त" रखकर सामंत एवं पूंजीवादी युग के अन्त की घोषणा की है । कवि की स्पष्ट राय है कि सामंत युग और पूंजीवादी युग की विकृतियाँ मनुष्य के स्वाभाविक विकास मे अवरोध उपस्थित करती हैं । सभ्यता एवं संस्कृति का आवरण मनुष्य को वस्तुस्थिति का साक्षात्कार नहीं करने देता

"शत मिथ्या वाद-विवाद, तर्क,
शत रूढि नीति, शत धर्म द्वार,
शिक्षा, संस्कृति, संस्था समाज,
यह पशु मानव का अहंकार ।"[1]

प्रकृति की अपार सौंदर्य श्री अब उसे आत्मविमुग्ध नहीं करती । पहले पन्त प्रकृति के भव्यरूप के प्रति अतिरिक्त रूप से उत्साही रहे, किन्तु अब प्रकृति में सर्वत्र पूर्णता का सुख और उल्लास देखकर उन्हें मानव की दयनीय स्थिति का ध्यान आ जाता है

"लगता सारा जग सद्य: स्मित ज्यों शतदल ।
है पूर्ण प्राकृतिक सत्य । किन्तु मानव-जग ।
क्यों म्लान तुम्हारे कुंज, कुसुम, आतप, खग ?"[2]

इसमें स्पष्ट ही पन्त की मानवतावादी प्रवृत्तियों का स्पष्ट आभास मिलता है । इसकी कुछ कविताओं पर स्वामी विवेकानंद के दृष्टिकोण की छाया बहुत स्पष्ट है । ज्यादा संभावना इस बात की है कि पन्त पर

1· युगान्त - पन्त, पृ·35

2· वही, पृ·24

विवेकानंद का प्रभाव उनके मानवतावाद के क्रमिक विकास में परिलक्षित होता है । विवेकानंद का नव-वेदान्तवाद निश्चय ही पन्त को आकर्षक लगा होगा । मनुष्य को ऊपर उठाने के प्रयत्न में स्वामी विवेकानंद ने इस बात पर बल दिया था कि स्वयं श्रेष्ठतम दिव्यसत्ता अर्थात् ब्रह्म-लाखों सामान्य जीवधारी मनुष्यों के रूप में अवतार लेता है और मानव-सेवा ईश्वर पूजा के ही समकक्ष है पन्त की मानवतावादी कविताओं पर निश्चय ही रवीन्द्रनाथ का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा था ।

"बापू के प्रति" नामक कविता "युगान्त" में है । बापू के व्यक्तित्व में कवि ने मानवता का चरम विकास देख लिया है इसलिये उन्होंने उन्हें जीवन की पूर्ण इकाई कहा है । अत्यन्त सशक्त भाषा में लिखी यह रचना भावना और चिन्तन के समन्वय का अनोखा रूप प्रस्तुत करती है । भौतिकता से संत्रस्त बौद्धिकवादों में भटकती हुई और वर्ग भेदों में बंटी हुई मानवता की रक्षा केलिये गांधी का अवतार हुआ था ।

इसकी कुछ रचनायें प्रकृति से संबंधित हैं । इनमें "बसन्त", "तितली" "संध्या", "शुक्र", "छाया", "बाँसों का झुरमुट" आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । लेकिन कवि का प्रकृति के प्रति भी दृष्टिकोण कुछ बदल गया है । इन में प्राकृतिक दृश्यों के ऐन्द्रिय चित्रण न मिलेंगे । "कवि ने इस में प्रकृति की अन्तरात्मा को पहचानने का प्रयत्न किया है ।"[1]

---

1. सुमित्रानंदन पन्त - कला, काव्य और दर्शन -
- गोपालदास नीरज,
सुधा सक्सेना, पृ. 121

"युगवाणी" प्रगतिशील युग की प्रथम रचना है । उसको भारतीय साम्यवाद की वाणी भी कहा गया है । पल्लव-गुंजनकाल की सौंदर्य भूमि को छोड़कर कवि जीवन के कठोर धरातल पर आ खड़ा है । मध्ययुग की संकीर्ण नैतिकता और मृत आदर्शों के प्रति अवशिष्ट मोह एवं अंधविश्वासों पर निर्मम प्रहार करते हुए कवि ने शोषण की समस्या पर भी अपनी दृष्टि डाली है अनेक स्थलों पर भोजन-वस्त्र, निवासआदि प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के अधिकार का समर्थन अथवा शोषित वर्ग के प्रति आन्तरिक सहानुभूति और शोषक के प्रति आक्रोश दिखाई पड़ता है । पन्त मार्क्स के भौतिकवादी दर्शन से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं । लेकिन किसी न किसी रूप में वे अध्यात्म की आवश्यकता भी अनुभव करते हैं । इसलिये "युगवाणी" में प्रगतिवाद का सिद्धान्त-निरूपण नहीं है, उसमें कवि के अध्ययन, चिंतन-मनन के परिणाम से उत्पन्न विचारों की हलचल अवश्य है और साथ ही किसी निश्चित सिद्धान्त अथवा निष्कर्ष तक पहुंचने का प्रयास भी दिखाई पड़ता है । बच्चनजी "विचारों की दृष्टि से युगवाणी को मौलिक रचना नहीं मानता "तत्व की बात यह है कि इसमें कवि ने मार्क्स को, अध्यात्मवाद से शोधित करने का प्रयास किया है[1] ।"

युगवाणी की प्रथम कविता का शीर्षक है "बापू" । कवि बापू के सत्य-अहिंसा के सिद्धान्त में चरम आस्थावान होते हुए भी प्रश्नोन्मुख है । आत्मा के उत्थान से ही मनुष्य का कल्याण होगा, ऐसा वह नहीं समझता । कवि ने न तो पूर्ण रूप से आत्मवाद को स्वीकार किया और न ही भौतिकवाद को । वह इन दोनों की अलग अलग सत्ता में विश्वास नहीं रखता । कवि का विश्वासहै कि दोनों अंतत: एक दूसरे के

---

1. कवियों में सौम्य सन्त - बच्चन, पृ. 75

पूरक हैं -

"भूतवाद उस धरा स्वर्ग केलिये मात्र सोपान,
जहाँ आत्मदर्शन अनादि से समासीन अम्लान ।"[1]

कवि इन पंक्तियों को ही "युगवाणी" की कुंजी कहता है । बाह्यजीवन एवं अंतर्जीवन के सुचिर समन्वय की तरफ ही कवि का संकेत है । "साम्राज्यवाद" शीर्षक कविता में साम्राज्यवाद तथा पूंजीवाद के अन्त को इतिहास की स्वाभाविक परिणति स्वीकार किया गया है । पूंजीवादी निशा साम्राज्यवाद का रजत स्वप्न नयनों में लेकर अपनी अंतिम घड़ियाँ गिन रहा है । रूपक के माध्यम से साम्राज्यवाद तथा पूंजीवाद के समाप्त होने की व्यंजना की गयी है -

"रजत स्वप्न साम्राज्यवाद का ले नयनों में शोभन
पूंजीवाद निशा भी है होने को आज समापन ।"[2]

"समाजवाद-गांधीवाद" नामक कविता में कवि साम्यवाद तथा गांधीवाद द्वारा मानव-सभ्यता को दिये गये योगदानों का उल्लेख करता है तथा दोनों दर्शनों के सार-तत्व की मीमांसा करता हुआ, उनके समन्वय की कामना करता है । कवि किसी भी एक दर्शन के प्रति अपनी अतिरिक्त आग्रह का प्रदर्शन नहीं करता =

मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हम को गांधीवाद,
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद ।[3]

---

1. युगवाणी - पन्त, पृ.19
2. वही, पृ.45
3. वही, पृ.47

भौतिकवादी विचारधारा जो मूलत: समता एवं संपन्नता का दर्शन है । यह पन्त के मन को आकर्षित करती है किन्तु पन्त चेतना की महत्ता को हमेशा प्रथम स्थान देते हैं, भूत की स्थिति उनके दिमाग में हमेशा द्वितीय ही रही है । "संकीर्ण भौतिकवादियों के प्रति" शीर्षक कवितामें स्पष्टत: वे भूतवाद को एक अपूर्ण दर्शन मानते हैं ।

"नारी" नामक कविता में कवि उसकी मुक्ति को आवश्यक मानता है क्योंकि उसका विश्वास है कि सभ्यता एवं संस्कृति का पूर्णोदय तभी संभव है जब नारी मुक्ति के वातावरण में स्वच्छंद विचरण कर सके -

मुक्त करो नारी को, मानव !
चिरवंदिनी नारी को,
युग युग की बर्बर कारा से
जननि, सखी, प्यारी को ।"[1]

"युगवाणी" में पूर्ण भौतिक दर्शन का सैद्धान्तिक निरूपण नहीं हुआ है और उसमें अध्यात्म दर्शन के भौतिक दर्शन के समन्वय के प्रयत्न का आभास मिलता है ।[2] " युगवाणी की भाषा में न गुंजन का सा रेशमी मार्दव है, न युगान्त की सी मांसल शक्ति, परन्तु इन गुणों के बदले उसमें एक अन्य विशेषता आ गयी - वह है भावों के अनुकूल नपे-तुले शब्दों का प्रयोग ।"[3]

1· युगवाणी - पन्त, पृ·64

2· सुमित्रानंदन पन्त काव्यकला और जीवन दर्शन,
- शचीरानी गुर्टू, पृ·141

3· सुमित्रानंदन पन्त - डा· नगेन्द्र, पृ·145

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि युगवाणी में कवि ने भारतीय जन-जीवन का अत्यंत गहरा और निकट से अध्ययन किया है । कवि का निश्चित विश्वास है कि युग पर छायी हुई जड़ता टूटेगी तथा समता, स्वतंत्रता तथा उच्च नैतिक मूल्यों से संचालित "नव संस्कृति" का प्रादुर्भाव होगा

"ग्राम्या" का कथ्य भारतवर्ष के ग्राम्य जीवन पर आधारित है । उसमें कवि ने ग्राम्य जीवन के समस्त अंगों, उसके सुख-दुःख, दैन्य निराशा, अशिक्षा, अन्धविश्वास, आनंद-विनोद, व्यथा-करुणा आदि का चित्रण प्रस्तुत किया है । "ग्राम", "ग्राम कवि", "ग्राम दृष्टि", "ग्रामचित्र" आदि कविताओं में ग्राम का अखण्ड चित्र अंकित किया है । इन में ग्राम को संपूर्ण रूप में देखा गया है । कवि ग्रामों की दैन्य-जर्जर अवस्था देखकर दुःखी होता है । वह देखता है कि -

"ज्ञान नहीं, तर्क नहीं है, कला न भाव विवेचन,
जन है, जग है - क्षुधा - काम, इच्छायें, जीवन-साधन ।
×× ×× ×× ××
रूढ़ि रीतियों के प्रचलित पथ, जाति-पाँति के बन्धन,
नियत कर्म हैं, नियम कर्म फल, - जीवन चक्र सनातन ।"[1]

"ग्रामनारी" शीर्षक कविता कवि की काव्यगत मान्यताओं के परिवर्तन की तरफ स्पष्ट संकेत है । कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

"है मांस पेशियों में उसके दृढ़ कोमलता,
संयोग अवयवों में, अश्लथ उसके उरोज,
कृत्रिम रति की है नहीं हृदय में आकुलता,
उद्दीप्त न करता उसे भाव कल्पित मनोज ।"[2]

1· ग्राम्या - पन्त, पृ·15

2· वही, पृ·21

"ग्रामदेवता" शीर्षक रचना में कवि ग्रामीणों के परिवर्तनरहित, रूढिवादी संस्कारों के प्रति आक्रोश प्रकट करता है । पत्थर के देवताओं के प्रति अंधविश्वास को कवि व्यंग्य के रंग में अंकित करता है । कवि ने विनोद करते हुए "राम-राम" से प्रारंभ होनेवाली प्रार्थना की निरर्थकता की तरफ संकेत किया है -

"राम राम,
हे ग्राम्य देवता, यथा नाम ।
शिक्षक हो तुम, मैं शिष्य तुम्हें सविनय प्रणाम ।"[1]

इतना तो स्पष्ट ही है कि सामंजस्य पन्त के काव्य की प्रमुख विशेषता है । पन्त के कृतित्व में विविध एवं विरोधी सी प्रतीत होनेवाली विचारधाराओं का अद्भुत समन्वय हुआ । पन्त युग सापेक्ष रहे हैं, किन्तु फिर भी उनके काव्य की एक विशिष्ट रेखा रही है जो कभी पूर्णतया तिरोहित नहीं हुई है । उनका परवर्ती रचनाओं का विकास-क्रम भी इसी दृष्टिकोण से मीमांसित होना चाहिये । जीवन दृष्टि की संपूर्णता में पन्त ने अपनी काव्य-स्थिति तथा वैशिष्ट्य को बडी ही सतर्कता एवं गहनता के साथ तलाश किया है । कवि पन्त का जीवन दर्शन भी बहुत कुछ परस्परविरोधी सी प्रतीत होनेवाली विचारधाराओं के समन्वय से ही संभव है । समन्वय का आधार पन्त ने स्वयं बहुत परिश्रम एवं मनन के पश्चात् गढा था तथा उसका प्रयोग वे अपने काव्य में करते रहे ।

---

1. ग्राम्या - पन्त, पृ.60

द्वितीय युग की रचनाओं के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यद्यपि कवि का मन मार्क्सवादी दर्शन से विशेष रूप से प्रभावित हुआ है फिर भी उन्होंने आध्यात्मिकता के पाश से मुक्ति नहीं पाई । उन्होंने मार्क्सवाद के राजनीतिक पक्ष का नहीं सांस्कृतिक पक्ष का समर्थन किया है । "चिदम्बरा" की भूमिका में उन्होंने कहा है - मेरी दृष्टि में "युगवाणी" से लेकर "वाणी" तक मेरी काव्य-चेतना का एक ही संचरण है जिसके भौतिक और आध्यात्मिक चरणों की सार्थकता, द्विपद मानव की प्रगति केलिये सदैव ही, अनिवार्य रूप से रहेगी[1] ।"

भौतिकवाद और आध्यात्मिवाद का समन्वय ही कवि का ध्येय है । वे कोरे भौतिकवाद को घातक मानते हैं और उसी प्रकार आध्यात्मिक अतिवाद को वर्जनीय । जीवन को शान्ति तथा सुख प्रदान करने केलिये भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय परम आवश्यक है । कवि न जगत् को पूर्ण निषेधात्मक मानता है और न उसकी पूर्ण स्वीकृति में विश्वास करता है । उन्हें इस सुख-दु:खात्मक जगत से अत्यंत अनुराग है । वे राग और विराग के समन्वय के पक्षपाती हैं । इन्हीं राग और विराग की लहरों पर पन्तजी का तन, मन, प्राण सब लहराता रहा है । पन्त जी की पंक्ति-पंक्ति में, कविता-कविता में, रचना-रचना में इसी राग और विराग की लय मौजूद है । यही लयं उनके जीवन की हर घड़ी में, हर आस्था में, हर दशा में मौजूद है ।

पन्त के काव्य-विकास में "युगवाणी" और "ग्राम्या" एक नये मोड के सूचक अवश्य हैं लेकिन इस पथ को प्रशस्त कर अधिककाल तक वे यात्रा नहीं कर सके । वे नवमानव की सुन्दरता की कल्पना से अभिभूत होकर

---

1. चिदम्बरा - पन्त, पृ.20

सांस्कृतिक समन्वय की स्थापना करना चाहते हैं । उनके इस समय के काव्य की विचारधारा को यदि दार्शनिक भाषा में हम कहें तो कह सकते हैं कि इन रचनाओं में कवि का मन अन्नमय कोष से उठकर मनोमयं कोष में अधिष्ठित हुआ है[1] ।"

1·3·3· तीसरा चरण - आध्यात्मिक चेतना का युग

इस युग में मुख्य रूप से "स्वर्ण-किरण", स्वर्णधूलि, उत्तरा, रंजतशिखर, अतिमा, वाणी, कला और बूढा चांद, लोकायतन तथा परवर्ती रचनायें आती हैं ।

ग्राम्या" के बाद तथा सन् 1942 के आन्दोलन के बाद पन्तजी की विचारधारा में एक बडा परिवर्तन आया । उनका मन साहित्य, संस्कृति तथा दर्शन ग्रन्थों में अधिक रमने लगा था । प्रकृति, जीवन और सौंदर्य की पगडंडियों को छोड़कर उनकी कविता अध्यात्म और चिन्तन के विस्तृत पथ से भावी समाज की ओर प्रस्थान करती है । आगे बढने केलिये वह आध्यात्मिक चेतना का संबल ग्रहण करती है ।

पन्तजी बीच में कुछ अस्वस्थ रहे और कुछ दिनों पाण्डिचेरी के सन्त अरविन्द के संपर्क में रहे । उन्होंने योगी अरविंद की आध्यात्मिक साधना का कविता द्वारा अभिनंदन किया । "पन्त का अध्यात्मवाद का आधार विरक्ति नहीं, मानव के मानसिक विकास के प्रति मनोवैज्ञानिक अनुरक्ति पन्त मानते हैं कि बाह्य के विकास केलिये अन्तर का विकास होना अनिवार्य है ।

1· पन्त का काव्य - दर्शन - डॉ· प्रतापसिंह चौहान, पृ·51

अविकसित चेतना पार्थिव विकास में सहायता नहीं करती । इसलिये वे भूत और चेतना, अध्यात्म और भौतिकता तथा मन और मस्तिष्क का समन्वय करके एक पूर्ण मानवीय विकास की कल्पना करते हैं ।[1]"

"स्वर्णकिरण" की रचनाओं में अरविंद दर्शन का पूर्ण प्रभाव अंकित है । पन्तजी को एक बार अरविंद की "दि लाइफ डिवाइन" पढ़ने को मिली । इसको पढ़ते ही कवि के मन में नवीन आशा और प्रेरणा का संचार हुआ । साथ ही अपनी शंकाओं का समाधान भी मिलने लगा । वे बहिर्चेतना से अन्तर्चेतना की ओर मुड़ गये । कवि स्वयं इस तथ्य को स्वीकार करते हैं । "इन्हीं दिनों मेरा परिचय श्री अरविंद के भागवत जीवन "दि लाइफ डिवाइन" से हो गया । उसके प्रथम खण्ड को पढ़ते समय मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे अस्पष्ट, स्वप्न चिन्तन को अत्यन्त सुस्पष्ट, सुगठित एवं पूर्ण दर्शन के रूप में रख दिया गया है । स्वर्णकिरण और उसके बाद की रचनाओं में यह प्रभाव, मेरी सीमाओं के भीतर, किसी रूप में प्रत्यक्षही दृष्टिगोचर होता है ।[2]"

"स्वर्णकिरण" की रचनाओं में भावनाओं की सरस मादकता और कल्पना के चटकीले रंग नहीं मिलते । आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कहें तो इस युग की "कविता गैरिक धारिणी सन्यासी के समान शांत और उदास विचारों की गंभीरता और पवित्रता से मंडित है और उसमें सांस्कृतिक उत्थान का आशा भरा संदेश है ।[3]" बच्चनजी ने इस उत्तरकाल को "ऊर्ध्व मूल्यों का काव्य"[4] कहा है । इसमें उनके अतिचेतन की ओर बढ़ने का प्रयास दिखाई पड़ता है ।

---

1. सुमित्रानंदन पन्त - काव्यकला और दर्शन - शचीरानी गुर्टू, पृ.143
2. शिल्प और दर्शन - पन्त, पृ.81=82
3. हिन्दी साहित्य - हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.435
4. नये पुराने झरोखे - बच्चन, पृ.224

इन रचनाओं के मूल में जो विचार-धारा है, वह वस्तुतः सांस्कृतिक चेतना है क्योंकि जो युग-विप्लव मानव जीवन के आर्थिक राजनीतिक धरातलों में महान क्रांतिकारी परिवर्तन करता है, वह उसकी मानसिक आध्यात्मिक आस्थाओं में भी आंतरिक विकास तथा रूपान्तर उपस्थित करने जा रहा है । इस विश्वास के साथ अन्तर और बाह्य दोनों ही क्षेत्रों में मनुष्य का समग्र विकास (जिसे पन्तजी बहिरंतर संयोजन कहते हैं) की दिशा में निरंतर बढ़ने के संकेत इन उत्तर कालीन रचनाओं में दिखाई देते हैं । "केवल आत्मा केलिये अनुभव-गम्य इन सूक्ष्म सत्यों को वाणी देने में कवि ने अनेक प्रतीकों का सहारा लिया है । ये प्रतीक हैं "स्वर्णकिरण (सौंदर्य चेतना), स्वर्ण-निर्झर (सौंदर्य चेतना), स्वर्णिम पराग (मन), रजतातप (आत्मनिमर्णि), इन्द्र धनुष (जीवन-निमर्णि), स्वर्णोदय (जीवन सौंदर्य) आदि ।"[1]

इन रचनाओं की श्रृंखला "स्वर्णकिरण" से आरंभ होती है । स्वर्णकिरण और स्वर्णधूलि का अधिकांश काव्य सैद्धान्तिक है । उसमें कल्पना छवियों की समृद्ध योजना निहित है लेकिन कथ्य का प्रस्तुतीकरण अधिकतर सिद्धांत निरूपण की शैली पर हुआ है इसलिये उसमें कवित्व की सरसता के अभाव की शिकायत की गयी है जो बहुत अंशों में सही है ।

"स्वर्णकिरण" में कवि आशा - उल्लास और प्रवाह भरे हृदय से जीवन की नवीन स्फूर्ति का अनुभव करते हैं । अरविंद दर्शन से जो आत्मिक शांति उन्हें प्राप्त हुई थी उसका पुण्य लाभ वे पाठकों को भी देना चाहते हैं । अरविंद दर्शन की विचार सूक्तियाँ अनेक

1· पन्त का काव्य - डॉ· उपेन्द्र, पृ·43

स्थलों पर कवि ने ज्यों का त्यों रख दी हैं । "स्वर्णकिरण" उनकी अभिनव सौंदर्य चेतना है जिसके प्रकाश से वे युगों का अन्धकार नष्ट करना चाहते हैं -

"युगों का तमस हरण
करे यह स्वर्ण-किरण ।"[1]

"संमोहन", "रजतातप", "स्वर्ण निर्झर", "ऊषा चन्द्रोदय", "द्वा सुपर्णा", "इन्द्र धनुष", "हरीतिमा", "छायापट", "स्वर्णोदय" आदि इस काव्य संग्रह की प्रतिनिधि रचनायें हैं । इन सभी कविताओं में सांसारिक जीवन को विकसित करनेवाली मंगलकारी आध्यात्मिकता को विविध प्रतीकों के माध्यम से अवतरित किया गया है । इन कविताओं के चिन्तन का सार यही है कि शांति, आनंद अथवा ईश्वर प्राप्ति केलिये भू जीवन का त्याग आवश्यक नहीं । उस केलिये नवीन रूप से लोक जीवन निर्माण करने की आवश्यकता है ।

पन्त केलिये प्रकृति एक अद्भुत आकर्षण से युक्त सत्ता रही है । इस काल तक आते आते उनका जीवन के साथ ही साथ प्रकृति के प्रति भी दृष्टिकोण बदल गया है । अब उनकी प्रौढ कल्पना ने प्रकृति के रंग-रूप और भावाकुल सौंदर्य को प्रगाढ सात्विक रूप दे दिया है । "हिमाद्रि" "स्वर्णनिर्झर",, "उषा" आदि कविताओं में कवि ने गाढे और तरल रंगों से प्रकृति के सौंदर्य को चित्रित और सूक्ष्म भावों से संवेदित किया है । विराट् भावना से प्रेरित होकर पन्त ने प्रकृति का भीषण रूप स्वीकार नहीं किया, उन्होंने सौंदर्य के व्यापक महत् में उसे व्यक्त किया है । कवि अब प्रकृति को संस्कारवादी कल्पनाओं और प्रसंगों से अलंकृत करके उसमें गंभीर प्रभाव का समावेश करता है -

---

1. स्वर्णकिरण - पन्त, पृ.2

"नील पंक धँसा अंश जिसका
उस श्वेत कमल सा शोभन
नभोनीलिमा में प्रभात का
चाँद उनींदा हरता लोचन ।"[1]

"स्वर्णधूलि" भी "स्वर्णकिरण" की समकालीन रचना है । इस में संग्रहीत सभी रचनाओं का मूल स्वर सामाजिक है । किन्तु यह सामाजिक व्यवस्था भौतिकता तथा आध्यात्मिकता के समन्वय से ही संभव है । इनमें "पतिता" कविता विशेष आकर्षक है जिसमें बताया गया है कि शरीर की अपवित्रता नारी को कलंकित नहीं करती । क्योंकि रज की देह तो सदा से ही दूषित है । सच्ची पवित्रता तो आत्मा की है -

"मन से होते मनुज कलंकित,
रज की देह सदा से दूषित,
प्रेम पतित पावन है, तुम को
रहने दूँगा मैं न कलंकित ।"[2]

सैद्धांतिक कविताओं में "सामंजस्य", "लोकसत्य", "स्वप्न निर्बल" की गणना की जा सकती है । "सामंजस्य" शीर्षक रचना में कवि ने भाव - सत्य और वस्तु - सत्य के समन्वय में पूर्ण मानवता को देखा है । जीवन में पूर्ण संतुलन की स्थापना इन दोनों के अनिवार्य समन्वय से ही संभव है । कवि को यह प्रेरणा संभवत: श्री अरविंद के "अंतर्बाह्य" अथवा भौतिक आध्यात्म संगठन के सिद्धान्त से मिली है -

---

1· स्वर्णकिरण - पन्त, पृ·68

2· स्वर्णधूलि - पन्त, पृ·118

"पंख खोल सपने उड जाते,
सत्य न बढ पाता गिन-गिन पग,
सामंजस्य न यदि दोनों में
रहती में, क्या चल सकता जग ?"[1]

संक्षेप में इस काव्य रूपक के माध्यम से पन्त ने "पूर्णनारी" की अपनी चिर परिकल्पना को एक सार्थक रूप प्रदान किया है । "मानसी" एक काव्यात्मक नाट्य रूपक है । इस रूपक में युग युग से अज्ञान और दासता की श्रृंखला में जकडी हुई नारी का जागरण की पटभूमि पर स्थापित करके और उसकी अगम अवचेतना असंख्य मांगलिक रूपों और शक्ति प्रतीकों को बंधन मुक्तकर नये प्रकाश में उतारकर रखा गया है । युवक-युवती का पारस्परिक प्रेम दो प्राणों का बंधन नहीं है, वह अस्थिर विरह मिलन क्षण भी नहीं है । वह जीवन के अनंत सृजन की असीम मुक्ति है ।

"उत्तरा" नाम कवि ने इसलिये दिया है कि इसमें उनकी उत्तरकालीन रचनायें संग्रहीत है । इसकी अधिकांश रचनाओं का स्वर भाववादी है । "चिदम्बरा" के चरणचिह्न में स्वयं पंतजी ने "उत्तरा" को सौंदर्य बोध तथा भाव -ऐश्वर्य की दृष्टि से, मैं अब तक की अपनी सर्वोत्कृष्ट कृति मानता हूं ।"[2]

"उत्तरा" की प्रस्तावना में कवि ने अपनी जीवन दृष्टि के कतिपय सूत्र पर्याप्त स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किये हैं । कवि ने मार्क्सवादी जनतंत्र तथा भारतीय जीवन-दर्शन को शान्ति तथा लोक-कल्याण केलिये

---

1. स्वर्णधूलि - पन्त, पृ.104
2. चिदम्बरा - पन्त, पृ.12

आदर्श संयोग माना है। इसमें कवि की जीवनदृष्टि बहिरंतर जीवन के समन्वय का पक्ष लेकर फिर आयी है । उसमें बाहर के साथ भीतर की क्रांति का आह्वान भी सम्मिलित है । इसमें कुछ प्रतीकात्मक, कुछ युग - जीवन से संबंधित, कुछ प्रकृति तथा वियोग-श्रृंगार प्रधान कवितायें और प्रार्थनागीत हैं ।

समकालीन युग संदर्भ हृदय और बुद्धि के द्वंद्व से पीड़ित है । हृदय में जिन अभिप्रेरकों का अभ्युदय होता है बुद्धि उनकी आलोचनाकर उनको काट देती है । कवि इस द्वंद्व की कामना करते हुए गा उठता है -

"फिर स्वर्ग बजाये
भू की हृत्तंत्री निश्चय,
जो ज्ञान भावना,
बुद्धि हृदय का हो परिणय ।"[1]

इस संग्रह की कविताओं में प्रकृति के प्रति कवि के मन में एक महान परिवर्तन दिखलाई पड़ता है । काव्य के बहिरंग में प्रकृति का प्रयोग अलंकार रूप में भी हुआ है तथा प्रतीक रूप में भी । किन्तु पन्त ने प्रतीक विधान तथा अलंकार योजना केलिये प्रकृति के नियत रूपों तथा व्यापारों को ही ग्रहण किया है । "युगछाया " शीर्षक कविता में कवि ने मेघों के अलंकार के द्वारा वर्तमान जीवन के नैराश्य को अभिव्यक्त किया है । वही संध्या द्वारा संक्रान्तिकालीन विषय परिस्थितियों को व्यंजित किया गया है -

"दारुण मेघ घटा घहराई,
युग संध्या गहराई ।

---

1. उत्तरा - पन्त, पृ.45

आज धरा प्रांगण पर भीषण
झूल रही परछाईं ।[1]"

शरदागम, शरदचेतना, शरदश्री, चन्द्रमुखी आदि कविताओं में पन्त अपनी काव्यप्रतिभा को नवीन सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्यों में उद्घाटित करते हैं -

"तुम फिर स्वप्नों का पट बुनती
ले जीवन मे छाया प्रकाश,
फिर गीत स्वरों का जाल गूंथ
उलझाती सुख दु:ख अश्रु हास ।[2]"

पन्त विश्व-संस्कृति के कवि हैं । राष्ट्रीयता एवं अंतर्राष्ट्रीयता का कोई विरोध उन्हें मान्य नहीं । "उद्बोधन" शीर्षक कविता में भी यह स्वर स्पष्ट है -

"मानव भारत हो नव भारत
जन मन धरणी सुन्दर,
नवल विश्व हो आभा-रत,
सकल मानवों का घर ।[3]"

---

1. उत्तरा - पन्त, पृ.5
2. वही, पृ.101
3. वही, पृ.17

"रजत शिखर" पंतजी के छः रूपकों का एक संग्रह है । इसमें मानव के ऊर्ध्व और समतल संचरणों के समन्वय का प्रयास किया गया है । मनोविश्लेषणवादियों द्वारा निरूपित मानव के उपचेतन, अवचेतन आदि निम्नगामी संचरणों की कल्पना भी की गयी है । इस में आज के राजनीतिक नेताओं पर गहरा व्यंग्य किया गया है ।

"अतिमा" की "नेहरू युग", "अभिवादन", "लोकगीत", "सहस्थिति", "पंचशील" आदि कवितायें श्रेष्ठ हैं । प्रकृति, संबंधी कविताओं में "जन्मदिवस", "गिरिप्रांत", "पतझर", "कूर्मांचल के प्रति" आदि कविताओं की गणना की जा सकती है । "कूर्मांचल के प्रति" में कवि ने हिमालय का विस्तृत वर्णन किया है । इसमें कवि ने अपनी जन्मभूमि के हिमाच्छादित सौंदर्य एवं उसकी नैसर्गिक सुषमा का चित्रण अत्यंत विस्मय विमुग्ध होकर किया है -

"जन्मभूमि, प्रिय मातृभूमि की शीर्ष रत्न, शत स्वागत !
हिम सौंदर्य किरीटित जिसका शारद भाल समुन्नत
उषा रश्मि स्मित, स्फटिक शुभ्र, स्वर्णिम शिखरों में उठकर ।"[1]

"वाणी" संग्रह का मूल स्वर सामाजिक है । इसमें संग्रहीत "आत्मिका" शीर्षक आत्मकथात्मक लंबी कविता कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है । इसमें कवि ने अपने जीवन दर्शन की सविस्तार व्याख्या की है । आत्मपरक होने के बावजूद यह कविता एकरसता से ग्रस्त नहीं है । कवि का अत्यंत संवेदनशील काव्य-व्यक्तित्व इस कविता में कई स्तरों पर उद्घाटित हुआ है -

---

1. "अतिमा", चिदंबरा - पन्त, पृ.309

"नहीं भूलता सहज मनुज मन
प्रिय किशोर वय के स्मृति-दंशन,
मनोग्रन्थि-निर्माणकाल वह
रंजित जिसमें जीवन-दर्शन ।"[1]

"वाणी" में संग्रहीत बुद्ध के प्रति कविता में नवीन जीवन मूल्यों का युग संदर्भ के अनुसार प्रतिपादन किया गया है । प्रौढ़ता एवं भाव-संप्रेषणीयता, शिल्प एवं कथा की एकान्विति की दृष्टि से निश्चय ही यह एक महत्वपूर्ण संग्रह है ।

"कला और बूढ़ा चाँद" में पन्तजी कवि न होकर विशुद्ध द्रष्टा हो गये हैं । इन रचनाओं में एक दार्शनिक की तटस्थता और आत्मविश्वास दोनों ही मिलते हैं । आज की नयी कविता छंद की लय छोड़कर अर्थ की लय के साथ चलना उचित समझती है । पन्तजी ने भी "कला और बूढ़ा चाँद" में संभवत: वही शैली अपनाई है । इसलिये "कला और बूढ़ा चाँद" शैली की दृ से पन्त के संपूर्ण काव्यक्षेत्र में अपना अलग स्थान रखता है । प्रतीकों और विरोधाभासी शब्दों का खूब प्रयोग किया गया है ।

प्रतीकों का प्रयोग पन्त पहले भी करते रहे हैं किन्तु इस संग्रह तक आते आते अनुभूति तथा दर्शन विचार की मौलिकता से उनके प्रतीक भी नितांत मौलिक एवं अर्थसंप्रेष्य हो गये हैं -

"मैं शब्दों की
इकाइयों को रौंदकर
संकेतों में

---

1. वाणी, संयोजिता, पृ. 177

प्रतीकों में बोलूँगा ।
उनके पंखों को
असीम के पार
फैलाऊँगा[1] ।"

आज की दुनिया एक विचित्र सांस्कृतिक संकट के बीच से होकर गुजर रही है, इस भयावह परिस्थिति में भी कलाकार अपने रचनात्मक दायित्व बोध से च्युत नहीं होता ।

"ओ रंभाती नदियो,
बेसुध
कहाँ भागी जाती हो ?
वंशीरव तुम्हारे ही भीतर है[2] ।"

निश्चय ही इस संग्रह में संकलित कुछ कविताओं केलिये अरविंद साहित्य के उन प्रतीकों और वातावरण प्रतिष्ठापन की उस प्रणाली का ज्ञान आवश्यक है जिससे कवि अपने "निज" को अभिव्यक्ति प्रदान करता है । उनके काव्य की एक विशिष्टता है - उसकी आंतरिक संगति । आस्था और लोकमंगल की प्रतिष्ठा केलिये कवि संपूर्णत: प्रतिबद्ध है । उनकी काव्यदृष्टि वायवीय भावभूमि से ऊपर उठकर ऊर्ध्व सांस्कृतिक धरातल पर प्रतिष्ठित है जहाँ न अतीत की जकड़न है न वर्तमान की कुत्सा । यह काव्यकृति उनकी भव्य शोभामय काव्ययात्रा का महत्वपूर्ण चरण है ।

---

1 कला और बूढ़ा चाँद - पन्त, पृ•193
2• कला और बूढ़ा चाँद - पन्त, पृ•19

"लोकायतन" पन्तजी का महाकाव्य है । इस विशालकाय महाकाव्य को विचारों की बहुलता ने एक बड़ा वृहत् आकार दे दिया है । यह पन्तजी की परवर्ती काव्य-साधना के सभी पक्षों का परिचायक अथवा प्रतिनिधि ग्रन्थ है । इस में पल्लवकालीन सौंदर्यचित्रों की कला, युगवाणीकाल का बौद्धिक वैभव और उत्तरकाल की अध्यात्म चेतना नवीन रूप में उद्घाटित हुई है ।

इस में कवि का विश्वास है कि इस भूमि पर "नवमानव" का अवतरण होगा । कवि ऊर्ध्वमुखी मनुष्य की कल्पना करता है । उनकी निश्चित धारणा है कि धरा ही स्वर्ग है और इस पर स्थित मनुष्य ही ईश्वर है । संभवत: इसी कारण वह मनुष्य को "भू-ईश्वर" की संज्ञा देता है । कवि जब भू- मानव और लघुमानव की बात करता है तो वह वस्तुत: चेतनात्मक धरातल की स्थिति की तरफ ही संकेत करता है ।

"किरणवीणा" में कवि ने युगबोध के अनेक नवीन आयामों का स्पर्श किया है । इसमें चिन्तन प्रधान और दार्शनिक गीतों की भरमार है

"पुरुषोत्तम राम" आत्मपरक लंबी कविता है । यह "किरणवी की अंतिम लंबी कविता है और अलग से भी प्रकाशित हो चुकी है । लगभग पचास पृष्ठों तक फैली यह कविता "वाणी" की "आत्मिका" शीर्षक कविता की तरह कवि के जीवन और उसकी काव्य-यात्रा के अनेक महत्वपूर्ण मोड़ों का वर्णन करती है । साथ ही मध्ययुगीन सांस्कृतिक मूल्यों तथा आधुनिक भारत के राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक वातावरण से असंतोष प्रकट करते हुए नव विश्व जीवन और उसके निर्माण में भारत की भूमिका की कल्पना भी रखी गयी है । समस्त कविता कवि के मन को समझने में हमारे लिये बहुत उपयोगी होगी पर शुद्ध काव्य की दृष्टि से उसका मूल्य न्यून ही है, यह स्वीकार करना होगा ।

"पौ फटने से पहले" में वर्तमान युग की परिवर्तित परिस्थितियों में हृदय में राष्ट्रचेतना का अभिनव संचरण किस प्रकार संभव है, इसके पर्याप्त संकेत दिये गये हैं ।

"पतझर" एक भावक्रांति" आज के युगसंघर्ष का प्रतिनिधित्व करता है अधिकतर रचनायें भाव प्रधान तथा युगबोध से प्रेरित हैं ।

"गीतहंस" के गीतों की वैचारिक भूमि कोई नवीन नहीं है । पिछले तीस वर्षों से पन्तजी जो कहते आ रहे हैं वही सब प्रकारान्तर से दोहराया गया है । उनकी राय में मानव जीवन के परम्परागत मूल्यों का विघटन हो रहा है, जीवन को नवीन मूल्यों में संपृक्त करना है ।

"शंखध्वनि" में मुख्यत: नये जागरण के स्वरों को तथा विश्व जीवन के भीतर उदय हो रहे मनुष्य की रूपरेखाओं को अभिव्यक्ति मिली है ।

"शशि की तरी" अन्य रचनाओं से भिन्न है, वह पन्तजी के ही शब्दों में "स्मृतिगीत है ।"

"समाधिता" में पन्तजी के जीवन की गंभीर अनुभूतियों को अभिव्यक्ति मिली है तथा युग जीवन के संघर्ष को काव्यानुरूप वाणी मिली है

"आस्था" की रचनायें युगजीवन के यथार्थ से प्रेरित है । इन कविताओं का मुख्य सार यह है कि मनुष्य बाह्य वस्तुगत मूल्यों को अधिक महत्त्व देने लगा है और आंतरिक मूल्यों के प्रति विरक्त अथवा तटस्थ सा हो गया है ।

"सत्यकाम" पन्तजी का दूसरा महाकाव्य है जो मूलतः धरती के जीवन का काव्य है । इसमें उन्होंने औपनिषदिक पृष्ठभूमि की कसौटी ही में आधुनिक जीवन-मूल्यों को आंकने का प्रयास किया है ।

"गीत-अगीत" में उन्होंने एक प्रकार से युग-वैषम्य को अभिव्यक्ति दी है ।

"संक्रांति" उनकी आखिरी कृति है । यह 1977 के चुनाव के बाद लिखा हुआ काव्य संग्रह है । इसमें सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक विचारधारा लक्षित होती है ।

इस प्रकार "लोकायतन" से लेकर "संक्रांति" तक की रचनाओं में एक प्रकार के नव्य चिंतन की विशिष्टता दिखाई पड़ती है । वे विश्वास करते हैं कि एक ही परम सत्य है जो धरती की हरीतिमा में, विश्व तथा विश्वातीत में हैं । उनकी सभी रचनाओं का केन्द्रीय सत्य यही चेतना है । युगीन संघर्ष और सीमाओं पर वे प्रकाश डालते हैं । शचीरानी ने इस युग के संबंध में बताया है - "पंतजी के काव्य-जीवन का यह काल "अध्यात्मयुग है जो मनोवैज्ञानिक आध्यात्मवाद पर आधारित मानववाद है जिसमें चेतना और आदर्श का समन्वय है जो पन्त का नवमानववाद है[1] ।"

पन्त के क्रमिक काव्य-विकास की यह कहानी बड़ी सरल और व्यावहारिक है । "युगों के परिवर्तन के साथ अपने व्यक्तित्व का सामंजस्य करते चलना और उसके अनुकूल अपनी आत्माभिव्यक्ति की भूमि खोज लेना

---

1. सुमित्रानन्दन पन्त - काव्यकला और जीवन दर्शन - शचीरानी गुर्टू, - पृ. 145

पन्त की अपनी विशेषता है ।[1]" उनका समन्वयशील दृष्टिकोण वैयक्तिक और सामाजिक जीवन दृष्टियों में नवीन सामंजस्य की खोज में संलग्न है और यह खोज उनके समस्त काव्य-विकास का मूलमंत्र रही है । भीतर तथा बाहर के सत्य को एक दूसरे के निकट लाना ही पन्त के काव्य-विकास का केन्द्र-बिंदु है[2]

इस तरह हम देखते हैं कि पन्त की काव्य-यात्रा प्रकृति, प्रेम, नरजीवन, भूजीवन के सोपानों से होती हुई अन्त में आत्मा की गहराई में विलय हो गयी ।

1·4· निष्कर्ष

पन्त के काव्य को समझने केलिये उन के साधारण व्यक्तित्व और काव्य-व्यक्तित्व के विकास का समानांतर अध्ययन अत्यंत आवश्यक है । व्यक्तिगत जीवन में वे जैसे शालीन, मधुर, अभिजात, सहानुभूतिशील और बौद्धिक हैं वैसे ही अपने काव्य में भी । गाँधीजी से प्रभावित होकर उन्होंने पढाई छोड दी । इसके बाद मानसिक बौद्धिक स्तर पर और जीवन की ठोस भौतिक भूमि पर भी उन्हें लगातार संघर्ष में जीना पडा । उस अशांति के परिहार केलिये उन्होंने उपनिषद्, गीता, रामायण, रामकृष्ण-वचनामृत, विवेकानंद, रामतीर्थ, पतंजलि, रस्किन, टॉस्टॉय, कार्लाइल, थोरो इमरसन आदि का गंभीर अध्ययन किया ।

1· समसामयिकता और आधुनिक हिन्दी कविता - डॉ·रघुवंश, पृ·5
2· सुमित्रानंदन पन्त - सं· इन्द्रनाथ मदान, पृ·243

उनके काव्य-व्यक्तित्व की पहली विशेषता यह है कि जीवन के प्रति उनकी सहज उन्मुखता । उन्हें लिखने की प्रेरणा सदैव अपने बाहर के जीवन से आती है । वे अपने व्यक्तिगत जीवन में आत्मकेन्द्रित कुछ रहे हों, साहित्य में कभी नहीं रहे । "वीणा" से "संक्रांति" तक की उनकी काव्य-यात्रा में जीवनोन्मुखता सदैव भिन्न भिन्न आयामों में प्रकट होती रही है ।

उनके काव्य व्यक्तित्व की दूसरी विशेषता को उनकी भाव-दृष्टि कहा जायेगा । कुछ लोग पन्त की कविताओं में बौद्धिकता का आरोप करते हैं । लेकिन बौद्धिकता ने जिस विश्लेषणमूलक दृष्टि की अपेक्षा होती है, वह पन्त के काव्य में नहीं है । वे अपने चतुर्दिक के जीवन का सीधा सामना या साक्षात्कार करते हैं और उसे अपने ग्रहण के अनुरूप चित्रित कर देते हैं । उनका समस्त परवर्ती काव्य निष्कर्षों की उपलब्धि का काव्य है । यहाँ इतना ही कहना है कि निष्कर्षों की उपलब्धि उन्होंने बौद्धिक पद्धति की बजाय संवेदनात्मक पद्धति पर की ।

पन्त की जीवनदृष्टि आद्यन्त मुख्यत: दो प्रेरक तत्वों से परिचालित हुई है - एक को हम पूर्णता की खोज कह सकते हैं, दूसरे को सामंजस्य की खोज । कवि की खोज प्रारंभ से ही पूर्ण जीवन की ओर है । कोई दर्शन, कोई वाद, कोई संप्रदाय, कोई दृष्टि उस खोज की सारी शर्तों को पूरा नहीं कर पाती । इसीलिये गाँधी, मार्क्स और अरविंद से पन्त पूरी तरह सहमत नहीं थे । अपनी अपनी पद्धति पर गाँधीजी, मार्क्स और अरविंद ने भी एक पूर्ण जीवन का स्वरूप कल्पित किया । ये तीनों जिस तरह परस्पर भिन्न निष्कर्षों पर पहुँचते हैं, उसी प्रकार पन्त इन तीनों से ही भिन्न निष्कर्षों पर पहुँचते हैं । अपनी विलक्षण भाव-दृष्टि द्वारा वे जीवन की पूर्णता की एक परिकल्पना करते हैं । पूर्णता की यह खोज निरन्तर उनके काव्य

दिखाई पड़ती है । पूर्ण से पूर्णतर की ओर जाना पन्त का लक्ष्य था । सौंदर्यचेतना, भू-चेतना, बौद्धिक चेतना और अध्यात्म चेतना इस क्रम से इस खोज का विकास प्राय: निरूपित किया जाता है ।

पन्त के काव्य-व्यक्तित्व की अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता जो उनकी जीवन-दृष्टि को निर्धारित करनेवाली सामंजस्य की भावना है । जीवन के वैषम्यों, अनेकताओं और विरोधों में पन्त सदैव एक सामंजस्य की खोज करते हैं । "गुंजन" तक आते आते कवि जीवन से पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर चुका और आगे उनकेलिये जीवन विषमतायें स्वकीय हो जाती हैं । ग्राम्या के बाद के पन्त का समस्त काव्य एक प्रकार से सामंजस्य का ही काव्य है ।

****

दूसरा अध्याय

लोकायतन कृति परिचय

दूसरा अध्याय

2. लोकायतन कृति परिचय

पंतजी का काव्य विकास पिछली लगभग आधी शताब्दी की हिन्दी कविता के इतिहास के साथ एकाकार हो गया है । केवल हिन्दी ही नहीं, विश्व की अन्य भाषाओं में भी कम कवि ऐसे होंगे, जो इतनी दूर तक न केवल युग का साथ दे पाते हैं, प्रत्युत उसके निर्माण, नेतृत्व और संवर्द्धन में भी सफलता पूर्वक हाथ बँटाते हैं । अभी अभी उनका "लोकायतन" नामक महाकाव्य सामने आया है जो उनके विचारों - आदर्शों का समन्वित रूप है । पंतजी के चुने हुए पथ से मतभेद हो सकता है, पर वे जिस आदर्शलोक के स्वप्न द्रष्टा हैं, इसमें संदेह नहीं, वह आदर्श मानवता की आशाओं का सबसे ज्योतिर्मय केन्द्र है।[1]

---

1. नई धारा "कवि पंत की काव्य साधना" - प्रो. आनंद नारायण शर्मा, मई 1964, पृ. 12

लोकायतन महाकवि पन्तजी की लोकचेतना का महाकाव्य है । यह पन्तजी की काव्यपरम्परा की महत्वपूर्ण कड़ी है। यह एक महान् भागवत काव्य है जो जगत जीवन के विकास-ह्रास में वैश्व चैतन्य के संचरण को समझाता है।[1]" इस नवीनतम और विशालकाय महाकाव्य को पन्तजी अपने संपूर्ण जीवन की संचित भावराशि मानते हैं। इस महाकाव्य के महत् कलेवर में कवि का समस्त जीवन दर्शन समाहित है। स्मृति पटल पर संचित जीवन के व्यापक अनुभवों को इसमें वाणी मिली है । महाकाव्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि लोकायतन में चित्रित विचार-सरणि अपने आप में नवीन नहीं । पल्लवकाल से ही जहाँ-वहाँ इस प्रकार के विचारों का प्रादुर्भाव कवि के काव्य में होने लगा था । इसके बाद लोकायतन तक की रचनाओं में जो विचारधारायें और मान्यतायें अभिव्यक्त हुई हैं, वे सब संयोजित रूप में लोकायतन में समाविष्ट है ।

यह स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त लिखा गया महाकाव्य है । यह संक्रांतिकाल था । प्राचीन शीर्णजीर्ण मान्यतायें नष्ट हो रही थीं । नवीन मान्यताओं के भवनों का शिलान्यास हो रहा था । समग्र युग एक नवीन चेतना से अनुप्राणित था । साहित्य, कला, समाज, धर्म और राज-नीति सभी क्षेत्रों में एक क्रान्ति हो रही थी । इन्हीं संक्रांतिकालीन विचारवीथियों से "लोकायतन" की कथा अग्रसर होती है । इस संदर्भ में डॉ॰ देवराज ने कहा है "लोकायतन" में इस प्रकार से कवि ने भारत के इतिहास का विहंगावलोकन किया अथवा सर्वेक्षण करने का प्रयत्न किया है[2] ।

---

1. सुमित्रानंदन पन्त जीवन और साहित्य - शांतिजोशी, पृ॰515
द्वितीय खण्ड

2. कल्पना प्रतिक्रियायें - डॉ॰ देवराज, मई 1965, पृ॰34

लोकायतन में पन्तजी ने वर्तमान की विघटित परिस्थितियों की मांगलिक झांकी प्रस्तुत की है । कवि के अनुसार लोकायतन का प्रतिपाद्य विषय है - गांधीयुग का मूल्यांकन और वह वैचारिक संक्रमण जो विज्ञान के द्वारा आनीत जीवन के भौतिक विकास तथा आन्तरिक जीवन की संगति के ह्रास से पैदा हुआ है[1] । लोकायतन का धरातल व्यक्तिगत नहीं है, विश्वजनीन है, यह भूत, वर्तमान और भविष्य की चेतना को एकसूत्रता में गूंथकर यह बतलाता है कि सब कुछ एक ही व्यापक सत्य के स्फुलिंग हैं, यह सत्य परिस्थितियों द्वारा अपने को व्यक्त करता है । अतः लोकायतन में पुरातन नवीन है और और नवीन पुरातन है[2] ।" इसमें पन्तजी के सौंदर्य-बोध, भाव-चेतना और विचार-नैवेद्य को समग्र रूप में देखा जा सकता है और कवि के विकास-सोपान में यह काव्य उच्चतम स्थिति-बिन्दु का द्योतक है । देश-काल-सापेक्ष इसका महत्व है, क्योंकि भारतीयों को मध्ययुगीन भग्नावशेषों से उबारकर, यह काव्य नवीन की दिशा में पथ-निर्देश करता है । वैयक्तिक चैतन्य के लिये लोकायतन का महत्व इसलिये है कि बाह्य हलचलों के मध्य रहकर भी वह अक्षत और आनंदमय रह सके, ऐसी प्रेरणाशक्ति लोकायतन के पाठक को प्राप्त होती है । कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर हमें लोकायतन में मिल सकता है सार्वभौम और भारतीय, विगत, वर्तमान और अनागत, वैयक्तिक और निर्वैयक्तिक, वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक, लौकिक और लोकोत्तर, अस्तित्व और आस्था, भव और अनुभव ।

---

1. The Illustrated weekly of India, A conversation with Sumithranandan Pant, May 24, 1964, p.14

2. सुमित्रानंदन पन्त जीवन और साहित्य - शांति जोशी, पृ.54।

लोकायतन में कवि ने स्वतंत्रता के पूर्व और पश्चात् की भारत की कथा का वर्णन किया है । यह दो खण्डों में बाह्य परिवेश और अन्तश्चेतना में विभक्त है । 680 पृष्ठों के इस महाकार काव्य में अन्त:बाह्य का संतुलित उन्नयन, योगिराज अरविंद का अतिमानस दर्शन, भारत की युगीन स्थिति, समकालीन संघर्ष संकुल जीवन, समस्त आपाधापी, गांधीवाद का जागरण स्वर तथा जीवन के शाश्वत मूल्यों का अवतरण एवं विश्व की आधुनिकतम वैज्ञानिक प्रगति को संयोजित करने का सफल प्रयत्न किया गया है । इसके अलावा इन दोनों खण्डों में कवि ने विषम देशकाल, परिस्थितियों और अन्धविश्वासों से जर्जरित भारतीय जनजीवन का सुन्दर और मर्मस्पर्शी चित्रण किया है । सुन्दरपुर भारत के दारिद्र्य, अशिक्षा और अन्धविश्वासों का प्रतीक है ।

"हिन्दी में संभवत: प्रथम बार वायुयान की यात्रा का भावात्मक, प्रभावशाली और विस्तृत वर्णन आया है ।
ब्रह्माण्ड का रोमांचक चित्रण, विज्ञान की महत् देन का विशाल अंकन, यंत्र-युग के सूत्रधार पश्चिमी देशों का वर्णन, विज्ञान की देन का उद्घाटन आल्प्स, जिनेवा, फ्रांस, यूनान, मिश्र, रोम, नार्वे, स्वीडन, स्टाकहोम, इंग्लैंड, लंदन, रूस, लेनिनग्राड, मोस्को, बोल्गा, अमेरिका और जापान आदि का एकदम मौलिक और मर्मस्पर्शी वर्णन यहां पाते हैं । पहली बार हिन्दी का कोई महाकाव्य विश्व-काव्य के स्तर पर आया प्रतीत होता है । यह विश्ववर्णन कोरा वर्णन नहीं है, इसका कवि ने भावात्मक स्तर पर वर्णन किया है जो पर्याप्त संवेदनीय एवम् आधुनिकता बोध से ओतप्रोत है । उस का समग्र प्रभाव बहुत भव्य है । इस में विश्व-ऐक्य का भाव-स्वर बहुत सशक्त है । एक दृष्टि में समूचे विश्व को देखकर कवि रो पड़ता है ।

विश्व को आज शांति की भारी आवश्यकता है । यह शांति भारत से ही संभव है ।[1] " लोकायतन धार्मिक-नैतिक-सामाजिक सुधारवाद का काव्य न होकर मानव के सर्वांगीण रूपांतरण का काव्य है ।[2] "

इस महाकाव्य में कोरे सिद्धान्त ही नहीं मिलते वरन् उन सिद्धांतों का व्यावहारिक रूप भी मिलता है । मानव की विपन्न अवस्था, उसके कारण और समाधान को कथारूप में ढालकर इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि वह आज के जीवन केलिये कल्पना और स्वप्न होते हुए भी जीवन सत्य के निकट दिखाई देता है । संपूर्णकाव्य में दो प्रवृत्तियाँ साथ साथ आगे बढ़ती है । एक ओर लोकजीवन का पट बुनने केलिये युग की विभिन्न गतिविधियों का यथार्थ चित्रण किया गया है दूसरी ओर आदर्श और मांगलिक भावी जीवन का काल्पनिक अंकन किया गया है । इस प्रकार कथासूत्र अर्द्धकाल्पनिक बन गया है ।

लोकायतन को विद्वानों ने व्यष्टि चेतना काव्य नहीं समष्टि चेतना के सामूहिक कर्म का काव्य कहा है ।[3] " चेतना काव्य की दृष्टि से लोकायतन का महत्व सर्वथा निर्विवाद है । कृषियुगीन आदि भू चेतना सीता के उदय से लेकर अद्यावधिक लोकचेतना के विकास तथा उसकी आगामिष्यत् प्रगति का ऐसा कलात्मक आकलन अपने आप में अभूतपूर्व है । इसलिये लोकायतन नवीन मानवता की ऊर्ध्वोन्मुखी चेतना का नव्यकल्प का आदि काव्य है ।[4] " लोकायतन की सृजन भूमिका में द्वितीय विश्व-युग के विनाश का

---

1. उपलब्धि - लोकायतन - वस्तुतत्व चर्चा - विवेकीराय, मार्च 1969 पृ.37-38
2. सुमित्रानंदन पन्त जीवन और साहित्य, द्वितीय खण्ड - शांतिजोशी, पृ.558
3. पन्त की काव्यगत मान्यतायें और उनका काव्य - डॉ.अवधबिहारीराय, पृ. 156
4. आधुनिक हिन्दी काव्य -कुमार विमल, पृ.137

वह दर्द भी है - जिसने एक संसार को ही मिटा दिया तथा मानवता के आगे बडा प्रश्नचिह्न भी लगा दिया । विज्ञान के दानव के हाथों की शक्ति-मानव जाति को कैसे पल में नष्ट कर सकती है । इस विनाश बेला में कवि ही, मानवता को दिशा दे सकता है । लोकायतन कवि के इसी विश्वास का अटलहिमालय है - जिसके भीतर से मानवता रक्षा की गंगा फूटती है[1] ।

आधुनिक कवियों ने प्राचीन महाकाव्यशास्त्रीय नियमों का पालन अंशत: किया है । हिन्दी के नये कवि पाश्चात्य दृष्टिकोण से अधिक प्रभावित लगते हैं । इस युग में सर्गबंधन, छंद बंधन और चरित्रों के आदर्श परिवर्तित हो गये हैं । मंगलाचरण को तो कवियों ने परिवर्धित रूप में रखा है या फिर उसे सदैव केलिये बिदा ही दे दी । छन्दों के नये और परिवर्तित रूप सामने आये । भाषा और शैली में चित्रात्मकता और प्रतीकात्मकता का समावेश हो गया है । इस के साथ ही कवियों ने प्राकृतिक चित्रण में भी नवीन पद्धति को अपनाया और वस्तुवर्णन अधिकांशत: लुप्त हो गये हैं । इस प्रकार आधुनिक महाकाव्यों में प्राचीन और नवीन, आदर्श और यथार्थ का सुन्दर सम्मिश्रण हमें देखने को मिलता है ।

2·1· लोकायतन में प्रबन्ध योजना के लक्षण

"लोकायतन" में प्रबन्ध योजना के निम्नलिखित लक्षण हमें देखने को मिलते हैं -

---

1· सुमित्रानन्दन पन्त - कृष्णदत्त पालीवाल, पृ·39

अ· कथावस्तु और उसका संघटन ।

आ· नामकरण

इ· उद्देश्य

ई· रस और भाव व्यंजना

उ· नायक और चरित्रचित्रण

ऊ· वस्तुवर्णन

ऋ· भाषा, शब्द चयन और छन्द ।

2·1·1· <u>कथावस्तु और उसका संघटन</u>

यह महाकाव्य गठन की दृष्टि से बाह्य परिवेश और अन्तश्चेतना नामक दो भागों में विभक्त है । प्रथम खण्ड बाह्य परिवेश है जिसमें पूर्वस्मृति, आस्था, जीवनद्वार, संस्कृतिद्वार, मध्यबिन्दु:ज्ञान इस तरह के चार अध्याय हैं । जीवनद्वार अध्याय के तीन विभाग हैं - युगभू, ग्रामशिविर और मुक्तियज्ञ । संस्कृतिद्वार अध्याय के भी तीन विभाग हैं - आत्मदान, संक्रमण [ह्रास विघ्न विकास] और मधुस्पर्श ।

दूसरे खण्ड का शीर्षक है अंतश्चैतन्य जिसमें कला द्वार, ज्योतिद्वार और उत्तर स्वप्न [प्रीति] तीन अध्याय हैं । कलाद्वार के तीन विभाग हैं - संस्थान, द्वन्द्व, विज्ञान । ज्योतिद्वार के भी तीन विभाग हैं - अन्तर्विकास, अंतर्विरोध और उत्क्रांति ।

महाकाव्य के प्रारंभ में पन्तजी पुरातन परिपाटी को निभाते हैं । वे सरस्वती वन्दना से महाकाव्य प्रारंभ करते हैं -

करुणा स्पर्शों से जड भू - मानस के
अंध स्तरों को करती रही प्रकाशित ।
x x x x x x
नाम रूप गुणं, देश-काल में भी स्थित ।"[1]

सीता और राम में अन्तर केवल इतना है कि राम अव्यक्त है तो सीता व्यक्त और अव्यक्त दोनों है । देशकाल से मुक्त होकर भी वह देशकाल में स्थित है । सीता चेतना का प्रतीक है । पन्तजी का यह प्रतीकात्मक प्रयोग अवश्य ही नवीन है । सीता का ऐसा प्रतीकार्थ या सीता की ऐसी रूप की व्याख्या सीता से संबद्ध साहित्य-ऋग्वेद, रामायण, महाभारत, उत्तररामचरित, रघुवंश, रामतापनीय उपनिषद्, अध्यात्म रामायण, रामायण मंजरी, उदार राघव, जानकी परिणय इत्यादि से लेकर वैदेही वनवास और साकेत तक में हमें नहीं मिलती ।"[2]

निर्वासित सीता को सान्त्वना देते हुए वाल्मीकि कहते हैं -
"अविश्वास ही धरा-नरक का कारण ।"[3]

राम सीता से धरती के भीतर छिडे हुए आंतरिक संघर्ष को सूचित करते हुए कहते हैं -

देखोगी तुम लोकतन्त्र स्वर्णोदय,
मानव जीवन के मूल्यों का नव वितरण,

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ. 14-15
2. आधुनिक हिन्दी काव्य - डॉ. कुमार विमल, पृ. 143
3. लोकायतन - पन्त, पृ. 10

नये कल्प की प्रसव व्यथा पृथ्वी की,
छिड़ा निखिल जग में बाहर भीतर रण[1]।"

राम सीता से स्पष्ट कहते हैं -

"परब्रह्म मैं, पराशक्ति तुम सुविदित[2]।"

आगे वर्तमान की विषमता तथा पंकिलता का चित्र स्पष्ट सामने आ जाता है -

"वही स्वार्थ कटु राग-द्वेष जन-मन में,
दु:ख दैन्य, स्पर्द्धा, हिंसा उर-लांछन
काम,क्रोध, मद, लोभ, मोह, भय संशय,
सावधान करते जिनके प्रति बुधजन[3]।"

वाल्मीकि धरती के विश्वमानववाद के मंगलमय भविष्य का संदेश देते हैं -

"बंधे प्रीति के स्वर्ण सूत्र में भू-मन
एक बने जग, बहु देशों में मंडित,
×× ×× ××
हो रचना-संकल्प महत् जन क्षमता
लोक क्षेम हो दुर्ग, विकृति पर जय नित[4]।"

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.11
2. वही, पृ.17
3. वही, पृ.18
4. वही, पृ.23

इस महाकाव्य में वाल्मीकि शिक्षा देते हैं कि प्राचीन भारतीय आदर्शों को नवयुग के अनुरूप रूपायित करना चाहिये । कवि ने यहाँ आध्यात्मिक और भौतिक जीवन के समन्वय पर बल दिया है । आगे कवि शिव और पार्वती की वन्दना करता है । वाल्मीकि ने गौरी से प्रार्थना की है तथा वर माँगा है -

"सहज प्रसन्न जननि वह जन को दे वर,
बरसे श्री शोभा मंगल पग पग पर,
महद् सत्य से प्रेरित हो मानव उर,
धरा स्वर्ग हो सुन्दर से सुन्दरतर[1] ।"

प्रस्तुत सर्ग के अन्त, में कवि आनेवाले पात्रों को एक पृष्ठभूमि के सहारे उपस्थित करता है । वंशी, हरि,, सिरी आदि प्रमुख पात्रों की एक झाँकी प्रस्तुत करता है ।

प्रथम खण्ड का दूसरा भाग "जीवन-द्वार" है । यहाँ से कवि की दार्शनिकता और प्रकृति प्रेम का आभास मिलता है। दूसरी भूमिका में लोकायतन का मूल कथानक प्रारंभ होता है । 1925 - 30 के आसपास की भारत की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय अवस्थापर पहुँच गयी है कि सारी जनता एक कष्टपूर्ण जीवन बिता रही है । भारत की विगत स्वर्णिम सभ्यता और संस्कृति के खंडहर के रूप में "सुन्दरपुर" नामक जनपद अपनी जर्जर अवस्था में स्थित था । भारत उस समय अस्वतंत्र भी थी । जनता में हर तरफ से जागृति लाने के उद्देश्य से वंशी और

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.35

हरि का आगमन हुआ है । वंशी एक कवि है, हरि वंशी का सहचर है और मिरी (श्री) हरि की बहन है । भाई-बहन आधुनिक शिक्षा प्राप्त युवक और युवती हैं । सांस्कृतिक संस्था भी इस लक्ष्य में स्थापित की गयी । देश को स्वतंत्र करने के लक्ष्य से वंशी और हरि गंगाजल छूकर व्रत लेते हैं । तीसरी भूमिका में महात्मा गांधीका स्वतंत्रता संग्राम चित्रित है जिसे "मुक्तियज्ञ" शीर्षक दिया है । इसमें विशेषत: गांधीजी के नमक सत्याग्रह आन्दोलन और उनकी दाण्डी यात्रा को केन्द्र में रखा गया है। 1925-30 के भारत के स्वतंत्रता संग्राम में गांधीजी प्रमुख नेता थे । सुन्दरपुर ग्राम में वंशी, हरि और श्री देश की स्वतंत्रता में आहुति देने केलिये जनता को प्रेरित करने लगे । श्री के प्रयत्न से महिलाओं केलिये एक कला-शिविर बनाया गया । देश में स्वतंत्रता संग्राम की ज्वाला तीव्रतर हो गयी । नेताओं को कारावास में बन्द किया जाने लगा । ग्राम के कुछ कुटिल विरोधी जनों के छल-प्रपंच से वंशी और हरि को भी कारावास भुगतना पड़ा । अन्त में भारत को स्वराज्य मिला । वंशी और हरि भी कारावास से मुक्त हुए । गांधीजी के व्यक्तित्व का चित्रण ऐसा किया है -

"लोक प्रगति का देव दूत वह
तीस कोटि का रहा कृती जन,
विश्व चमत्कृत सोच रहा था
क्या भारत की सिद्धि, साध्य धन ?"[1]

गांधीजी के निधन के साथ भारतीय जनता फिर भी विनाश की ओर जा रही थी, इस पर भी कवि ने दृष्टि डाली है ।

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.84

पश्चिम देश के भौतिकवादी लोगों की खूब भर्त्सना भी कवि ने यहाँ की है -

"निखिल विश्व के पाप नाश हित
आत्मोत्सर्ग बना आवाहन -
पश्चिम के देशों का गौरव
हिंस्र अस्त्र शस्त्रों का रण।[1]"

"आत्मदान" शीर्षक सर्ग में कवि ने सम्पूर्ण भारतीय परिवेश का निरीक्षण करके अपने विचार तथा अनुभव की अभिव्यक्ति की है। उन दिनों घटित अनेक घटनाओं को उन्होंने वितृष्णा के साथ विवरण किया है। भारत-पाकिस्तान विभाजन, भारत का ह्रासकालीन इतिहास, भारत का दर्शन आदि की भी उन्होंने चर्चा की है[2]।

"यह हो आशा का पातक,
दो टूक, हृदय फट जाये,—
भावी मंगल हित घातक!
गृह युद्ध,-मुक्ति छाया में,-
मिटता जाता मन का भ्रम,
जन मन में कुंडल मारे
बैठा अहि,-शतियों का तम[2]।"

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.110
2. वही, पृ.129

दार्शनिकों पर उनका मुख्य आरोप यह है कि इन दार्शनिकों ने वैयक्तिक मुक्ति का संदेश लेकर सामाजिक जीवन को विजडित कर दिया। कवि की राय में भारतीय आध्यात्मिक जागृति के प्रति उन्मुख न थे। भौतिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय से ऐश्वर्य होता है -

"आध्यात्मिक जागृति के प्रति
उन्मुख न अभी जन-भू मन,
एकांगी भौतिकता से
संभव न श्रेय संवर्धन।
x x x
भौतिक वैभव मदिरा पी
मन बनो ध्वंस हित पागल,
नैतिक समृद्धि ही भू निधि,
खोलो निरुद्ध अंतस्तल!"[1]

"विघटन" शीर्षक के अन्तर्गत भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों तथा भाषागत वाद-विवादों का खूब वर्णन किया गया है। भाषागत वाद-विवाद की चर्चा कवि ने यों किया है -

"भाषा न शब्द संग्रह भर
राष्ट्रीय आत्मा का दर्पण,
सामूहिक जीवन से छन
बनते विचार, विधि-दर्शन!
xx xx xx

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ. 142-143

यदि छोड सकें परकीया
भाषा की हम शठ ममता,
जन भू गृहिणी वाणी की
बढ सके, देश पा क्षमता ।
xx xx xx
भाषा एका के पथ में
बाधक आर्थिक संघर्षण
विद्वेष, मोह, प्रान्तिकता,
अक्षम, अवसर-प्रिय शासन ![1]"

"मधुस्पर्श" सर्ग में एक बार और भी कवि ने कामायनी की आलोचना की है । इस सर्ग में कवि ने आनंद की समरस भूमि से मानव को धरती पर उतारने की कल्पना की है । साथ ही उसे इसी भूमि पर श्रद्धा के साथ बैठने की अभिलाषा करते हुए कवि ने प्रसाद की वन्दना की है । यहाँ कवि ने मुक्त होकर प्रकृति-सौंदर्य का वर्णन किया है । हिमालय के रम्य अंक में ही कवि ने इन्द्र का दर्शन किया है । इन्द्र ने कवि को प्रेरित करते हुए कहा है -

"मैं जन धरणी का प्रेमी,
तुम से कहने आया कवि,
निज प्रतिभा पट पर आँको
तुम धरा - स्वर्ग की नव छवि ।[2]"

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.164-165
2. वही, पृ.208

ब्रह्मरंध्र के रिक्त गगन में जाना जीवन का ध्येय नहीं है। धरती पर आओ और जीवन लाओ जिसमें -

"पीढ़ी पीढ़ी भू यौवन
कुसुमित हो नारी नर में,
विकम्पित हो नव मानवता
शिव सत्य रूप सुन्दर में।
गत मूल्यों में शत खण्डित
अंतः समग्र हो जीवन,
चेतना शिखा वाहक बन
भू प्रीति ग्रंथित हो जनमन[1]।"

कवि नवमानवता की खोज में सत्यं शिवं सुन्दरम् की तलाश में हिमालय के सौंदर्य को अपूर्ण छोड़कर विस्तृत मानव जगत में उतर पड़ता है।

"कामायनी" को लोकमुक्ति का संदेशवाहक नहीं बताया जा सकता, उसे व्यक्ति मुक्ति के तत्वों पर आधारित काव्य मानना चाहिये -

"आओ श्रद्धा संग बैठें
युग मनु प्रसाद, पथ सहचर,
यह प्रेम गोत्रजा जो अब
चलती शिखरों से भू पर[2]।"

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.209
2. वही, पृ.186

x x x x x

तुम मन: स्वर्ग के शिल्पी
नव कविता वनिता के वर,
फिर श्रद्धा-कर से नूतन
जन-लोक रचो दिक् सुन्दर ।"[1]

इसके पश्चात् "मध्यबिन्दु ज्ञान" नामक सर्ग में अरविंद दर्शन के मूल तत्वों को कवि ने प्रस्तुत किया है । इसे अरविंद सर्ग कहें तो उचित होगा । प्रस्तुत सर्ग में कवि ने स्वर्गीय चेतना के अवतरण का आह्वान किया है जिसके आने से मानव जगत् एक दूसरी ही भूमि पर पहुँच जायेगा, वह भूमि तो पृथ्वी पर ईश्वर के प्रवेश और प्रसार की भूमि होगी । मानव को तप, त्याग और तपस्या से अपना जीवन धन्य बनाना है । ऐसा करें तो ब्रह्म साकार होकर मानव मन में वास करेगा । इस प्रकार संसार के सभी लोगों में ईश्वर की सत्ता व्याप्त रहेगी ।

"तप त्याग तपस्या अर्पित कर जन-भू हित
मानव जीवन करना तुमको नव निर्मित !
देखोगी तुम साकार ब्रह्म दिङ् मुकुलित,
ईश्वर की सत्ता एकमेव सब में स्थित !"[2]

ईश्वर की प्रतिमा अन्य कहीं क्या संभव ?
जन धरणी के अतिरिक्त मूर्त चिद् वैभव !
सर्जित ईश्वर भव, युग युग में हो विकसित
प्रभु को करता अभिव्यक्त, हृदय में जो स्थित !
x x x x x x

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.186
2. वही, पृ.226

अपवर्ग, स्वर्ग, परलोक ध्येय से प्रेरित
मन चतुर्वर्ग में रहे न मूढ - विभाजित,
हों मर्व मुक्ति से अर्थ काम अनुप्राणित,
ईश्वर न स्वर्ग में, जन-भू पर हो स्थापित ।[1]"

कवि को मालूम है कि पृथ्वी पर एक नया संगीत जन्म ले चुका है और इसे पुष्ट करते रहना उसने अपना मुख्य कार्य मान लिया है -

"संगीत नया ले रहा जन्म गोपन में
झरता अशब्द, शिखरों से मानव मन में ।
रह गया भावना में मधु-अमृत प्रतिक्षण,
सुन रहे नये स्वर श्रवण, हृदय नव स्पंदन[2] ।"

कवि देख रहा है कि धर्म और संस्कृतियों का मिश्रण हो रहा है - लघु पुर गृह आँगन लाँघ, युवत नारी नर
सामाजिक शतदल के से अवयव सुन्दर
सांस्कृति पीठिका पर नव युग की शोभित,
श्रम लग्न, सौम्य, रचना मंगल में योजित[3] !"

कवि ने रुद्ध जन मन लाँघकर देखा है कि नूतन चित् प्रकाश अवतरित हो रहा है । कवि को एक मात्र विश्वास है कि

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.226-228
2. वही, पृ.246
3. वही, पृ.217

"जन भू को छोड न स्वर्ग कहीं रे ऊपर
आनंद मधुरिमा मंगल का जग हो धर !
बहिरंतर सामूहिक जीवन कर निर्मित
भू पर हो सकती मुक्ति सर्वहित अर्जित !"

लोकायतन का दूसरा खण्ड बाह्य परिवेश या अन्तश्चैतन्य है । इसके आरंभ में कवि ने दार्शनिक तथ्य का उल्लेख किया है । मानव के बीच में महान् जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठाकरनी है तथा सामाजिक जीवन में संस्कृति का द्वार उन्मुक्त करना है । इस पर कवि ने जोर दिया है । कवि ने आधुनिक वर्ग संघर्ष तथा उसके भौतिक आधारों के प्रति अपना विरोध प्रकट किया है और सहयोग के मार्ग से, न कि संघर्ष के माध्यम से, विश्व का विकास संभव बताया है ।

"द्वन्द्व" नामक सर्ग में सत् और असत् के बीच के द्वन्द्व का वर्णन हुआ है । कवि ने सत् और असत् दोनों को एक तत्त्व का ही रूप माना है । माधव गुरु एक रूढिवादी कवि के रूप में इस सर्ग में प्रवेश करता है । वह संसार को माया कहता है और वह एक तरफ से धार्मिक क्षेत्र के रूढ तत्वों के प्रति आस्था प्रकट करता है ।

माधव गुरु के तत्वों के ठीक विरुद्ध धर्म का आख्यान करनेवाला आत्मानंद है । उसके द्वारा कवि ने धार्मिक क्षेत्र में सुधार का आह्वान दिया है । आत्मानंदजी शान्ति आश्रम के प्रतिष्ठाता है । ये सांख्य, योग, मीमांसा आदि प्राचीन दर्शनों की नवीन् व्याख्या करते हैं।

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.226

इसके साथ विज्ञान सर्ग का प्रारंभ होता है । कवि का विश्वास है कि वैज्ञानिक आविष्कार से जीवन के बाह्य पक्ष की ही समृद्धि नष्ट हो सकती है और उसके साथ आन्तरिक दुविधायें कम नहीं होती । कवि ने यहाँ पर पूँजीवाद की समाप्ति तथा प्रजातंत्रवाद का आगमन दिखाकर मार्क्सवादी विचारधारा का समर्थन किया है । यूरोप में उस प्रकार आयी हुई प्रगति की प्रशंसा कवि ने की है और यह भी बताया है कि जगत में एक नवीन आंतरिक जागृति की आवश्यकता है । मात्र वैज्ञानिक आविष्कार से यह प्रगति संभव नहीं है -

"आंतरिक ही रे शांति समग्र-
अधूरे, निष्फल बाह्य प्रयास,
प्रीति आनंद ज्योति के स्रोत-
हृदय अतलों में उनका वास ।
बाह्य संयोजन निःसंदेह
मनुज को देगा सौख्य समृद्धि,
पूर्णता का स्वभाव सित ऊर्ध्व,
विकृति-भार समतल अभिवृद्धि ।"[1]

इसके पश्चात् "ज्योतिद्वार" नामक सर्ग आता है जिसमें "अन्तर्विकास", "अन्तर्विरोध" और "उत्क्रांति" नामक तीन भाग रखे गये हैं । प्रथम भाग के अन्तर्गत कवि की मूलभूत धारणा यह निकली है कि मानव सभ्यता का उत्थान उसके आंतरिक उन्नयन से ही संभव होगा ।[2] यहाँ प्राकृतिक सुन्दरता के वर्णन के साथ-साथ कवि का ध्येय यह रहा है कि मानव समाज प्रकृति का प्रभाव हुआ है ।

1• लोकायतन - पन्त, पृ•381

2• वही, पृ•427

"अंतर्विरोध" नामक दूसरे सर्ग में नवीन मानव समाज की सुन्दर कल्पना की गयी है । वंशी उस नवीन समाज का मुख्य संचालक है । वंशी का दृढ़ विश्वास है कि मानवता को उत्तर मानसिक धरातल पर पहुँचाना बहुत कठिन कार्य है परन्तु यह नितान्त आवश्यक भी है, क्योंकि राष्ट्रों को निःशस्त्र कराना या युद्धों का वर्जन करना मात्र हमारा ध्येय नहीं है - इससे भी बढ़कर मानव के मानसिक धरातल पर उन आदर्शों को स्थापित करना है नहीं तो इस पृथ्वी पर कभी भी शांति की प्रतिष्ठा नहीं होगी -

"निखिल शक्तियों में जगती की
प्रेम शक्ति ही निश्चय अविजित,
नम्र, लोक जीवन रचना रत,
मंगलमयी, सृजन रस संस्कृत ।"

नव आदर्श - समर्पित जीवन ।"[1]

काव्य के इस प्रसंग पर कवि ने यह दिखाया है कि प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी दोनों के बीच वाद-विवाद तथा संघर्ष रहा है । माधवगुरु वंशी की इस कलात्मक उन्नति के प्रति ईर्ष्यालु हो उठते हैं । वे जनमत को वंशी के विरुद्ध भड़काने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं । एक दिन केन्द्र पर कुछ लोगों का आक्रमण हुआ । इस आक्रमण से हरि की मृत्यु हो जाती है । कुछ दिनों के बाद श्री की जीवन लीला भी समाप्त हो जाती है

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.535

वंशी अकेला रह जाता है ।

"उत्क्रांति" नामक सर्ग में प्राकृतिक वर्णन को बहुधा स्थान मिला है जिसमें एक दार्शनिक आवरण का आभास मिलता है ।

"उत्तर स्वप्न" नामक अंतिम सर्ग के आरंभ में कवि की अन्तरात्मा को अणुयुद्ध का पूर्वाभास मिल जाता है । वह सहसा केन्द्र से अन्तर्धान हो जाता है । केन्द्र का कार्यभार एक विदेशी महिला "मेरी" संभालती है । वह वंशी के गुणों पर मोहित होकर उसकी शिष्या बनी थी । एक दिन सुन्दरपुर पर भी अणुविस्फोट होता है और वहाँ का सांस्कृतिक केन्द्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है । संपूर्ण विश्व हाहाकार कर उठता है और अधिकांश जनता अणु-युद्ध के महायज्ञ में स्वाहा हो जाती है । भाग्यवश "मेरी" जीवित बच जाती है और जो व्यक्ति बचते हैं उन्हें लेकर हिमालय के प्रांगण में एक नवीन सांस्कृतिक केन्द्र की स्थापना करती है जिसे "लोकायतन" की संज्ञा दी गयी । इसमें कवि का स्वप्न साकार होता है और इस धरा पर ही स्वर्ग उतर आता है ।

"उत्तर-स्वप्न" के शेष भाग में कवि ने मानव समाज के सांस्कृतिक उन्नयन की सभी दिशायें प्रदर्शित की हैं । जीवन के सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक सभी क्षेत्रों में पुरानी विधियों का अन्त हो रहा है और नवीनता का संचार हो रहा है । कवि ने प्राचीन संस्कारों और साधना-विधियों पर कोई आस्था नहीं दिखाई है, इसके एकांगीपन के कारण उन्होंने इसका घोर विरोध ही किया है । पुराने संस्कारों को कवि ने इसलिये उपेक्षित किया है कि उसमें केवल व्यक्ति-मुक्ति की प्रधानता है और मानव आत्मा की कोई प्रधानता नहीं है । सामूहिक मुक्ति की कल्पना करनेवाले कवि पुरानी साधना के विरोधी ठहरते हैं -

"आत्म कूप रति से निवृत्त होकर
सामाजिकता का करते आदर,
छोड मध्य युग की जीवन पद्धति
भू मानव हित नया संजोते घर ।
xx xx xx
लगता जड केंचुल सा विश्री, गल्य ।"

प्रस्तुत सर्ग में प्रतिपादित तीसरा मुख्य तथ्य यह है कि संपूर्ण मानवीय मूल्यों का रूपान्तरण हुआ है । इसका मूल कारण यह है कि मानव की चेतना ऊर्ध्वमुखी होती जा रही है । गीता के "कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचना" को भी कवि ने यहाँ निरावृत करने की चेष्टा की है । कवि का तर्क यह है कि मानव समाज सहज रूप से फलासक्ति रहित हो गया है । नये भागवत् धर्म की कल्पना करनेवाले कवि के मूल विचारधारा का रूपांकन भी इसी सर्ग में हुआ है । कवि ने कल्पना की थी कि मन को ऊर्ध्व संचरण करके उस दिव्यभूमि तक पहुँच जाना चाहिये । जिससे कि मनुष्य देवता बन सकता है । ईश्वर और मनुष्य में कोई अन्तर नहीं होगा । प्रस्तुत सर्ग में इन स्वप्नों को साकार होता हुआ दिखाई पडता है । मानव समाज-चेतना के ऊर्ध्व स्पर्शों से अनुप्राणित होकर नवीन भागवत् जीवन बिताने लगे हैं । उनकी जीवन प्रक्रिया में काफी परिवर्तन आ गया है । सब कहीं दिव्य आलोक फैल गया है -

"इस प्रकार सांस्कृतिक कल्प नव -
भू जीवन में होता विकसित,
एक चेतना रस सागर में
विविध रूप उठ होते अवसित !

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.586

प्रथम बार अब जगत् ब्रह्म में
ब्रह्म जगत् में हुआ प्रतिष्ठित,
मुक्त भेद-मन से भू जीवन
मिल चित् पट में हुआ समन्वित ।[1]"

इस प्रकार इसकी विषयवस्तु निश्चित रूप से व्यापक महत्व की है । कवि ने इसमें अनेक अवांतर और अप्रासंगिक घटनाओं को उभार दिया है । प्रधान घटना कलाकेन्द्र की स्थापना है और उसका उद्देश्य उठता दबता चलता है । इसमें अवांतर कथायें अधिक हैं - रामायण-युग का रूपक, चुनाव-वर्णन, यात्रा-वर्णन और दार्शनिक वादों की व्याख्या आदि का भी इसमें समावेश है । इनका मुख्य कथानक और कथावस्तु से कोई संबंध नहीं है । डॉ॰ प्रेमलता बाफना ने कथानक के संबंध में ऐसा कहा "इस का मूल कथानक अपेक्षाकृत बहुत सीमित और संक्षिप्त है ।[2]" "कोई स्पष्ट सूत्र हाथ नहीं लगता है । ऐसा लगता है कि जो कुछ कवि कथ्य है, जो कुछ पंतजी अपना नया कहना चाहते हैं वह तो प्रारंभ "आस्था" में ही समाप्त हो गया और आगे तो ढीले-ढाले कथानक के आधार पर ऊर्णा कातती है ।[3]" "लोकायतन का वस्तुतत्व अत्यधिक क्षीण है, एक बहुत पतले डोरे पर, जो बीच-बीच में अदृश्य हो जाता है, धारणाओं का स्तूप खड़ा किया है, सृजनविधि से यह गलत हुआ है।[4]" लोकायतन में राग तत्व के दर्पण में समग्र जीवन अध्यात्म को बिम्बित किया गया है । राग चेतना का सामूहिक संस्कार वैयक्तिक भक्ति का ही विकास है ।[5]" "लोकायतन" में प्रारंभ से लेकर अंत तक

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ॰680
2. पंत का काव्य, डॉ॰ प्रेमलता बाफना, पृ॰444
3. सरस्वती "रागचेतना का महाकाव्य" - कुबेरनाथ राय, मार्च 1965,पृ॰2
4. वातायन - लोकायतन उपदेशायतन - डॉ॰विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, अगस्त, 1964, पृ॰16
5. सुमित्रानंदन पन्त जीवन और साहित्य (द्वितीय खण्ड) - शांतिजोशी, - पृ॰578

अभिव्यक्ति का उच्च स्वर बना रहता है, वह कम संतोष की बात नहीं है। एक भी छंद कहीं से उतरा हुआ प्रतीत नहीं होता। लेकिन इस अभिव्यक्ति में उष्णता की कमी है। संपूर्ण कृति में एक प्रकार का निर्जीव ठंडापन पाया जाता है[1]।" लोकायतन चिन्तन प्रधान काव्य है, विचार-प्रधान काव्य है, इसके कवि का व्यक्तित्व भाव पक्ष और विचार- पक्ष में द्विभाजित हो गया है[2]।"

संक्षेप में इस प्रकार कह सकते हैं कि लोकायतन की कथावस्तु सरल और साधारण होते हुए भी जटिल बन गयी है। अवांतर कथाओं का बाहुल्य, नायक का विस्तृत कार्य क्षेत्र और घटना वैविध्य इत्यादि के कारण महाकाव्य का कथन सुसंगठित नहीं हो पाया है। पाश्चात्य ढंग की पाँच कार्यावस्थाओं - आरंभ, विकास, प्रत्याशा, फल और फलागम आदि का इस महाकाव्य में समुचित रूप में उपयोग नहीं हो सका। चरमावस्था में "मुन्दरपुर" में वध की वर्षा होती है। इन पाँच कार्यावस्थाओं के अभाव में पाँच सन्धियों का भी प्रयोग "लोकायतन" में अनुपात में नहीं हो पाया है। लेकिन सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो "लोकायतन" नये महाकाव्यों में सबसे पहला दुःखान्त काव्य है। इसका कथानायक अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति के पूर्व ही चल बसता है। सर्गों की दृष्टि से भी यह महाकाव्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्राचीन शास्त्रीय नियमों के अनुसार महाकाव्य में कम से कम आठ सर्ग और अधिक से अधिक पन्द्रह सर्ग होना चाहिये। लेकिन लोकायतन में सात सर्ग हैं।

---

1. पन्त और लोकायतन - विश्वम्भर मानव, पृ.95-96
2. माध्यम - डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, जून 1965, पृ.83

2.1.2. नामकरण

लोकायतन में संपूर्ण विश्व का "आयतन" अर्थात् चित्र है। इसमें लोकजीवन छिपा हुआ है। प्रत्येक महाकाव्य अपनी युग-परिस्थितियों से प्रभावित होता है और युगचेतना का अंकन जाने अनजाने हो जाता है। परन्तु लोकायतन ऐसा महाकाव्य है जिसका गठन पूर्णतया लोकचेतना पर आधारित है। कवि तो यहाँ तक स्वीकार करते हैं कि युग जीवन ने ही उन्हें प्रबन्धकाव्य लिखने को बाध्य किया है। महाकाव्य में भी यत्र तत्र वे इस बात की पुष्टि करते हैं - जग जीवन के तत्वों को चुन धुनकर

प्रमुख वृत्तियों की पूनी कर निर्मित,
कथा सूत्र बँट, बुनो लोक जीवन पट,
मानव उर कर नव भू गरिमा मण्डित ![1]"

2.1.3. उद्देश्य

लोकायतन का उद्देश्य आध्यात्मिक दृष्टि द्वारा वर्तमान युग जीवन को परिवर्तित करना है। कवि ने इसमें अध्यात्मवाद और भौतिकता के समन्वय को प्रकट किया है। अरविंद दर्शन से प्रभावित होने के कारण कवि ने आत्मा को भौतिक जीवन के विकास और उत्थान में सहायक बताया है। अरविंद दर्शन आध्यात्मिकता और भौतिकता के समन्वय पर अधिक जोर देता है। कवि इस धरती पर दिव्यजीवन का अवतरणकर मानव को ही ईश्वर रूप में प्रतिष्ठित करना चाहता है-

---

1 लोकायतन - पन्त, पृ.6

"इस जग में निखिल चराचर में
जीवन विकास पथ में ईश्वर ।[1]"
x x　　x　　x x
जग ही में संभव प्रभु दर्शन ।[2]"

लोकायतन का दूसरा उद्देश्य मध्ययुगीन जीर्णशीर्ण और जर्जरित धार्मिक व्यवस्थाओं, रूढ़ियों तथा अन्धविश्वासों पर आघात करने का भी रहा है । कवि ने लोकायतन में मध्य युगीन जीवन-विमुख अध्यात्मवाद, धार्मिक मान्यताओं एवं अंधविश्वासों पर गहरी चोट की है और मुक्त भोगी जीवन का उपदेश दिया है। अत: लोकायतन में राग-मुक्त भोगी जीवन की उपयोगिता को प्रतिपादित करना भी कवि का एक मुख्य उद्देश्य रहा है । अतीत की दिव्य और सांस्कृतिक मान्यताओं को कवि स्वीकार करता है, किन्तु वह इस लोक की उपेक्षा करके स्वर्ग किसी अन्य परलोक में खोजने नहीं जाता । न ही वह ईश्वर को मनुष्य से भिन्न किसी अन्य अलौकिक शक्ति के रूप में देखना चाहता है और न इन्द्रियों से अलग किसी अतीन्द्रिय सुख की कल्पना ही करता है । कवि का उद्देश्य निम्नलिखित पंक्तियों में झलक रहा है -

"अधिमानस के देवों का युग
अब बीत चुका - भू नर ईश्वर
तब थे विभक्त - अब भू जीवन
भगवद् विकास संचरणअमर !
जग ही में संभव प्रभु दर्शन,
भव - ब्रह्म सत्य, - यह नि:संशय,

1· लोकायतन - पन्त, पृ·630
2· वही, पृ·634

ईश्वर प्रतिनिधि शाश्वत मानव
रज रूप मर्त्य नर से अतिशय !"

कवि ने पृथ्वी पर ही ईश्वर को देखने की कोशिश की है । कवि का अभिप्राय यह है कि प्रीति से अखंड प्राण एवं सहयोग से सुसंगत जीवन ही प्रत्यक्ष ईश्वर और स्वर्ग है ।

आज के पीड़ित, दिग्भ्रमित और अनास्थावान मानव को निर्माण और शान्ति की ओर अग्रसर कराना ही "लोकायतन" का उद्देश्य है । इस महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि दिखाई है । अन्त में मोक्ष की प्रधानता दी गयी है । मनुष्य को हर्ष-विषाद और सुख-दुःख से निकालकर परम शान्ति और मुक्त जीवन प्रदान करता है। कुछ आलोचक इसमें ऊष्मा का अभाव या इसे लोजीवन का महाकाव्य मानने से इनकार करते हैं । लेकिन पन्तजी ने लिखा है - लोकायतन चिन्तन प्रधान काव्य है इसलिये इसमें ऊष्मा की उपेक्षा नहीं की जा सकती । इसमें ठंडापन तो रहेगा ही क्योंकि लोकजीवन की ऊष्मा को व्यक्त करना उनका ध्येय नहीं था ।[2]" यह तो ग्रामधरा के अंचल में जन भावना के छंद में बंधी युग जीवन की भागवत् कथा है । इसका उद्देश्य इस संक्रान्तिकाल की युग-गाथा के भीतर से विकासगामी मानवता के जीवन-सत्य की झाँकी प्रस्तुत करता है[3] ।

2.1.4. रस और भाव व्यंजना

शास्त्रीय नियमों के अनुसार काव्य में शृंगार, वीर और शान्त रसों में से एक रस प्रधान रस होता है और शेष अन्य रस गौण रूप में काव्य में

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.636
2. माध्यम - गोष्ठिप्रसंग, जून, 1965
3. महाकवि पन्त - सत्यकामवर्मा, पृ.106

प्रयुक्त होते हैं । रस की दृष्टि से लोकायतन दोषपूर्ण है क्योंकि इस में रस का सुन्दर परिपाक नहीं हो पाया है । अंगी या प्रधान रस कोई है ही नहीं कहीं कहीं पन्तजी ने अतिशय श्रृंगार का वर्णन किया है। श्रृंगार के जो भाव गुह्य और गोपनीय समझे जाते हैं, उनका भी वर्णन पन्तजी करने से हिचकाये नहीं है जैसे प्रेमियों द्वारा प्रेमिकाओं का गाढालिंगन, नग्न जलक्रीडा आदि । वीर रस और रौद्ररस की सफल योजना माधो गुरु के शिष्यों और कला केन्द्र के युवकों के संघर्ष में कवि ने की है ।

2·1·5· नायक और चरित्र-चित्रण

पात्रों का चुनाव भी वर्तमान जीवन से किया गया है । सभी पात्रों के व्यक्तित्व का निर्माण लोकजीवन में घटित घटनाओं और युग-परिस्थितियों से किया गया है । व्यष्टिरूप में उनके व्यक्तित्व का महत्व नहीं के बराबर है । सभी चरित्र "मानव चेतना के पालकी वाहक है"[1] "लोकायतन" में दो प्रकार के पात्र हैं । एक तो वे हैं जो मध्ययुगीन धार्मिक मान्यताओं और अन्धविश्वासों के आस्थावान है, इन में माधो गुरु और उनके शिष्य आते हैं । दूसरे प्रकार के पात्र वे हैं जो मध्ययुगीन मान्यताओं और अन्धविश्वासों के विरोधी हैं, इन में वंशी, हरि, सिरी, शंकर, प्रीति, अतुल और मेरी आते हैं ।

कवि वंशी इस महाकाव्य का नायक है । वह एक साधारण पात्र है । इसके पीछे कवि की जनवादी प्रवृत्ति कार्य कर रही है । वंशी अपने चारित्रिक उत्कर्ष के कारण लोकायतन का नायक है । वह भारतीय

1· लोकायतन - पन्त, ज्ञातव्य

स्वतंत्रता-संग्राम में कारावास भोगने के कारण एक राजनैतिक चरित्र बन गया है। स्वतंत्रता के बाद वंशी में सुधारवादी प्रवृत्ति जाग्रत होती है । वह "सुन्दरपुर" में कला केन्द्र की स्थापना करता है और अशिक्षित युवक और युवतियों की शिक्षा की व्यवस्था करता है । वह साहित्य सेवी, समाजसेवी, कर्तव्य परायण और कर्मठ तथा संरक्षक के रूप में महाकाव्य में उपस्थित होता है अपने विरोधियों से भी वंशी उचित और आदरपूर्ण व्यवहार करता है । माधो से सैद्धान्तिक मतभेद होने पर भी वंशी उसकी मृत्यु के पश्चात् माधोगुरू को मध्ययुगीन संस्कृति का प्रतीक मानकर उनकी प्रतिमा स्थापित कर अपनी सहृदयता का परिचय देता है ।

लोकायतन का दूसरा मुख्य पात्र माधोगुरू है । उनके दो रूप हमारे सामने आते हैं । पहले वे मध्ययुगीन संस्कृति के समर्थक और पक्षपाती हैं । वे प्राचीन धार्मिक मान्यताओं के प्रचार प्रसार के लिये एक आश्रम की स्थापना करते हैं । वे इस महाकाव्य में एक खलनायक के रूप में आते हैं । वे वंशी और कलाकेन्द्र की प्रसिद्धि सुनना पसंद नहीं करते । इसलिये कला केन्द्र पर आक्रमण करके उसे नष्ट करने का वे अपने शिष्यों को आदेश देते हैं । इसी संघर्ष में हरि की मृत्यु भी हो जाती है । तीसरा प्रमुख कथापात्र है हरि वह वंशी की प्राणरक्षा में अपने प्राणों का बलिदान कर देता है ।

सिरी और सेरी दोनों ही नारी पात्र हैं । वे दोनों नायिका की भूमिका पर आती हैं । शंकर, अतुल आदि का चरित्र काव्य में निखर और उभर नहीं सका है । प्रत्येक पात्र चाहे वंशी हो या हरि, शंकर हो या सिरी, संयुक्ता या सेरी हो सभी सौम्य पराक्रम के सजीव उदाहरण हैं । सब का जीवन-लक्ष्य तो गांधीजी की तरह समाज तथा विश्वमंगल के हित एकाग्र सौम्य समर्पित है ।

गाँधीजी के अतिरिक्त इस महाकाव्य के सभी पात्र काल्पनिक हैं । कुछ आलोचक वंशी में पन्त और माधो गुरू में निराला के व्यक्तित्व की छाया देखते हैं । वंशी केलिये ऐसा कहा जा सकता है क्योंकि उसके व्यक्तित्व में वे सभी विशेषतायें उपलब्ध हैं जो पन्त में दिखाई देती हैं । किन्तु माधो की और निराला में मिलनेवाली कुछ समानताओं के आधार पर उसे निराला के व्यक्तित्व का प्रतिरूप नहीं माना जा सकता । निराला के प्रति - लोकायतन के इस प्रसंग को पन्त केलिये अशोभन मानता हूँ । माधो गुरू के व्याज --- पन्त के शील और सौजन्य का अपकारक है ।[1] "लोग कहते हैं कि माधो गुरू के चरित्र में श्री निराला की छाया है । इस प्रवाद को पूरा-पूरा नहीं स्वीकारा जा सकता है । परन्तु कुछ पंक्तियों में बड़ा ही स्पष्ट संकेत आया है ।[2]" "वंशी कवि और माधो गुरू के व्यक्तित्व में स्वयं पन्त और निराला के व्यक्तित्वों की छाया मिलती है । लोकायतन का हर आलोचक इस तथ्य की ओर संकेत कर चुका है । कलाद्वार के अन्तर्गत द्वन्द्व नामक उपखंड में माधो गुरू को रूढिवादी जड परम्पराओं और मूल्यों के प्रतिनिधि रूप में चित्रित किया गया है । कहीं-कहीं व्यक्तिगत स्पर्शों के संकेत बिलकुल स्पष्ट हो गये हैं ।---- परनिंदा-रसलोलुप रसिकों का ध्यान लोकायतन में कहीं और रमे या नहीं इस प्रसंग में उनकी रसवृत्तियों का पूर्ण परिपाक होता है ।[3]"

पन्त ने भी इस का स्पष्टीकरण स्थान स्थान पर किया है । पंतजी का कहना है - माधोगुरू में देखिये पचास प्रतिशत तो कल्पना है । माधो गुरू हैं पिछले युग की अहंता के, अस्मिता के प्रतीक । अनेक तरह के दृष्टिकोण है जिन्हें कि पिछला मनुष्य अनुभव करता रहा है, जो उसके भीतर से बोलते हैं । लेकिन शेष जो है, उसमें से पैंतीस या चालीस प्रतिशत कालाकांकर के ही एक राजकवि थे जिनसे मुझे प्रेरणा मिली । वे व्रजभाषा के कवि थे । उन्होंने एक वानप्रस्थ आश्रम भी खोला था । वहाँ एक ऐसे साधु रहते थे,।

1· आधुनिक हिन्दी काव्य - कुमार विमल, पृ·155-156
2· सरस्वती - कुबेरनाथराय, अगस्त 1965, पृ·129
3· माध्यम - लोकायतन - सावित्री सिन्हा, जून 1965, पृ·77

जो सिर्फ मिर्च गाते थे । तो माधो गुरु निराला कैसे हो सकते हैं ? हाँ, उसमें उनकी कुछ छाया आ गयी हो तो और बात है।[1] ।"

डॉ॰ सावित्री सिन्हा ने "लोकायतन" के पात्रों के विषय में कहा है - घटनाओं की तरह ही लोकायतन के पात्र भी एक विराट आलम्बन के अंग मात्र है । यहाँ तो यशोधरा और उर्मिला के आँसू ही व्यक्ति के नहीं समष्टि के हैं । लोकायतन के पात्र अधिकतर बौद्धिक गोष्ठियों में भाग लेनेवाले व्यक्तियों की तरह मतलब की बातें संक्षेप में करते हैं । जहाँ ज्यादा बोलते हैं वहाँ एक ही बात को बार-बार दुहराते हैं महज मानवीय धरातल की बातें करने का उन्हें अवसर नहीं मिलता है और उनका अर्द्धव्यक्त व्यक्तित्व समष्टि की विराटता के घटाटोप में विलीन हो जाता है[2] ।"

2·1·6· वस्तु वर्णन

प्रबन्धकाव्य में वस्तुवर्णन का होना परम आवश्यक है । मध्ययुगीन काव्यों में वस्तुवर्णन अधिक हुआ है । लेकिन आधुनिक कवि वस्तुवर्णन को व्यर्थ और अनावश्यक मानकर उसकी उपेक्षा करते हैं । आधुनिक कवियों की दृष्टि में वस्तुवर्णन की कोई उपादेयता काव्य में नहीं होती है । इसी कारण आधुनिक काव्यों में वस्तु वर्णन बहुत कम हुआ है । लोकायतन के प्रमुख वस्तुवर्णन निम्नलिखित हैं - नमक सत्याग्रह वर्णन, भारत विभाजन वर्णन, असहयोग आंदोलन वर्णन, यात्रा वर्णन, वासंती पर्व वर्णन, युद्ध और प्रकृति वर्णन

1· धर्मयुग - 4 जनवरी, 1970, पृ·20

2· माध्यम - लोकायतन - डॉ· सावित्री सिन्हा, जून 1965, पृ·80

2.1.6.1. नमक सत्याग्रह वर्णन

"लवण उदधि में, लवण अवनि में
लवण गया था अंबर में भर,
लवण वायु पंखों पर - उड़ता,
लवण छा गया था उन भू मन पर ।"[1]

स्वाभिमान, सर्वस्व देश का
लवण प्रेरणा का बन पर्वत
जड से चेतन शक्ति बन गया,
राष्ट्र मुक्ति का वाहक शाश्वत ।"[2]

नमक सत्याग्रह को अनावश्यक विस्तार देकर कवि ने वस्तु वर्णन में प्रभावहीनता पैदा कर दी ।

2.1.6.2. भारत विभाजन

भारत विभाजन का कवि ने कारुणिक वर्णन किया है । विभाजन के समय की आगजनी, लूट, बलात्कार, अपहरण आदि घटनाओं कवि ने मार्मिक वर्णन किया है । किन्तु इन में भी अनावश्यक विस्तार आ गया है -

"अंतिम लौह लात वैरी की -
भारत का कर क्रूर विभाजन

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.91
2. वही

उठे फिर भावी विश्व युद्ध हित
रचा हिंसकों ने रण प्रांगण[1]।"

2·1·6·3· असहयोग आन्दोलन

1942 के असहयोग आन्दोलन का भी कवि ने व्यर्थ ही वर्णन किया है। पन्तजी ने व्यर्थ ही विस्तार देकर काव्य में विशृंखलता और बिखराव उत्पन्न कर दिया है -

"असहयोग आन्दोलन में अब
आया वह अनिवार्य महत्त्व क्षण,
फैले गाँवों में भू ज्वाला,
धधक उठे खलियान, खेत, वन[2]।"

2·1·6·4· यात्रा वर्णन

कवि ने वंशी की पाश्चात्य देशों की यात्रा के वर्णन में सभी देशों के नाम गिना दिये हैं। आल्पस श्रृंगों का वर्णन ऐसा किया है -

"प्रकृतिप्रिय कवि ने सबसे पूर्व
आल्पस् श्रृंगों का देखा देश,
स्मरण कर जन्म भूमि का दृश्य
हुआ तन पुलकित, दृग अनिमेष[3]।"

1· लोकायतन - पन्त, पृ·112
2· वही, पृ·56
3· वही, पृ·387

2·1·6·5· वासन्ती पर्व वर्णन

वासन्ती पर्व का संक्षेप में बहुत ही सुन्दर कलात्मक एवं प्रभावशाली वर्णन कवि ने किया है -

"पूर्णिमा आई स्निग्ध प्रशान्त
शुभ्र शरदोत्सव का जन पर्व-
प्रात: ही से लगते अति व्यस्त
शिविर के स्त्री नर-स्नेही सर्व ।
xx xx xx
आम्र दल के चल बंदनवार
हरित शाखाओं में लिपटे आ
सुहाते पुरवे खेड़े ग्राम ।"[1]

2·1·6·6· प्रकृति वर्णन

पन्तजी प्रकृति के सुकुमार कवि हैं । जहाँ कहीं भी "लोकायतन" में प्रकृतिचित्रण आये हैं वहाँ काव्य बिम्बात्मक और मानवीय रस सिक्त हो उठा है ।

1· लोकायतन - पन्त, पृ·300

"पिक ध्वनि करती स्वर्ण मंजरित जग
रिमझिम झर बिछती हरीतिमा बन,
ज्योत्स्ना बुनती स्वप्नों का आँचल,
शीत ताप विजयी जन भू प्रांगण[1] ।"

2.1.7. भाषा, शब्द चयन और छन्द

भाषा में पन्त ने तत्सम रूपों का प्रयोग सर्वाधिक प्रयोग किया है । कहीं कहीं भाषा पूर्णतः संस्कृत जैसी हो गयी है । लोकायतन में अंग्रेजी, उर्दू, फारसी और अरबी के शब्दों और मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग कम हुए हैं । कुछ स्वयं निर्मित और गढे हुए शब्दों का प्रयोग भी पन्त ने इस महाकाव्य की भाषा में किया है । संस्कृत प्रधान भाषा होने के कारण लोकजीवन की अभिव्यक्ति अस्पष्ट हो गयी है । लोक-जीवन की स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिये उसके अनुरूप भाषा होनी चाहिये । लोकायतन की भाषा पन्तजी के आरंभिक काव्यों की भाषा है ।

"लोकायतन" में कवि ने एक छन्द के अनेक नवीन रूपों का निर्माण किया है। परम्परागत मात्रिक छंदों के साथ मुक्त और नवीन छंदों का प्रयोग भी इसमें किया है । छन्द के क्षेत्र में उनकी यह प्रमुख देन है -

"उषा लाज लोहित सुर बाला सी
मोहित मानस क्षितिजों पर आती
षड्ऋतुओं की धूप छाँह ओढे
मधु अनन्त यौवन धारा माती[2] ।"

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.537
2. वही, पृ.428

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि लोकायतन अपने ढंग का नवीन महाकाव्य है । इस का प्रतिपाद्य विषय तो पूर्णतः दार्शनिक है । इस प्रकार इसकी कथावस्तु, पात्र-चित्रण, रस और भाव-व्यंजना, सर्ग योजना और नामकरण तथा भाषा और शब्द-चयन इत्यादि त्रुटिपूर्ण ही है।

पन्तजी अँग्रेज़ी साहित्य से प्रभावित हैं । इसी कारण उनके "लोकायतन" में पाश्चात्य महाकाव्य के लक्षण अधिक मिलते हैं । पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप लोकायतन की कथावस्तु भी दुःखान्त हो गयी है । लेकिन इस पाश्चात्य लक्षण के अतिरिक्त "लोकायतन" की कथावस्तु को पंतजी ने भारतीय परम्परा के अनुरूप सुखान्त भी रखा है । कथावस्तु का आरंभ सुखान्त और आशामय है। मध्य में आकर कथानक दुःखान्त और निराशापूर्ण हो जाता है । लेकिन अन्त में कथानक आशामय वातावरण में होता है ।[1] हम लोकायतन को एक दुखान्त सुखात्मक महाकाव्य मानते हैं ।

2·1·8· लोकायतन का शिल्प

प्रबन्ध योजना शिल्प-विधान का एकतत्व है । प्रबन्ध येजना यदि बिखराव को समाप्त कर काव्य के शृंखलाबद्ध कर देती है वहीं शिल्प उस काव्य को कलात्मक ढंग से पाठकों के सामने प्रस्तुत कर देता है ।

लोकायतन में पाये जानेवाले शिल्पतत्व निम्नलिखित हैं - §1§ प्रतीक §2§ बिम्ब §3§ भाषा §4§ छन्दयोजना §5§ प्रबन्ध योजना ।

1· लोकायतन - पन्त, पृ·428

2·1·8·1· प्रतीक

लोकायतन में मूर्त और अमूर्त दोनों ही प्रकार के प्रतीकों का हुआ है। उनके अमूर्त प्रतीकों के बारे में डॉ· सावित्री सिन्हा ने लिखा है इन अमूर्त प्रतीकों के द्वारा संकेतित अर्थ स्वत: हाथ नहीं आता। उसके उपर्युक्त मनोभूमि को उसी प्रकार निर्मित करना पड़ता है जैसे अमूर्त कला को समझने केलिये मस्तिष्क को संस्कृत करना पड़ता है। इस संस्कार के अभाव में बात आसानी से पल्ले नहीं पड़ती।[1]"

लोकायतन में सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, ऐतिहासिक, प्रकृति और अध्यात्म चेतना तथा साहित्यिक प्रतीकों का प्रयोग कवि ने किया है। सांस्कृतिक प्रतीकों को भी तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है -

अ· रामायण पर आधारित प्रतीक

आ· महाभारत पर आधारित प्रतीक

इ· इतर प्रतीक

ऐतिहासिक प्रतीकों और साहित्यिक प्रतीकों का प्रयोग "लोकायतन" में अल्पमात्रा में हुआ है। प्राकृतिक और अध्यात्म चेतनाके प्रतीकों का प्रयोग उसमें सर्वाधिक हुआ है।

2·1·8·2· बिम्ब

लोकायतन की बिम्ब योजना प्रतीक योजना की अपेक्षा सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली है। बिम्ब से ही भावों में संवेदनशीलता

1· माध्यम - डॉ· सावित्री सिन्हा, अंक 2, जून 1965, पृ·80

और अभिव्यक्ति में तीव्रता आती है । बिम्ब ही भावों के मूर्तिकरण का एक मात्र माध्यम है । बिम्ब ही कल्पित वस्तुओं को निश्चित रूप देकर हमारे समक्ष प्रस्तुत है । लोकायतन में तीन तरह के बिम्ब - ऐन्द्रिय बिम्ब, मानस बिम्ब और इतर बिम्ब - आये हैं । ऐन्द्रिय बिम्बों में दृश्य, स्पर्श, गंध और श्रवण संवेद्य अनेक बिम्ब आये हैं । मानस बिम्बों में बौद्धिकता के प्रति आग्रह अधिक होता है ।

2·1·8·3· <u>छंद</u>

पन्त जी ने काव्य में छन्द की परम आवश्यकता स्वीकार की है और तुक और राग को भी कविता के प्राण माने हैं । लोकायतन में कवि ने परम्परागत मात्रिक छन्दों का प्रयोग अधिक किया है । योग, पीयूषवर्षी, राधिका, कोकिला, महेन्द्रवज्रा, पद्धरि, अरिल्ल, चौपाई इत्यादि मात्रिक छंदों का प्रयोग किया है ।

उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, संदेह, व्यतिरेक, दीपक मालोपमा, अपन्हुति आदि अलंकारों के साथ ही मानवीकरण, ध्वन्यार्थ व्यंजना, विशेषण-विपर्यय इत्यादि अंग्रेज़ी अलंकारों का प्रयोग भी लोकायतन में कवि ने किया है इस प्रकार हम कह सकते हैं कि लोकायतन पन्त की प्रबंध योजना का प्रमाण है इसमें प्राचीनता और नवीनता का सम्मिश्रण हुआ है ।

2·2· <u>लोकायतन में अभिव्यक्त कल्पना</u>

कवि ने लोकायतन में वर्तमानयुग के विशाल जीवन पट का विहंगावलोकन कर कल्पना की अन्तर्दृष्टि से एक नवीन आदर्श लोक की सृष्टि

की है । पन्त ने महाकाव्य के "पूर्वस्मृति" शीर्षक परिच्छेद में कल्पना के इस स्वरूप को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है -

"देख रहा मैं मनश्चक्षु के सम्मुख
जन भविष्य का स्वप्न तुम्हारा उज्वल,
चूम रहा नत स्वर्ग मुग्ध भू पद तल,
विहँस रही जड़िमा बन चेतन मंगल ।[1]"

वे अपनी इस अन्तर्दृष्टि से भूत, भविष्य और वर्तमान के तम में मानव का श्री आनन देखकर स्वप्नों की निधि से ऐसा धरामन गढ़ना चाहते हैं जो अंतर-आभा का शोभा दर्पण बन सके ।[2]"

भावी जीवन के प्रति किये गये आदर्शों की कल्पना वर्तमान युग के आदर्शों से पूर्ण तथा भिन्न रही है । कहीं कहीं तो आदर्शों का स्वरूप आध्यात्मिक सिद्धान्तों की प्रधानता के कारण इतना उलझनपूर्ण बन गया है कि उन्हें पन्त के शब्दों में स्वप्नों के आकाश कुसुम की संज्ञा देना ही उचित प्रतीत होता है -

"समझ न पाता कुछ भी हरि का मन
कवि किस धरती पर करता विचरण,
मुक्त कल्पना पंखों में उड़ वह
स्वप्नों के चुनता आकाश सुमन ।[3]"

1• लोकायतन - पन्त, पृ•14

2• वही, पृ•22

3• वही, पृ•500

कल्पित भावी समाज और संस्कृति का चित्रण कवि किसी विशेष सर्ग में नहीं करता । जहाँ कथा से उसे थोड़ा सा भी अवसर मिलता है, वहीं भविष्य की गाथा प्रारंभ हो जाती है । वर्तमान समस्याओं के चित्रण के बाद उसी समय हल के रूप में भावी आदर्श आ जाते हैं, किसी पात्र का चरित्र चित्रण किया जा रहा हो तो मनोभावों के रूप में इन आदर्शों का आविर्भाव होने लगता है, दार्शनिक सिद्धान्तों की विवेचना हो तो भावी मानव के अन्तर्विकास के विविध सोपानों के रूप में ये भावी आदर्श प्रस्तुत किये जाते हैं ।

यहाँ प्रकृति का सद्यः स्नाता नायिका के रूप में आलम्बन रूप में चित्रण किया गया है ।

2·2·1· भावी समाज और संस्कृति

लोकायतन भविष्योन्मुखी काव्य है । वर्तमान संघर्षपूर्ण जीवन से ऊपर उठकर मानवता से परिपूर्ण आदर्श समाज के जीवन मूल्यों का वर्णन कर व्यावहारिक रूप में इस धरातल पर उसकी कल्पना करना ही इस में पन्त का उद्देश्य रहा है । वे कल्पना की अन्तर्दृष्टि से भविष्य के स्वर्णिम स्वप्न को सत्य करना चाहते हैं -

"देख रहा मैं मनश्चक्षु के सम्मुख
जन भविष्य का स्वप्न तुम्हारा उज्वल,
चूम रहा नत स्वर्ग मुग्ध भू पद तल,
विहँस रही जड़िमा बन चेतन मंगल ।"[2]

1· लोकायतन - पन्त, पृ·500

2· वही, पृ·14

पन्त के अनुसार कवि मनीषी का हमेशा से यह कर्तव्य रहा है कि वह अपनी अन्तर्दृष्टि से जीवन-मंगल का सर्जन करे । यहाँ पन्त भविष्यत् कल्पना के द्वारा अपने इस कर्तव्य को पूरा करने केलिये मानव का पथ निर्देश करते हैं -

"शुभ्र शांति में मज्जित कर भू - उर दुःख
कवि को रचना तत्व सिखाना जन को,
मनोगुहा में सोया भावी मानव -
उसे जगाना जड में स्थित चेतन को[1] ।"

2·2·2· पात्र योजना में कल्पना

कल्पित कथापात्रों के चारित्रिक विकास के आधार पर ही कवि ने संपूर्ण कथा में अपनी विचारधारा को व्यक्त किया है ।

2·2·3· दृश्यविधान में कल्पना

प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण ग्राम, विदेश-भ्रमण, और हिमालय की नैसर्गिक शोभा के संदर्भों में किया गया है । प्रकृति संबंधी दृश्यों में वेला - विशेष या उपकरण विशेष की प्रधानता नहीं मिलती, चित्रों का अंकन प्रसंगार्थ किया गया है । हिम शीतल स्फटिक शिलाओं पर प्रभातवेला का एक सुन्दर दृश्य ऐसा है -

---

1· लोकायतन - पन्त, पृ·33

"ऊषा संध्या स्मित - शृंगों को
करतीं मणि स्वर्ण किरण भूषित,
टूटती प्रेरणा - निर्झर सी
ढालों पर सहसा स्खलित तड़ित् ।"[1]

स्वीडन के गिरते प्रपातों और झरते झरनों का एक चित्र देखिये -

"खाड़ियों से कुस शतमुख सिन्धु
अँगुलियों से पकड़े हो केश,
सहस्रों सुर धनुओं से दीप्त
फेन झरनों का यह प्रिय देश ।
गूँजते इन्द्रचाप के सेतु,
अप्सरा चलती जब लघु चाप
निभृत वन गिरि शिखरों पर उच्च
रेशमी उड़ते वाष्प कलाप ।"[2]

यथार्थ जीवन के चित्रों में वैसे चित्रों का अभाव है जैसे युगान्त ग्राम्याकाल में कल्पित किये गये थे । विचारों की घनघोर घटा के अन्दर कहीं कहीं कल्पना का साहचर्य ज्योति-रेखा की भाँति चमक उठता है । यथा

सिसकारें, ऊष्मा, आँधी -
कँपता, तपता हत तन मन,

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ. 638
2. वही, पृ. 393

हो अंग अंग से लिपटी
अब अग्नि रज्जुयें भीषण ।
श्वेत रीढ - भग्न इच्छायें
थीं रेंग रही कीचड में,
चेतना दंश-मूर्छित थी
विष फन की फेनिल झड में ।"[1]

इस प्रकार लोकायतन एक सुन्दर भविष्योन्मुखी काव्य है । जीवन साधना के अनुभूत सत्य के आधार पर वर्तमान से ऊपर उठकर मंगलप्रद सुखमय भविष्य का अंकन करना ही इस महाकाव्य का लक्ष्य है ।

2.3 निष्कर्ष

"लोकायतन" में कवि के स्मृति पटल पर संचित जीवन के व्यापक अनुभवों को वाणी मिली है । उनके अध्ययन - मनन की परिचायक विचारधाराओं की अभिव्यक्ति लोकायतन की बडी उपलब्धि है ।

लोकायतन की कथावस्तु सरल और साधारण होते हुए भी जटिल है । अनेक अवांतर कथाओं के कारण कथावस्तु में सुसंगठन नहीं है । इसका नामकरण उचित है क्योंकि इसमें संपूर्ण विश्व का चित्रण है । इसका मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक दृष्टि द्वारा वर्तमान युग जीवन को परिवर्तित करना है । अरविंद-दर्शन से प्रभावित होने के कारण कवि ने अध्यात्मवाद

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.200

और भौतिकवाद का समन्वय करने की कोशिश की है । इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि दिखलाई है । अन्त में मोक्ष की विजय भी सिद्ध की है ।

गांधीजी के अतिरिक्त सभी पात्र काल्पनिक हैं । सभी कथापात्रों का लक्ष्य समाज सेवा करना है । इसमें कवि ने कल्पना की अन्तर्दृष्टि से एक नवीन आदर्श लोक की सृष्टि की है । वर्तमान से ऊपर उठकर मंगलप्रद सुखमय भविष्य का अंकन करना ही इस महाकाव्य का लक्ष्य है । यह सर्वांगीण चेतना का काव्य है, क्योंकि इसमें कवि ने मानवजाति के सर्वांगीण विकास केलिये अधिक महत्त्व दिया है ।

तीसरा अध्याय

लोकायतन की परवर्ती रचनायें

तीसरा अध्याय

3. लोकायतन की परवर्ती रचनायें

पन्तजी की आरंभिक रचनाओं में प्रेम, प्रकृति और मानवतावाद की प्रधानता थी । सन् 1942 के बाद कवि की विचारधारा में एक बड़ा परिवर्तन आया । उसके बाद की सभी रचनायें मुख्य रूप से अरविंद दर्शन से प्रभावित हैं । साहित्य जगत् में उनकी "लोकायतन" तक की सभी रचनाओं की काफी चर्चा हुई है । 1964 में "लोकायतन" महाकाव्य की रचना हुई है । उसके बाद कई काव्य-संग्रह निकले हैं । ये रचनायें पन्तजी की काव्य साधना में महत्वपूर्ण परिवर्तन के सूचक हैं । पन्तजी मृत्यु पर्यन्त काव्य-साधना में लीन रहे हैं और ये परवर्ती रचनायें उनकी विकासमान मनीषा एवं कवि व्यक्तित्व की परिचायक हैं । परवर्ती रचनायें कालक्रम के अनुसार निम्नलिखित हैं -

3.1. किरणवीणा (1967)

3.2. पुरुषोत्तमराम (1967)

3.3. पौ फटने से पहले (1967)

3.4. पतझर एक भाव क्रांति (1969)

3.5. गीतहंस (1969)

3.6. शंखध्वनि (1971)

3.7. शशि की तरी (1971)

3.8. समाधिता (1973)

3.9. आस्था (1973)

3.10. सत्यकाम (1975)

3.11. गीत-अगीत (1977)

3.12. संक्रांति (1977)

3.1. किरणवीणा

इसमें कुल 77 कवितायें संकलित हैं जिनमें अंतिम "पुरुषोत्तमराम" एक लंबी कविता है और अलग से प्रकाशित हो चुकी है ।

"किरणवीणा" की कविताओं में कवि के अनुसार "विषयों में पर्याप्त वैचित्र्य है जिसका कि पाठक स्वयं अनुभव करेंगे ।--मेरी प्रेमनात्मक अनुभूतियों से भी संबंध रखती है ।[1]" "किरणवीणा कवि की रस मानस तंत्री है । सांस तार हैं और आत्मा का संगीत है । इस आन्तरिक सौरभ के बीच "चेतना का माणिक जल" प्रवाहित होता है ।[2]"

---

1. किरणवीणा - विज्ञापन - पन्त

2. किरणवीणा - पन्त, पृ.2

इस रचना में सत्य के आत्म पक्ष पर प्रकाश डाला गया है । इस संग्रह की रचनाओं में पन्त के कृतित्व का हृदय स्पंदित मिलता है । "किरणवीणा" की प्रथम कविता इस का उदाहरण है -

"मैं हूं केवल
एक तृणं किरणं,
जिसको मानव के पग धर
चलना धरती पर !
मेरे नीचे
पड़ा अडिग पर्वताकार शव -
पथराया केंचुल अतीत का ! - -
मुझको क्या उसमें नव जीवन डाल
जगाना है जड शव को[1] ।"

इसकी कविताओं में विविध विषयों में सामान्यत: दार्शनिकता के तत्व बिखरे पड़े हैं । पन्तजी ने शंकराचार्य के मायावादी दर्शन का खंडन किया है -

"सर्प रज्जु भ्रम में फंसकर, हा,
(माया मिली न राम !)
शून्य में लटका छूंछा
ब्रह्मवाद का
ज्योति-अंध मन[2] ।"

---

1. किरणवीणा - पन्त, पृ. 1
2. वही, पृ. 58

जिस प्रकार पशु से मानव विकसित हुआ, उसी प्रकार मानव से देवता विकसित होगा और यह नवमानव धरती पर ईश्वरीय जीवन व्यतीत करेगा -

"देव मनुज पशु
नया मनुज बन जायेंगे जब,
तब होगा चरितार्थ
धरा पर जीवन ईश्वर।[1]"

कवि लोकप्रेम और विश्वभर के राष्ट्रों में मानवत्व धर्म की एकता और समता स्थापित करने केलिये धरती पर शीघ्रातिशीघ्र नव मानवत्व के साम्राज्य की प्रतिष्ठा केलिये तत्पर दृष्टिगत होते हैं -

"पुरुषार्थ अजेय मनुज सम्बल,
उर लोक-प्रेम को कर अर्पित,
राष्ट्रों में बिखेरी युग-भू पर,
नव मनुष्यत्व करना स्थापित ![2]"

"किरणवीणा" में पन्तजी ने पाश्चात्य विद्वान डार्विन के विकास - सिद्धान्त की चर्चा की है। "नयी आस्था" नामक लंबी वर्णनात्मक कविता में, कवि ने डार्विन के भौतिक विकासवाद और अरविंद के आध्यात्मिक विकासवाद का सुन्दर समन्वय बड़ी रोचक और व्यंजनापूर्ण भाषा में प्रस्तुत किया है। डार्विन के पादरी मित्र केवल आध्यात्मिक

1• किरणवीणा - पन्त, पृ•11

2• किरणवीणा - सुमित्रानंदन पन्त, पृ•142

उन्नति को ही धर्म मानते थे । उन्हें भय था कि केवल भौतिक विकास के साधनों में संलग्न डार्विन मृत्यु के पश्चात् अवश्य नरक का भागी है । पादरी के मन में स्वर्ग और नरक के संबंध में परम्परागत कल्पना थी । डार्विन की मृत्यु के पश्चात् एक दिन पादरी स्वप्न में डार्विन को सातवें अंतिम घोर नरक में ढूंढने का यत्न करता है । किन्तु उस नरक को ही डार्विन की उपस्थिति के कारण स्वर्ग में परिणत देख, वह आश्चर्यचकित रह जाता है और तब -

"पूछा अति आश्चर्य चकित
कसणाद्र पोप ने -
"कौन स्थान यह ? स्वर्ग लोक क्या ?
बोला नम्र स्वयं सेवक,
जो यही नया वह स्वर्ग लोक,
जिसके स्रष्टा
पतितों के सेवक प्रिय डार्विन हैं[1] ।"

डार्विन ने स्वयं पोप को समझाया कि जब वह इस नरक में पहुँचे तो वहाँ अन्धकार ही अन्धकार था । किन्तु उनकी -

"चिन्तन-रत बुद्धि ने कहा,
घबड़ाओ मत,
और अध्ययन मनन करो ।
xx x xx
यह जैविक ही नहीं
विश्व मन की आध्यात्मिक
पूर्ण प्रगति का भी द्योतक है[2] ।"

---

1. किरणवीणा - पन्त, पृ.175-176
2. वही, पृ.177-178

अन्तिम पंक्तियों में पन्तजी ने एक वैज्ञानिक के मुख से यह कहलवा दिया कि भौतिक उन्नति के साथ साथ आध्यात्मिक उन्नति का भी उतना ही महत्व है । जिस आध्यात्मिक उन्नति की चर्चा पन्तजी कर रहे हैं वह मध्ययुगीन कुंठित और संकुचित आध्यात्मिक प्रवृत्ति नहीं, अपितु श्री अरविंद द्वारा प्रतिपादित ऐसी विशाल और उदार आध्यात्मिकता है जो मानव के ऊर्ध्व विकास की क्षेत्र उद्घाटित करती है । इस प्रकार की आध्यात्मिक उन्नति की चरम परिणति है, मानव का अतिमानसिक रूपांतर -

"मध्ययुगों का मृतक बोझ
कुंठित करता जन अंतर,
अतिक्रम कर इतिहास,
मनुज मन का होना रूपांतर[1] ।"

चिन्तन पन्त काव्य की सरल सहज प्रवृत्ति है । "किरणवीणा" के सरल सुभग गीत यद्यपि गहन गूढ चिन्तन से बोझिल नहीं है तथापि उनमें दार्शनिक चिन्तन विद्यमान है । पन्तजी दिव्यचेतना का अनुभव श्रद्धा और आस्था के मार्ग से प्राप्त करना चाहते हैं -

"आत्म नम्र ही
जिसको कर सकता
श्रद्धा से वरण,
आस्था से
भव-सिंधु का तरण[2] ।"

---

1. किरणवीणा - पन्त, पृ.23
2. वही, पृ.85

3·2· पुरुषोत्तमराम

"पुरुषोत्तमराम", "किरणवीणा" की एक कविता है । यह एक आत्मपरक खण्डकाव्य है । महादेवी को समर्पित इस कृति में देश की समसामयिक समस्याओं, आन्दोलनों, विकृतियों और विभ्रांतियों पर अपने विचार कवि ने प्रकट किये हैं । नवंबर 1966 में गोहत्या विरोधी आन्दोलन ने उन्हें बहुत अधिक उद्वेलित किया । परिणाम स्वरूप दिसंबर प्रथम सप्ताह में "पुरुषोत्तम-राम" का उन्होंने प्रणयन किया । यह कविता उनकी तात्कालिक मनोवृत्ति को मुखरित करती है -

"जाने कितने विकृत खोखले आदर्शों को
सन्त धरोहर मध्ययुगी मन के प्रतीक है[1] ।"

कवि की राय में "पुरुषोत्तमराम" का दर्शन पुराने समय के राम"कृष्ण में नहीं होगा, वह नवयुग के राम मनुष्य में ही संभव है -

"धरा स्वर्ग,इह पर में मुझको करो न खण्डित
मैं ही ईश्वर-नर, जो तुम में बोल रहा हूँ ।
महानाश भी कालहीन मेरे स्पर्शों से
पलक मारते जी उठेगा - सृजन काम में[2] ।"

"पुरुषोत्तमराम" के अभिनव संदेश में कवि का ही चिन्तन स्वर बोल रहा है । राम के निष्कर्ष कवि के स्वयं अपने निष्कर्ष हैं । जीवन में

---

1 पुरुषोत्तमराम - पन्त, पृ·66
2· वही, पृ·42

समन्वय स्थापित करने केलिये भौतिकता और आध्यात्मिकता के सन्तुलन की आवश्यकता है। उसकेलिये निवृत्ति के निबिड अंधकार को छोड़कर प्रवृत्ति का प्रकाश - सुख अपनाना चाहिये। यहाँ राम-वैभव के स्वामी हैं, अतः वे मनुज-कल्याण केलिये वैभव को वरणीय मानते हैं, यद्यपि उसके साथ समृद्ध आत्मिक स्वरूप की अनिवार्यता भी स्वीकार की गयी है। यहाँ धरती के सौंदर्य, शक्ति और इसके उपभोग की प्रेरणा है, प्रकृति से बल ग्रहण करने का आदेश है -

"नियति कूप में गिरे न निष्क्रिय मन विषण्ण जन,
संयम से सुख भोग करें, सित भू जीवन का।
प्रकृति शक्ति मेरी, अक्षय योजना, रूप श्री,--
xx xx xx
मुझ से रह संयुक्त, प्रकृति से ग्रहण करें बल[1]।"

3·3· पौ फटने से पहले

यह कविता संग्रह बच्चनजी को उनकी षष्ठिपूर्ति पर समर्पित है। इस काव्यसंग्रह में पन्तजी की 1967 में लिखी कवितायें संग्रहीत हैं।

इन रचनाओं में राग-भावना के परिष्कार को अभिव्यक्ति दी गयी है। इसके संबंध में पन्तजी ने स्वयं कहा है - "इन रागात्मक रचनाओं में मैं ने आज के युग की पृष्ठभूमि में प्रेम के संचरण को अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न किया है - इन रचनाओं में आज के ह्रासयुगीन भावनात्मक

1· पुरुषोत्तमराम - पन्त, पृ·43

संघर्ष का गहन अंधकार तथा काल की संवेदना का आशापूर्ण प्रकाश संग्रथित है, साथ ही राग चेतना के सामाजिक विकास की सूक्ष्म रूपरेखा भी इनमें अन्तर्निहित हैं।[1]"

आज की बदलती परिस्थितियों में राष्ट्रचेतना किस प्रकार संभव है, इस के मार्ग इन्हीं रचनाओं में दिखाये गये हैं। "पौ फटने से पहले" नाम से स्पष्ट है कि इस कृति में आज के भावनात्मक संघर्ष की अन्धकारपूर्ण परिस्थिति के साथ साथ कल की जागृत संवेदना का आशापूर्ण प्रकाश भी सन्निहित है। "जीवन - मंगल की साधना में रत आशावादी कवि पन्त का अन्तस् निश्चित रूप से यह जानता है कि "पौ फटनेवाली है और निश्चय ही इस युग का सूचीभेद्य अन्धकार छिन्न-भिन्न होकर रहेगा[2]।" इस संग्रह की प्रथम कविता में कवि ने इस ओर संकेत करते हुए लिखा है -

"अन्धकार का घोर प्रहर यह
नीरवता गहराती रह रह
मन में नहीं कहीं भय संशय
प्राण, अभी पौ फटनेवाली[3]।"

इस की अधिकांश कवितायें जीवन की केन्द्रीय चेतना से ही संबंधित है -

"पौ फटने का पूर्व प्रहर यह
गहराता अंतर-तम रह-रह,

---

1. पौ फटने से पहले - पन्त, विज्ञापन
2. पन्त की काव्यगत मान्यतायें और उनका काव्य - डॉ॰अवध बिहारी राय, पृ॰175
3. पौ फटने से पहले - पन्त, पृ॰1

हृदय क्षितिज में उदित हो रही
तुम उषा सी
अप्रत्याशित ।"[1]

एक ही परम सत्य है जो धरती की हरीतिमा में, विश्व तथा विश्वातीत में है । पन्त की सभी रचनाओं का केन्द्रीय सत्य चेतना है, युगीन संघर्ष और सीमाओं पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा है -

"तुम इतनी हो निकट हृदय के
भूल तुम्हें जाता मन,
प्राण, इसी से राग द्वेष का
जीवन बनता प्रांगण ।"[2]

कवि काव्य-सृजन के माध्यम से कुछ विचार और भावनायें मानव जगत् को अर्पित कर रहे हैं, उनका मूल्यांकन करते हुए स्वयं ऐसा कहा है -

"कवि होता सम्राट न
वह सेना अधिनायक,
होता सित चित् रस चातक,
जन भू उन्नायक!
नहीं बदलता वह जीवन को
मात्र दृष्टि भर देता जन को ।"[3]

---

1. पौ फटने से पहले - पन्त, पृ॰157
2. वही, पृ॰152
3. वही, पृ॰ 84

कवि की आशा है कि विकृत पुरातन को नष्ट-भ्रष्ट कर निद्रित उपचेतन को पुनः जाग्रत करना । भावी मानवता के रण में तब तम पर प्रकाश किरण विजयी हो सकेगा । यही भाव-क्रान्ति जीवन और मन का रूपान्तर कर सकेगी—

"मृतजन से संबंध न संभव
विचरो प्रीति-सेतु रच अभिनव,
रूपान्तर हो
जीवन मन का -
भव विकास का आया शुभ क्षण[1] ।"

कवि ने जगन्मयी वधू-चेतना को संबोधित करते हुए ऐसा कहा है -

"वधू चेतने,
जड अपूर्ण
जर्जर जग खंडहर
इस को निज आनंद निवास
बनाओ सुन्दर[2] ।"

आस्थावान कवि ने भू - जीवन में ही ईश्वर को देखने की इच्छा की है तथा उन्हें विश्वास है कि प्रेम ही से इस भू-जीवन का नव-निर्माण हो सकेगा -

---

1. पौ फटने से पहले - पन्त, पृ.172
2. वही, पृ.38

"जन-भू ही ईश्वर का आवास
न संशय
अन्यत्र न स्वर्ग, न ईश्वर -
यह रे निश्चय ।
निर्माण करें जग का
हम या प्रभु आशय
यह प्रेम -
कृच्छ भू - स्वर्ग-सृजन तप में लय ।"[1]

पन्तजी की चिर अभिलाषा है कि जगत् में यह दिव्यचेतना पूर्णतः अभिव्यक्त हो, जिससे मानव का संपूर्ण जीवन इसके दिव्य सौंदर्य में ढल जाये, इस के दिव्यप्रेम से मानव हृदय परिपूर्ण हो तथा मानव मन, अतिमन को धारण करने योग्य हो जाये -

"सुन्दर तन,
सुन्दर हो जीवन ।
हृदय प्रीति का स्फटिक-मुकुर,
मन आत्मा का सित वाहन ।"[2]

"प्रस्तुत संग्रह की कविताओं में पन्तजी ने दिव्यचेतना को राग चेतना कहा है और अपनी पूर्व रचनाओं में उन्होंने इसे ही स्वर्ग चेतना और नवचेतना आदि नामों से अभिहित किया था । है यही परमचेतना, सकल दृष्टि जिसका विस्तार है । इतना अवश्य है कि दार्शनिक चिन्तन को प्रस्तुत करने केलिये उनकी वाणी पहले से अधिक सरल, मधुर एवं मर्मस्पर्शी होती गयी है[3] ।"

---

1. फो फटने से पहले - पन्त, 49
2. वही, पृ. 113
3. आधुनिक हिन्दी काव्य पर अरविंद दर्शन का प्रभाव-डॉ. कृष्णाशारदा, पृ. 373

कवि ने मनुष्य जीवन को प्रेम से शासित देखने की इच्छा की है जहाँ शोभा जीवित होकर चले और सृजन शक्ति स्थापित हो सके -

"त्याग करो जनमंगल के हित,
नव भविष्य हो तुम से उपकृत ।
नयी पीढ़ियाँ अब जो आयें
स्वर्ग समान धरा को पायें ।
शोभा चले धरा पर जीवित
अंतः सुख से हो उर दीपित ।
सृजन शान्ति हो जग में स्थापित
मनुज प्रेम से जीवन शासित[1] ।"

इस कृति के अध्ययन से कवि की भाव-दृष्टि खुलकर निश्चित रूप से सामने आयी है । कुलमिलाकर कवि ने आज के अंधकार युग में प्रकाश-कण बिखेरता हुआ मंगल की कामना की है । "इस प्रीतिरस को प्रत्येक घट में भरना चाहता है और आशा करता है कि प्रेम रस सिक्त मनुष्य इस विकृत जग का रूपान्तर करने में अवश्य सक्षम हो सकता है[2] ।"

3·4· <u>पतझर एक भावक्रांति</u>

इस कृति का प्रकाशन सन् 1968 में हुआ । यह कृति आज के युग संघर्ष की द्योतक है । इसकी अधिकांश रचनायें भाव प्रधान तथा युग बोध से प्रेरित है । कुछ रचनायें विचार प्रधान भी है, जिनमें कवि का बौद्धिक व्यक्तित्व देखा जा सकता है ।

1· पौ फटने से पहले - पन्त, पृ·126

2· पन्त की काव्यगत मान्यतायें और उनका काव्य - डॉ· अवधबिहारीराय, पृ·182

कवि का विश्वास है कि "बाह्यक्रान्ति आन्तर क्रान्ति के बिना अधूरी तथा एकांगी रहेगी ।"[1]

यह काव्यसंग्रह स्वर्णकाव्य की भावभूमि के अधिक निकट आ गया है । भाषा यद्यपि गूढ दार्शनिक सिद्धान्तों से बहुत अधिक बोझिल नहीं, तथापि शब्द चिन्तन का भार वहन करने में समर्थ हैं । अनेक कविताओं की पंक्तियाँ, दार्शनिक तथ्यों और तत्वों को अभिव्यक्त करने केलिये प्रयुक्त हुई हैं । यह दार्शनिकता, अरविंद दर्शन से प्रभावित स्वर्णकाव्य की दार्शनिकता जैसी ही है । अरविंद साहित्य के संपर्क में जाने के पश्चात् जिस प्रकार की दार्शनिकता को लेकर पन्तजी चले थे, आगे भी उसी प्रकार के मार्ग का अनुसरण करते दृष्टिगत होते हैं ।

पन्तजी ने अपने जीवन-दर्शन में सदैव पतझर को बहुत महत्व दिया है । प्रस्तुत संग्रह का नाम ही उन्होंने "पतझर एक भावक्रांति" रख दिया है । उनके मतानुसार जिस प्रकार प्रकृति के जीवन में पतझर के पश्चात् नव वसंत का संयोजन नवोत्साह के साथ होता है, उसी प्रकार मानव जीवन में भी पुराने और अधूरे मूल्यों के नाश के पश्चात् ही नवमूल्यों के जन्म की आकांक्षा की जा सकती है -

"नया मनुज चाहिये आज,
जन - भू.को नव संयोजन,
ध्वंस भ्रंश कर सर्व मूल्य सब
भाव-क्रांति हो नूतन ।"[2]

---

1. पतझर - एक भावक्रांति - पन्त, विज्ञापन
2. वही, पृ.150

नव मानव के जन्म में सहायक, मानव मन के परिवर्तनों को पन्तजी ने भावक्रांति कहा है और इस क्रांति का मुख्य आधार पतझर माना है कवि को विश्वास है कि भावक्रांति ही नवयुग लायेगी --

"भाव क्रांति ही से संभव
नव युग परिवर्तन
सारथि हृदय, बुद्धि अर्जुन बन
जीते युग-रण[1]।"

प्रस्तुत संग्रह में पन्तजी ने दो महान नवयुग निर्माताओं को नमस्कार किया है -

"श्री अरविंद, रवीन्द्र -
सभी अंतर्नभचारी,
उन्हें नमन करता सविनय
कवि-मन संस्कारी[2]।"

प्रत्येक महाकवि अपने युग का प्रतिनिधि होता है। पन्तजी ने स्वयं को आधुनिक युग की आध्यात्मिक कविता धारा का प्रतिनिधि कहा है -

"मैं अपने युग का प्रतिनिधि हूँ
जग जीवन प्रति अर्पित,
काल-शौर्य पीढ़ियाँ मुझे
कर सकती रंच न खंडित[3]।"

1· पतझर एक भाव क्रांति - पन्त, पृ·183
2· वही, पृ·188
3· वही, पृ· 60

इसके अतिरिक्त चन्द्रकला, गिरि-विहगिनी, गिरि कोमल, तारा-चितम, सरिता, आत्मप्रतारणा, सन्ध्या के प्रति आदि कविताओं में भी रम्य भावचित्र प्रस्तुत किये गये हैं। वैसे इस संग्रह में "विज्ञान और कला" तथा "भरतनाट्यम् जैसी गद्यात्मक कवितायें भी हैं। "भरतनाट्यम्" की गद्यात्मकता तो कुछ आश्चर्यचकित भी करती है, आश्चर्य होता है कि रसमग्न कर देनेवाले उस नृत्य से कवि "दोनों ही नर्तकियाँ नृत्य-कला कुशला थीं और नतमस्तक हूँ मैं दक्षिण भारत के सम्मुख" अधिक कोई प्रभाव नहीं ग्रहण कर सका।

इस संग्रह की "सरिता" शीर्षक कविता में पर्वत से निकलने के बाद, क्रमशः जल संग्रह करके यौवन प्राप्त करती नदी का वर्णन द्रष्टव्य है -

"नव जल भार समेट
पीन छवि अंगों में भर
युवती जब तुम भेंटोगी
कूलों को नि:स्वर!
धूपछाँह की वीथी में
विचरोगी निर्जन,
संभव, विस्मित वहाँ
प्रतीक्षा - रत हो गोपन!"[1]

---

1. पतझर एक भाव क्रांति - पन्त, पृ॰69

"मैं फिर से तुम को
हर ले जाऊँगा वन में,
वन के निश्छल मुक्त
निसर्ग-निभृत प्रांगण में ।"[1]

यहाँ पर कृत्रिम भावनाओं, मिथ्या विश्वासों में लिपटी आधुनिक नारी को कवि पुन: अतीत कालीन परिवेश में प्रकृति के मुक्त लीला-प्रांगण में ले जाना चाहता है । लेकिन उस नारी सौंदर्य को पवित्र और सात्विक होता है । प्रीति की सुधा-धार में नहाई हुई नारी सरल और निश्छल बने, तभी वह मानव हृदय का सच्चा प्रतिनिधित्व कर सकेगी और इस पृथ्वी के पथ को पवित्र कर सकेगी । क्योंकि वह सखी, प्रेयसी अथवा माँ कोई भी हो, सबसे पहले वह शाश्वत् मन की शोभा का प्रतीक है । उसके हार्दिक गुणों में ईश्वर के दर्शन होना चाहिये -

"सखी, प्रिये, माँ
तुम सर्वोपरि शोभा शाश्वत,-
तुम में मैं
भू पर ईश्वर का करता स्वागत !"[2]

आन्तरिक विकास का लक्ष्य सामने रखकर "गीतहंस" की अधिकांश रचनायें लिखी गयी हैं । आभ्यंतर की पुर्न-रचना के अतिरिक्त मानव जीवन की कोई अन्य सार्थक गति नहीं है । बाह्य जगत् अन्तर्जीवन के विकास की पीठिकामात्र है । मनुष्य की प्रतिष्ठा हृदयकमल में ही

---

1. गीतहंस - पन्त, पृ.42
2. वही, पृ.177

3·5· गीतहंस

इस की दो रचनाओं को छोड़कर अन्य सभी रचनायें सन् 1969 के पूर्वार्द्ध में लिखी हुई है । कुल पंचानब्बे रचनायें इस कृति में संगृहीत हैं । एक रचना गाँधीजी से संबंधित है । शेष सभी रचनाओं की भावभूमि आन्तरिक मूल्यों से संबद्ध है । जैसाकि नाम से ही स्पष्ट है, इस संग्रह की अधिकांश रचनायें गीतों में हैं फिर भी गेयता की दृष्टि से ये गीत कदाचित् ही सफल कहे जायेंगे । कवि का ध्यान गायन की ओर न रहकर सुपाठ्यता की ओर ही अधिक रहा है । इसलिये इन कविताओं को "चिंतनप्रधान प्रगीत" कहा जा सकता है । इसमें अति चेतना मन: शिखर पर "गीतहंस" भी सहज उतरकर अपनी शुभ्र सुनहली छायायें बसाती रहती हैं । और कवि इस नये अस्तित्व बोध से शक्ति ग्रहण कर उन्मेषित होकरनयी साधना-भूमि पर विचरण करता है । वह नवचेतना स्पर्श से रस-विह्वल है और सदा साधक बने रहने में ही अपनी चरम सिद्ध अनुभव करता है [2]।"

प्रस्तुत कविताओं के वैचारिक भूमि में कोई नूतनत्व नहीं । इस का कथ्य यह है कि जीवन के परम्परागत सभी मूल्य नष्ट हो रहे हैं इसलिये नवीन मूल्यों से जीवन को संपृक्त करना है । कवि शरीर सौंदर्य को हेय मानते हैं, हृदय का सौंदर्य ही असली सौंदर्य है । मनुष्य की रागचेतना को मुक्त, परिष्कृत और उदात्त रखना चाहिये । नारी भोग का साधन न बनकर अपनी हृदय निधि संपूर्ण विश्व के सृजनपथ को अर्पित करे । इसी प्रकार की विचारभूमि को लेकर इक्कीसवें गीत में कवि की भाव-तन्मयता इस प्रकार है -

---

1· गीतहंस - पन्त, पृ·1,6

2· गीतहंस - पन्त, पृ·20

पूर्ति: संभव है । अन्तर सौंदर्य में ईश्वर की छवि का दर्शन होता है । मानव की सार्थकता आर्थिक विधियों पर नहीं, आत्मिक विकास पर निर्भर होती है -

"बाह्य जगत् पीठिका मात्र
अन्तर्जीवन हित -
हृदय कमल में
मनुष्यत्व को
होना पूर्ण प्रतिष्ठित ![1]"

बहिर्जीवन पद्धति का मूल्य भी तभी है जब वह सहज रूप में आत्मिक मूल्यों से संयुक्त हो -

"मूल्य बहिर्जीवन पद्धति का भी
जो वितरण
करती अंतर्वैभव, -
जीवन श्री शोभा से
दिङ् मुकुलित हो सके
धरा जन प्रांगण ![2]"

वे मानव मांगल्य से अर्पित कला को सार्थक मानते हैं । नये जीवन-निर्माण के लिये कर्म-शक्ति का सम्पादन अपेक्षित है । ऐसे गीतों की सृष्टि करने का कवि ने दृढ निश्चय किया है जिससे नये मानव-मन और तदनुसार नये विश्व का निर्माण कर सके । मध्य युगीन मान्यताओं ने

1· गीतहंस - पन्त, पृ·46
2· वही, पृ·47

मनुष्य को कर्म से विरक्त और जीवन से उन्मुक्त कर दिया । इन मान्यताओं ने मानव मन को भय और संशय से आतंकित कर दिया । इस मध्ययुगीन कारा से मानव को मुक्त करना होगा । आज के युग की सीमा यह है कि वह सभी कुछ बुद्धि या तर्क बल से समझना चाहता है । सत्य के भीतर बुद्धि की पैठ सीमित है । वह समग्र को खंडित कर केवल अंश-बोध देती है, पूर्ण सत्य नहीं । पूर्ण सत्य को प्राप्त करने केलिये आस्था चाहिये, जो हृदय शक्ति है -

"आस्था पथ पर ग्रहण
सत्य-मुख का खुल पड़ता
हिरण्यमय अवगुंठन ।"[1]

नये युग की रचना केलिये मनुष्य के मन का संस्कार करना होगा । आज मनुष्य का मन अहंभाव, क्षोभ और बाह्य बोध से उन्मन है । इसलिये वह बुद्धि-भ्रांत और भय-संशय संत्रस्त होकर जीवन बिता रहा है । आज के मनुष्य को मानवप्रेम के उच्च आदर्श के प्रति समर्पित होना है - उसे सभ्य के बजाय संस्कृत होना है । इस संस्कृति को प्राप्त करने केलिये पन्तजी मानव के बाह्य और अन्तर क्षेत्रों के समन्वय का मार्ग सुझाते हैं -

"क्या न सभ्य परिहास
बाह्य जग का रूपांतर,
भीतर से यदि मनुज क्षुद्र
प्रस्तर युग का नर !
बहिरंतर चाहिये
उदात्त, महत् परिवर्तन,
सभ्य मनुज संस्कृत बन सके,
अमर दो साधन ।"[2]

---

1. गीतहंस - पन्त, पृ. 17।

2. वही, पृ. 113

इस संग्रह में मानव के प्रथम चन्द्रारोहण पर भी एक कविता है। एक ओर कवि इस विजय पर अपना उल्लास प्रदर्शित करता है, फिर दूसरी ओर उसे लगता है -

"रिक्त जल्पनामात्र विजय,
उल्लास न जन के भीतर,
अहं, भू जीवन हित होता
दिग् यात्रा व्यय न्योछावर।[1]"

अन्त में कविता इस तरह समाप्त होती है -

"जय साहसी दिगारोही
शशि से जिसके पद चुंबित।[2]"

कवि ने भारतीयों को संगठित होकर एक बनने का आह्वान दिया है -

"संकुंठित अंतर्विरोध
मन के कर मर्दित,
अन्न वस्त्र भाषा के स्तर पर
देश एक स्वर
एक ध्येय वर
बने संगठित।[3]"

---

1 गीतहंस - पन्त, पृ॰240
2॰ वही, पृ॰240
3॰ वही, पृ॰173

संग्रह की अंतिम कविता 20 मई 1950 कवि के जन्म दिवस को लक्ष्य करके सन् 1950 में लिखी गयी थी । उसमें अब 70 जोड़कर उसे इस संग्रह में सम्मिलित कर लिया गया है ।

3·6· शंखध्वनि

अगले संग्रह शंखध्वनि (प्रकाशन 1971) में 1970 में लिखी गयी 97 कवितायें सम्मिलित की गयी हैं । इसमें नये जागरण का संदेश देनेवाली अनेक कवितायें हैं । इन रचनाओं में मुख्यत: नये जागरण के स्वरों को तथा विश्वजीवन के भीतर उदय हो रहे मनुष्यत्व की रूपरेखाओं को अभिव्यक्ति मिली है । "कुछ रचनाओं में वर्तमान जीवन की विसंगतियों के प्रति कवि के मन की प्रतिक्रियायें तथा कुछ में मेरे व्यक्तिगत सुख-दु:ख की अनुगूंजों को भी वाणी मिली है[1] ।" इसमें पन्तजी के कवि व्यक्तित्व के नये आयामों का उद्घाटन हुआ है ।

"कविकर्म" नामक एक कविता में उन्होंने एक सच्चे कवि के धर्मों की चर्चा की है । दुनिया में सत्य कहना एक कवि का धर्म है । आगे उन्होंने ऐसा गाया है -

"वह महानता में लघु, लघुता में महान्
वह विशिष्टता से विशिष्ट भी साधारण,
रक्त, मांसपेशियाँ, अस्थियाँ गातीं सब
रचना-शुभ प्रतिनिधित्व उचित उसकी अर्पण[2] ।"

1· शंखध्वनि - पन्त, भूमिका
2· वही, पृ·40

"अति यान्त्रिकता" शीर्षक कविता में आधुनिक जीवन में यंत्रों के अनुचित प्राधान्य का विरोध है । प्रखर और क्षिप्र भाषा में यान्त्रिकता की अतियों की भर्त्सना करके कवि ने अंत में मानव को यंत्र के ऊपर प्रतिष्ठित करने की सिफारिश की है -

"यान्त्रिकता के धूमों से उन्मुक्त विश्व में
मनुष्यत्व को यंत्रों के ऊपर स्थापित कर ![1]"

"धूप का टुकडा" कई दृष्टियों से एक सुन्दर कविता है । उसमें चिंतन है, पर वह कविता को वक्तव्यात्मकता की ओर नहीं ले जाता । उसमें एक प्राकृतिक व्यापार की लुभावनी झलक है, पर वस्तु-चित्रण मात्र नहीं । वास्तव में इस कविता में सौंदर्य-भावना और चिंतना का अद्भुत संयोग संभव हुआ है । धूप के टुकडे का चित्र द्रष्टव्य है -

"एक धूप का हँसमुख टुकडा
तरु के हरे झरोखे से झर
अलसाया है धरा धूल पर -
चिडिया के सफेद बच्चे सा ।[2]"

"युग-रमणी" आधुनिक नारी पर लिखी गयी कविता है । कवि ने इस बात को खेदजनक बताया है कि आज की नारी पुरुषों के समकक्ष तो होती जा रही है, पर दूसरी ओर अपने अंतःसौंदर्य को खोती सी जा रही है -

"निखिल सभ्यता बनी प्रसाधन युग रमणी की,
पर अंतःसौंदर्य खो गया - प्रमुख विभूषण,

---

1. शंखध्वनि - पन्त, पृ.16
2. वही, पृ.36

भोग तत्व वह मात्र - न श्रद्धा पात्र प्रीति की -
हृदय-सत्य ही साध्य-सभ्यता संस्कृति साधन ।"[1]

पन्तजी की पीछे की रचनाओं में प्रकट होनेवाली नई जीवन-दृष्टि इस संग्रह की "विकास-क्रम", "अभीप्सा", "मुखर", "प्रेम", "युगगाथा", "भावसिद्धि", "समाधान", "एक मद्", "आत्मधुरी", "अंतर्यात्रा", "आत्मपरिचय", "जयनाद", "आकांक्षा" आदि रचनाओं में प्रकट हुई है ।

भारत में जीवन बोध तथा नैतिक सांस्कृतिक मान्यतायें परिस्थितियों के अधीन न रहकर सदैव ही उनसे ऊपर, आत्मबोध की व्यापक दृष्टि से अनुप्राणित रही है । भारतीय संस्कृति में जीवन मूल्य, चाहे वे व्यक्तिगत हो या सामाजिक, मानवीय मूल्यों को आश्रित रहे हैं और वे मानवीय मूल्य निरंतर आध्यात्मिक आंतर मूल्यों पर आधारित रहे ।

"आस्था ईश्वर पर मुझको,-उसमें सब संभव,
वही बदल सकता बहिरंतर जीवन मन को,-
काल सृष्टि का साक्षी-प्रगति विकास प्रवर्तक,
ईश्वर-गर्भित जानो उसके शाश्वत-क्षण को ।"[2]

पन्तजी धरती के प्यार के भूखे हैं, वे धरती के रज-कण में प्रत्येक के जीवन में उस प्यार का प्रस्फुटन चाहते हैं जो जीवन की सार्थकता हो -

---

1. शंखध्वनि - पन्त, पृ.43
2. वही, पृ.72

"वह तो प्रेम,
तुम्हारा श्री मुख
तन्मय अंतर को देता सुख ![1]"

xx xx xx

मैं भी संयुक्त निखिल जग से,
अज्ञात हर्ष से आंदोलित
गाते मेरे शोणित के कण
भूमा के स्वर्गों से प्रेरित ![2]"

xx xx xx

देवों का हो स्वर्ग महत् -
पर जन धरणी पर
रचना हम को मानवीय
नव स्वर्ग महत्तर- ![3]"

इस संग्रह की अंतिम दो कविताओं का स्वर सब से अलग है। इनमें "वियतनाम" शीर्षक कविता में वियतनाम में चल रहे साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के प्रति कवि ने अपना उत्साह प्रकट किया है।

"शूरवीरता के अप्रतिम निदर्शन निश्चय,
पौरुष तेज प्रतीक, धन्य तुम वियतनाम जन !
निज स्वतंत्रता की वेदी पर हँस हँस कर तुम
करते सब आबालवृद्ध निर्भीक समर्पण ![4]"

---

1. शंखध्वनि - पन्त, पृ.9
2. वही, पृ.174
3. वही, पृ. 12
4. वही, पृ.181

अंतिम कविता "लेनिन के प्रति" में कवि ने लेनिन के प्रति अपना श्रद्धाभाव प्रकट किया है । इसमें कवि ने यह धारणा भी व्यक्त की है कि अंतत: गांधी और लेनिन एक ही सत्य के शुभ्र संस्करण है और इसलिये -

"तम से लेकर महत् साध्य, गांधी से साधन
निखिल विश्व-जीवन संयोजित हो जन-भू पर ।"[1]

3·7· शशि की तरी

यह पंतजी का सुप्रसिद्ध स्मृति गीत है । यह काव्य अनुपमा नामक तीन चार साल की एक भोली बच्ची को समर्पित है । उसे पन्तजी ने स्वराज्य भवन, इलाहाबाद के बाल भवन में तीन बार देखा होगा, वह भी चार-चार, पाँच-पाँच मिनिट केलिये । उन्होंने कहा कि "अनुपमा में न जाने ऐसे कौन से विशिष्ट एवं उच्च संस्कार थे कि उसे देखते ही मेरा हृदय उसके प्रति गहरे वात्सल्य भाव से भर गया और दिन पर दिन उसके प्रति मेरे मन का आकर्षण बढता ही गया ।"[2] अनुपमा के घुटने की हड्डी कुछ बढी हुई थी । आपरेशन के असफल होने के कारण उसकी मृत्यु हो गयी । उस बच्चे की प्रशंसा सुनकर ही पन्तजी उसके प्रति आकर्षित हो गये थे और उसका संरक्षक बनने का निर्णय ले चुके थे । लेकिन यह विधाता को स्वीकार नहीं हुआ । पन्तजी की कल्पना दु:खदग्ध होकर सृजनवती हो गयी । इसमें कवि की जीवन-व्यथा भी इन शब्दों में प्रकट हो गयी है । इस तरह स्नेह संपदा-भरी स्वप्न पालों से सज्जित पन्तजी की यह स्मृतियों की शशि-तरी उनके वत्सल प्रेम की अच्छी अभिव्यंजना करती है । दुहिता अनुपमा का स्नेह व्यथा का रस-पावक बनकर अब कवि के जीवन को नये

---

1 शंखध्वनि - पन्त, पृ·184
2· शशि की तरी - पन्त, प्रस्तावना

ढंग से ढाल रहा है और अपने असीम एकाकीपन के गीतों के स्मृति-पंख खोलकर उड़ता हुआ, गगनों के पार गगन पार करता हुआ दिशि में, क्षण में खोजता है और अन्त में अश्रु ही स्पृहा तथा भाव स्वप्न की अकथित कथा समापन करता हुआ कवि का साँझ का हृदय पद्म मूँदकर उसका वन्दन करता है[1] "शशि की तरी" के आरंभ में उन्होंने ऐसा गाया है -

"प्रेम,
तुम्हीं हो स्नेह
तुम्हीं वात्सल्य भाव हो,
तुम्हीं फूल शर,
तुम्हीं मर्म के गुह्य घाव हो[2] ।"

"अनुपमा ने उनके हृदय में सदैव केलिये अपना स्थान बना लिया है । वह अदृश्य होकर भी उनके स्वप्नों के संसार का ही रूपान्तर करती है -

"नभ की नीरवता से हँस
वह बातें करती,
मन के सूनेपन में
मधुर वेदना भरती[3] ।"

अनेकानेक रूपों कवि का दुःख इन कविताओं में फूट पड़ा है । कभी वह प्रकृति के विभिन्न अवयवों में उस बालिका की छवि देखने लगता है,

---

1· शशि की तरी - पन्त, पृ·120
2· वही, पृ·13
3· वही, पृ·15

कभी गंगा (जिसमें वह प्रवाहित की गयी होगी) में "सरसीरुह" के रूप में उद्भूत उसके रूप की कल्पना करता है, कभी किसी अतिमानवीय शक्ति द्वारा उसे मृत्यु के घर से लौटा लाने की कल्पना करता है और कभी उसके बिना अपने जीवन को पतझर - सदृश वीरान प्रकट करता है । वास्तव में यदि कविता का क्षेत्र मुख्यतः भावना का क्षेत्र है तो "शशि की तरी" ऊपर उल्लिखित सभी संग्रहों से अच्छा है । इस संग्रह के गीतों में कवि का संवेदनशील हृदय अनुपमा के व्याज से मानो एक अत्यन्त तीव्र मानवीय अनुभूति से संस्पष्ट होकर पुनः नवीन हो उठा हो -

"भाव प्रवण, शोभा ग्राही
मेरे कवि उर का दर्पण
तुम्हीं जगा पाई उसमें
वह मधुर सूक्ष्म संवेदन ![1]"

रात को कभी, जब कवि को अपनी प्रिय पुत्री की याद आ जाती है, तब उसका हृदय आकुल हो उठता है -

"शशि लेखा को लिये गोद
वात्सल्य मुग्ध-सा अंबर,
तुम को अंक लगाने को
आतुर हो उठता अंतर ![2]"

इस प्रकार एक एक कविता में कवि ने अपनी व्यथा अंकित की है । जो पन्त के भावुक रूप के ही प्रेमी हैं, उनकेलिये "शशि की तरी" निश्चित रूप से उत्तरवर्ती कृतियों में सर्वश्रेष्ठ होगी । इस प्रकार इस रचना में उन्होंने "ग्रंथि" के स्तर से भिन्न स्नेह गीतों की सृष्टि की ।

---

1 शशि की तरी - पन्त, पृ.56
2. वही, पृ 72

3.8. समाधिता:-

1973 में प्रकाशित यह पन्तजी की नवीन कविताओं का संग्रह है। इसमें जीवन की गंभीर अनुभूतियों को अभिव्यक्ति दी है। युग जीवन के संघर्ष का यथातथ्य वर्णन इसमें प्राप्त होता है। ये रचनायें पन्तजी के काव्यजीवन में सर्वोपरी स्थान रखनेवाली हैं।

इस कृति के संबंध में पन्तजी ने स्वयं कहा है -

"समाधिता की कवितायें मेरी इधर की नयी रचनायें हैं। इनका धरातल अपने ही में जीवन की एक नवीन भूमिका है, अत: इन केलिये भूमिका की आवश्यकता नहीं जान पड़ती[1]।"

उनकी राय में जीवन में मनुष्य का ध्येय ईश्वरप्राप्ति है -

"व्यर्थ बिना जीवन के ईश्वर,
व्यर्थ बिना ईश्वर के जीवन,
कभी बन सकेगा जीवन ही
ईश्वर का भू-प्रतिनिधि पावन[2]!"

कवि की राय में जब वह ईश्वर के पास रहता है तब सभी सांसारिक विचारधारायें ओझल हो जाती हैं। जब वह जगत् पर लौट आता है तब नयी धरा पर वह अपना पैर रखता है। ईश्वर-स्पर्श की महिमा वह ऐसा गाता है -

---

1. समाधिता - पन्त, विज्ञापन, पृ.7
2. वही, पृ.49

"स्पर्श तुम्हारा अपरिहार्य, प्रिय,
खोले मर्म जगत् का जीवन,-
जगत् सत्य है, जगत् सत्य,
श्री शोभा मुख का शाश्वत दर्पण ![1]"

अधिकांश कविताओं में कवि ने ईश्वर का मनुजत्व निरूपित करते हुए उसे धरती के आँगन में उतारने का संकल्प बार-बार दुहराया है। निरपेक्ष ब्रह्म या ईश्वर की बजाय यहाँ कवि जीवन-ईश्वर को श्रेयमान बताता है

"जीवन-ईश्वर ध्येय मनुज का,-
यदि न ब्रह्म करता
विकास जीवन का
तो वह ब्रह्म नहीं,
भ्रम भर,-कहता मन ![2]"

धरती पर मानवीय स्वर्ग रचने केलिये हमें मनुष्य बनना होगा -

"तुम्हें सौंपता हूँ देवत्व
तुम्हारा गुरुवर,
मनुष्यत्व ही का कामी
मेरा नर जीवन ।[3]"

कुछ कविताओं में कवि "लोकायतन" की पद्धति पर भारत को विश्व के प्रतिनिधि और नेता के रूप में प्रस्तुत करता है -

---

1. समाधिता - पन्त, पृ.65
2. वही, पृ.49
3. वही, पृ.32

"वह न विश्व का अंग,
अंग उसका ही विश्व असंशय,—
भारत-भू पर ! बोध प्राप्त कर
बने लोग मृत्युंजय ![1]"

संग्रह की एक कविता "चेतना" को भी संबोधित है । एक अन्य कविता गर्भपात के वैधीकरण के विरोध में भी है । कहीं कहीं बहुत पहले की कविताओं की भी रहस्यभावना भी उभरी है -

"सौंदर्य तुम्हारा केन्द्रित हो
खिल उठता उर में बन सरसिज,
प्राणों के अलि भरते गुंजन
गीतों की लय बुनता मनसिज ![2]"

"गुंजन" में स्त्री के संबंध में उन्होंने गीत गाये उससे एकदम विरोधी भावना इस पद्य में दिखायी पड़ती है -

"स्त्री श्री-सुंदरता की प्रतीक
उसका अजेय उर आकर्षण,
स्त्री के प्रिय अंगों मे लिपटा
रहता विस्मृत-सा जन-यौवन !
स्त्री भले रूप की हो प्रतिनिधि,
पर मन से सुंदर ही सुंदर,

1· समाधिता - पन्त, पृ·37
2· वही, पृ·126

गूलर फल सा सौंदर्य बाह्य
स्थायी न हृदय में करता घर ।[1] "

कवि ने सरल जीवन और विचार की कामना की है -

"सरल सहज जीवन हो
उच्च विचारों का मन
नयी चेतना से दीपित हो
भू का जीवन ।[2] "

संग्रह की अंतिम कविता बांग्ला देश पर है । बांग्ला देश में पाकिस्तान के क्रूर और हिंस्र दमनचक्र का वर्णन करके कवि ने भारत के हस्तक्षेप और पाकिस्तानी सेना के आत्मसमर्पण का उल्लेख किया है तथा अंत में बांग्ला देश के नवीन मानवीय दायित्व की आख्या कर इस शुभकामना के साथ कविता को समाप्त किया है -

"निखिल विश्व तक विस्तृत हो
उसका मन: क्षितिज
जीवन ईश्वर के प्रति
पूर्ण समर्पित हो मन ।[3] "

---

1. समाधिता - पन्त, पृ॰74
2. वही, पृ॰89
3. वही, पृ॰176

3·9· आस्था

"समाधिता" के बाद लिखा हुआ एक काव्य संग्रह है "आस्था" । इसकी रचनाओं में भी युगजीवन का याथार्थ्य हम देख सकते हैं । ये मुख्यत: मानव केन्द्रित एवं धरा केन्द्रित हैं । इस युग में सभ्यता के विकास के साथ सांस्कृतिक ह्रास के चिह्न प्रकट हो रहे हैं । इसका कारण यह है कि विकास की दिशा एकांगी हो गयी है । आज का मनुष्य बाहरी वस्तुगत, मूल्यों को अधिक महत्व देता है लेकिन मनुष्य के आंतरिक मूल्यों के प्रति उसे ज़रा भी ध्यान नहीं । अपनी सर्वांगीण प्रगति के लिये उसे सभ्यता के वस्तुगत मूल्यों के साथ ही संस्कृति के आंतरिक मूल्यों को भी विकसित करना है । कुछ ऐसे ही सृजन मूल्यों से प्रेरित होकर कवि ने "आस्था" की रचनाओं को जन्म दिया है । मन की शुद्धता पर कवि ने ज्यादा ज़ोर दिया है -

"घर के आंगन के संग ही
मन का आंगन भी
शील स्वच्छ हो, सच्चरित्र हो,-
सुन्दरता का चरम शिखर हो,
मनुज हृदय में
ध्यान मौन स्थित !"[1]

ये रचनायें सांस्कृतिक, सामाजिक, युग-जीवन परिवेश संबंधी विश्लेषण की दृष्टि से प्रेरित होने के कारण अधिकतर अतुकांत छंदों में लिखी गयी हैं । धरती के जीवन एवं मन के अधिक निकट होने के कारण इन में आदर्श के साथ यथार्थ का भी चित्रण मिलता है ।

---

1 आस्था - पन्त, पृ·198

कवि ने धरती के युग को बदलने केलिये मानव को प्रेरणा दी है। असन्तोष, हृदयहीन सभ्यता, कृत्रिम बन्धन, स्पर्धा द्वेष, वर्ग स्वार्थ को समाप्त करने की प्रेरणा दी है जो मानव को घुटन दे रहे थे। मानव को संकेत करकवि ने कहा -

"उसके भीतर कटु अतृप्ति है
असंतोष है
बहिर्विभव की कमी नहीं यह
आत्म बोध का[1]।"

आगे कवि ने ऐसा कहा है -

"आत्मज्ञान के ओ दाताओ,
सम्मुख आओ,
मानव को मानव बनने की
शक्ति, सिद्धि दो[2]।"

कतिपय रचनाओं में कवि ने अपने बचपन के अद्भुत अनुभवों का चित्रण किया है तो कहीं कहीं उन्होंने गांधीजी के अवतरण की कामना की है -

"नारी को बंदिनी
बनाने का आशय है
पशु अधिकृत है किये
मनुज को अभी जगत में[3]।"

---

1. आस्था - पन्त, पृ.33
2. वही, पृ.33
3. वही, पृ.191

इस रचना का मुख्य उद्देश्य यह है कि इस आस्थाहीन युग में आस्था पैदा हो सके -

"आस्था का कर पकड़
चढ़ो अन्त: शिखरों पर,
नव शोभा गरिमा
विवृरित करने जन-भू पर ।
अर्पित कर भूमा को जीवन -
मनुष्यत्व के
गौरव वाहक बनो विश्व में,-
आत्मजयी बन ।"[1]

3·10· सत्यकाम

"सत्यकाम" पन्तजी का अक्तूबर 1975 में प्रकाशित एक प्रबन्ध-काव्य है । संपूर्ण गेय रचना ग्यारह उपखण्डों में विभाजित है । संपूर्ण आख्यान् जिज्ञासा, जाबाला, दीक्षा, मन का निर्जन, प्राण-ब्रह्म, साक्षात्कार, ब्रह्माग्नि, आत्मब्रह्म, जीवब्रह्म, गुरुकुल तथा मातृशक्ति शीर्षकों में गुँथा हुआ है । "कामायनी" के विचारकों ने उसके सर्ग शीर्षकों में मनोवैज्ञानिक क्रम को उपनिबद्ध माना है परन्तु इस रचना के शीर्ष-बिन्दुओं में 7,8,9 अर्थात् ब्रह्माग्नि, आत्मब्रह्म और जीवब्रह्म को छोड़कर कोई क्रम नहीं दिखाई देता । वस्तुत: जिज्ञासा, जाबाला और दीक्षा नामक तीन सर्ग सत्यकाम के जीवन कथ्य और उसके मन:संस्कार के परिचय की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हैं तथा अन्तिम गुरुकुल और मातृशक्ति शीर्षक सर्ग उसकी आध्यात्मिक उपलब्धियों के

1· आस्था - पन्त, पृ·89

बहिर्विकास तथा क्रियात्मक पक्ष के द्योतक हैं। शेष सर्ग मन का निर्जन, प्राण-ब्रह्म, साक्षात्कार, ब्रह्माग्नि, आत्मब्रह्म और जीवब्रह्म चेतना के ऊर्ध्वीकरण की प्रक्रिया के वे क्रमिक सोपान हैं जिससे धरती पर ही सत्यकाम जैसे साधारण व्यक्तित्व में भागवत् सत्ता का अवतरण हो सकता है। व्यक्ति के रूपान्तरण की क्रमिक साधना का विश्लेषण इन सर्गों में हुआ है। अन्तर्मन की सूक्ष्म भावभूमियों पर चेतना का संचरण किन-किन रूपों में होता है, इसी का चित्रण इन सर्गों में हुआ है -

"चलते चलते निज अन्तर्मुख मन की स्थिति में
उसे लगा, वह पार कर रहा हो संग ही संग
अंतर्मन की सूक्ष्म अनेकों भाव-भूमियाँ ।
विस्फारित नयनों की उसकी चकित दृष्टि में
बाह्य जगत् चेतनावरण पर बिम्बित लगता ।"[1]

4884 अतुकान्त किन्तु गतिमय लयबद्ध पंक्तियों में कवि ने प्रस्तुत काव्य का कलेवर निर्मित किया है। जहाँ तक कथास्रोत का प्रश्न है, स्वयं कवि ने विज्ञप्ति में कथाभाग के कृश पंजर को छान्दोग्य उपनिषद् पर आधारित माना है। छान्दोग्य उपनिषद् सामवेदीय तलवकार ब्राह्मण से संबंधित है। छान्दोग्य के समान केनोपनिषद् भी तलवकार कहलाता है। दार्शनिक दृष्टि से छान्दोग्य, केन तथा याज्ञवल्क्य कृत बृहदारण्यक को इस ग्रन्थ के मुख्य उपजीव्य-स्रोत समझना चाहिये।

"सत्यकाम्" मूलत: धरती के जीवन का काव्य है। सच्चे अध्यात्म की परिणति जैसा कि स्वामी विवेकानंद भी कहते हैं,

---

1 सत्यकाम - पन्त, पृ॰49-50

धरती के जीवन की संपन्नता एवं परिपूर्णता ही में होनी चाहिये[1]।
"सत्यकाम में साधना का सत्य तदाकार हो गये हैं। कथा भाग का कृश पंजर मुख्यत: छांदोग्य उपनिषद् से लिया गया है, जिसके अनुसार सत्यकाम निर्जन में वृष, अग्नि, हंस और मद्गु, चार देवों से भी दीक्षा लेता है। शेष कल्पना तथा अनुभूति प्रसूत है। मूलत: यह तापस की भावनाओं को वाणी देनेवाला बोध-काव्य है[2]।" नि:संदेह "सत्यकाम" में वैदिक औपनिषदिक सत्य धरती के आंचल को पाकर मूर्त हो उठा है। पन्तजी ने इस काव्य में औपनिषदिक पृष्ठभूमि की कसौटी ही में आधुनिक जीवन मूल्यों को आंकने का प्रयास किया है।

3·10·1· कथावस्तु जिज्ञासा

सत्यकाम प्रबन्धकाव्य का प्रथम सर्ग "जिज्ञासा" है। इस सर्ग का प्रारंभ अग्नि की वन्दना से हुआ है। "वैदिक युग का पूत वातावरण, ब्रह्मज्ञान की उपलब्धि, गन्धधूप से परिव्याप्त वायुमण्डल, गैरिक दिग्वसना संध्या के अवतरण का काल-कुल मिलाकर अवश्य समाधिस्थ प्रतीत होता है और मुनि ध्यानावस्थित। एक बोधि के वृक्ष के नीचे अन्त: केन्द्रित निर्निमिष दृष्टि उन्नत मस्तक, गूढ चिन्तन में रत, कोमल वयस - किशोर जाबाल एक प्रश्न की भांति खड़ा है। उसके मन में अज्ञात अभीप्साओं का अनवरत संघर्ष चल रहा था। गौतम ऋषि के आश्रम के साधक शिष्य तथा पवित्र वातावरण का सुन्दर चित्रण है। शिष्यों ने उसका गोत्र पूछ लिया। उसने जवाब दिया - गोत्र नहीं अब मुझे ज्ञात। माँ से पूछूँगा[3]।" शिष्यों के हास्य, व्यंग्य से अवमानित हतप्रभ जाबाल का मन कहता है कि मैं ने अब तक अपने

1· सत्यकाम - पन्त, विज्ञप्ति

2· वही

3· वही, पृ·75

पिता के बारे में क्यों नहीं पूछा । उसे माँ ने क्यों नहीं बताया, ऐसे ही उधेड़ बुन में उसके हृदय के भीतर सहसा ज्योति पुरुष प्रकट होकर कहता है, मैं हूँ । विचलित मत हो । फिर उसे विश्वास हो गया कि कल निश्चित रूप से गुरु उसे दीक्षा देंगे। सर्ग के अन्त में कवि का संकेत है -

"क्या सार्थकता ब्रह्मज्ञान की भू-जीवन में ? -
वही साध्य या भू जीवन के हित वर साधन ?
प्रश्न गूढ था ! शतियों के जीवन-अनुभव में
विकसित होना था भावी मानव अन्तर को !"[1]

3.10.2. जबाला

श्वेत ऊन के वस्त्र तथा शुभ्र कंचुकी चर्म को धारण किये सौम्य जबाला उपवन के नव गुल्म वीरुधों में जल दे रही है । माता जबाला ने जाबाल से प्रश्न किया गौतम ऋषि से दीक्षा लेने केलिये तुम समुत्सुक हो ? मैं ने अपने अनुभव का सार तुम्हें बतलाया है और यदि दीक्षा लेना आवश्यक समझो तो गुरु तुम्हारे ज्ञाननेत्र अवश्य उन्मीलित करेंगे । तुम निश्चित रूप से गुरु को मेरी बात सूचित कर देना कि "यौवन में ऋषि मुनियों की सेवा में तत्पर क्वारी कोख भरी कब उसको ध्यान नहीं अब । अन्तर्यामी ऋषि यह सुनकर निश्चित तुम को दीक्षा देंगे । माँ के वचनों को शिरोधार्य करके गुरुकुल की ओर वह चल पडा । अन्त में जबाला अपने पुत्र के कुशल क्षेम केलिए प्रार्थना करती है और कहती है -

---

1. सत्यकाम - पन्त, पृ. 18

"मुझे पूर्ण विश्वास, विविध साधना पथों से
कृच्छ्र तपस्या-फल अर्जित कर मेरा प्रिय सुत
लौटेगा माँ के अंचल में भ्रान्ति हीन हो,
अर्ध सत्य की पूर्ति मातृ मंदिर में करने ।"[1]

3·10·3· दीक्षा

आश्रम वातावरण का सुन्दर चित्रण हुआ है । जाबाल को आश्रम के जीवन-स्तर तथा दिनचर्या को समझते कुछ समय व्यतीत हो रहा था । एक दिन गौतम गुरु ने उनसे हँसकर प्रश्न किया - तुम कौन साध लेकर आये बटु ? सारे शिष्य मन ही मन अनुमान लगा रहा था कि जाबाल की गोत्रहीनता का परिचय पाकर गुरु उसे तुरन्त अस्वीकार कर देंगे । नतमस्तक होकर जाबाल ने उत्तर दिया, "गुरुवर मैं दीक्षा लेने आया चरणों पर दयाशीलता, महिमा से खिंच सहज देव की" । आगे अपना परिचय देते हुए जाबाल ने गुरु से कहा -

"पुत्र जबाला का, जाबाल मुझे कहते हैं,
गोत्र नहीं मैं जान सका माता से अपना ।"[2]

यह सुनकर गुरु गौतम ने "शान्ति" शान्ति"कहते हुए जाबाल पर स्नेहदृष्टि फेरी और कहा - बटुक, सत्यभाषी हो तुम, जो ब्राह्मण का गुण । तुम दीक्षा के अधिकारी हो । जाबाल गुरु के चरणों पर गिर पडा । गुरु ने उठाते हुए उस से कहा -

---

1· सत्यकाम - पन्त, पृ·31

2· वही, पृ·39

"उठो वत्स, तुम स्पष्ट सत्य वक्ता हो अब से
सत्यकाम हो नाम तुम्हारा। सदा सत्यव्रत,
सदा चरण रत रहो,-सत्यवादी तुम हो ही।[1]"

गुरु ने ब्रह्म के ज्ञान का बोध विविध प्रकार से उसे कराया। दस वर्ष की दीक्षा के बाद गुरु ने सत्यकाम को सौ गायें समर्पित कर कहा ब्रह्मसत्य साधन करो, तुम निर्जन में जा। गुरु की धरोहर सौ गायों को लेकर वह अपने मार्ग पर चल दिया।

3·10·4· मन का निर्जन

अपने अन्तरिक्ष तक फैले तृण श्यामल प्रसार में गायों को चरने केलिये छोड दिया। सरोवर के तट पर रहने केलिये उसे एक लतानिकुंज मिल गया। साधना के साथ उसे मालूम हो गया कि योग शक्ति से कुछ लोगों का उपकार संभव है, सामूहिक उन्नयन उससे नहीं हो सकता। उसे मानव की संपूर्ण उपलब्धियों को अतिक्रम कर जीवन की नयी वास्तविकता निर्मित करनी होगी। अन्त:शक्ति अपने में अधूरी है। अत: मानव के बहिरन्तर को संयोजित करना होगा। तप करते हुए उसे एक दशक व्यतीत हो गये, उसको ज्योतिर्मय सत्स्वरूप का स्पर्श प्राप्त हुआ। आत्मज्ञान से अधिक उसे अब जग जीवन का बोध प्रेरक लगता था -

"ऊर्ध्वचेतना सत्य, बाह्य जड द्रव्य उभय ही
महत् वास्तविकता भू-मानव के जीवन की,

---

1 सत्यकाम - पन्त, पृ·39

जन भू के कल्याण केलिये दोनों ही को
शनैः समन्वित करना होगा - सत्य महत् से
बने महत्तर, शिव शिवतर, सुन्दर सुन्दरतर[1] ।"

3.10.5. प्राण ब्रह्म

सत्यकाम के हृदय में अन्तःध्वनि हुई -

"लौट चलो प्रिय सत्यकाम, अब तुम गुरुकुल को !
एक सहस्र हुई गो, जो उपलब्धि तुम्हारी,
करो समर्पित आत्म सिद्धि आचार्य देव को[2] ।"

भू - जीवन के उन्नयन केलिये उसे यही श्रेयस्कर लगा -

"अभिव्यक्ति पा सके पूर्ण चैतन्य मनुज में
आध्यात्मिक, बौद्धिक, प्राणिक, भौतिक वैभव भू,-
देह प्राण मन आत्मा हों सर्वांग समन्वित[3] ।"

3.10.6. साक्षात्कार

गायों को एकत्रित करके वह गुरुकुल जाने को सोच रहा था । उसने सरसी तट पर एक सद्यःस्नाता निरुपम किशोरी युवती ऋचा को देख लिया । सत्यकाम के मन मे मानव जीवन की गरिमा के प्रति जो नयी

---

1. सत्यकाम - पन्त, पृ.65
2. वही, पृ.75-76
3. वही, पृ.90

उद्भावना जागृत थी, अब ऋचा उसकी अभिन्न अंग प्रतीत होती थी। गूढ समस्या उसके अन्तर को मथ रही थी कि जीवन का रथ ज्ञान-रश्मि से संचालित हो या भू-जीवन गति से ज्ञान अभिप्रेरित हो। ऋचा और सत्यकाम में परस्पर बातें हुई। ऋचा की माँ सब कुछ देख रही थी। उसे तापस के तप-भंग की आशंका होने लगी। उसने ऋचा की भर्त्सना की और शीघ्र ही विवाह कराने का निश्चय किया। दूसरे अवसर पर तपस्वी सत्यकाम जब ऋचा से मिलने केलिये वहाँ पहुँचा तो वह स्थल सूना पड़ा था। ऋचा का भेजा हुआ संदेश लेकर ऋभु (उसका भाई) वहाँ आया।

"तुम से पुन: मिलूँगी, कब, यह नहीं जानती !
हृदय समर्पित कर देने के बाद मुझे अब
छीन नहीं सकते ब्रह्मा भी तुमसे, प्रिय ऋषि।"[1]

सत्यकाम अपनी कुटी में आकर बार-बार प्रिय ऋचा के विषय में सोचता रहा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि ऋचा उसके बहिरन्तर जगत् में प्रवेश कर गयी है। उसे स्मरण आया कि अग्निदेव प्रकट होकर इस व्यथा ताप से उसे मुक्त कर सकें। वह गायों को आगे बढाता हुआ अनिश्चित मन से गौतम के आश्रम की ओर चल पडा।

3.10.7. ब्रह्माग्नि

सत्यकाम ने अग्निदेव की पूजा की। उसे मालूम हो गया कि सामाजिक सांस्कृतिक प्रगति के बिना, व्यक्ति भी विश्व रूप का तिरस्कार कर, ऊर्ध्व ब्रह्म में लय होना या रोहण करना आत्म-भ्रान्ति है -

---

1. 1. सत्यकाम - पन्त, पृ.120

"निःसंशय, प्रेम ही ब्रह्म है, वही शक्ति है,
वही सृष्टि पट, विश्व प्रकृति, स्रष्टा, ईश्वर है[1]।"

अन्त में सत्यकाम समझ सका कि ऋचा का रूप सौंदर्य भोग-दृष्टि, ज्ञान-ध्यान तथा तप को अतिक्रम कर सार्वभौम की ओर निरन्तर खींचकर, हृदय में नूतन भावोन्मेष तथा रस-प्रकाश देकर नयी सृजन प्रेरणा देता है । उसे बोध हो गया -

"प्रेम-ऋचा ही ब्रह्म ऋचा है, सृष्टि ऋचा है[2]।"

3·10·8· आत्मब्रह्म

सत्यकाम ने दूसरे दिन गुरुकुल को जाती हुई श्रान्त रंभाती गायों को रोककर सरिता के तट पर श्यामल-तृण चरने तथा विश्राम करने केलिये छोड दिया । उसने समिधाधान प्रदीप्त अग्नि के पार्श्व में बैठ, पंक्तिबद्ध आते हुए आदित्य-वर्ण-हंसों का कलरव सुना और उनकी कान्ति को देखता रहा । वह आनंद से पुलकित हो गया । सत्यकाम मन के मूल्यों की गांठ खोलकर, बहिरन्तर जीवन, व्यक्ति, विश्व, ईश्वर के ताने-बाने सुलझाकर भू-संस्कृति निर्माण केलिये प्रेरित हो उठता था । उसने अनुभव किया कि उनके अन्तर में, सूर्य का आलोक लिये, रूप के एक किरण में सज्जित, मूर्त प्रेम सी ऋचा उतर पडी है । ऋचा ने आँचल में लिपटे नव शिशु को सत्यकाम की गोदी में रख दिया और सत्यकाम से कहा अब मैं माँ हूँ मुझे आशीर्वाद दीजिये । सत्यकाम प्रस्तर प्रतिमा के समान बैठा रहा । कन्या को उठाकर व्यंग्य भरे तीखे स्वर में ऋचा बोली -

---

1· सत्यकाम - पन्त, पृ· 143
2· वही, पृ·144

"धिक् उस ईश्वर को जो जग जीवन से वंचित ।"[1]

सत्यकाम यह सुनकर आत्मग्लानि से चूर्ण हो गया ।

3·10·9· <u>जीवब्रह्म</u>

संध्या समय सत्यकाम ने अगले पड़ाव पर धेनुओं को रोक दिया । अग्नि प्रदीप्त कर वह शान्त भाव से बैठ गया । उसे विदित हो गया कि यह जड़ धरणी जीवन ही का कर्मक्षेत्र है और मन जीवन का बोध सचित है । - भू-जीवन घोर विरोधी शिविरों में खंडित है । उसे यह स्पष्ट मालूम होने लगा था कि -

"भौतिक आध्यात्मिक पथ अपने में दोनों ही,
एकांगी, नि:सार, अपूर्ण, व्यर्थ हैं निश्चय ।"[2]

सत्यकाम ने अपने अंतर में ऋचा की उपस्थिति अनुभव की और ऋचा उससे कह रही थी -

"एक बार जाने से पहिले, ध्यान दृष्टि से
जन-भू के आंगन का पुन: निरीक्षण कर लो,
मन के ईश्वर, आत्मा के ईश्वर के बदले
जीवन के ईश्वर को करना जहाँ प्रतिष्ठित ।"[3]

1· सत्यकाम - पन्त, पृ·166-167

2· वही, पृ·180

3· वही, पृ·185

3·10·10· गुरुकुल

सत्यकाम के गुरुकुल पहुँचने पर उसके मन में गुरु के दर्शन की उत्कट अभिलाषा थी । गुरु के चरणों पर गिरकर साष्टांग प्रणाम कर सहस्र गायों को सौंपा । ऋचा के आश्वासन के अनुसार उसकी दृष्टि आश्रम में ऋचा को खोज रही थी । गुरुवर उसके मनोभाव को समझ रहे थे । उन्होंने उससे कहा - "किस को खोज रहे हो वत्स, ऋचा को ? सत्यकाम ने समझा कि सुश्री ऋचा पहिले आकर गुरु से अपने आने का प्रयोजन बता चुकी है परिहास भरे स्वर में गुरु ने पुन: प्रश्न किया -

"कौन ऋचा ? कैसी ? वह कहाँ मिली थी तुम को ? -

xx xx xx

वत्स, योग माया थी वह, आश्चर्य मत करो ।"[1]

रहस्यमयी ऋचा का परिचय पाकर सत्यकाम को परम शान्ति मिली । गुरुकुल उसे शिक्षा - संस्थान सदृश लगता था जहाँ कुछ वरिष्ठ साधक अधिमन के उन्नत सोपानों पर आरोहण कर रहे थे; कुछ विज्ञान भूमियों पर सिद्धि प्राप्त कर रहे थे । इस प्रकार वहाँ विद्या के विविध विभाग थे । छात्रालय के साथ अध्ययन कुंजों का निर्माण हुआ था । कहीं मंत्रोच्चार के साथ यज्ञ हो रहा था, कहीं सन्यास तथा आत्मसिद्धि के साधक अपने कर्म में रत थे । सत्यकाम के आश्रम में आ जाने पर कुछ लोग उसे हास्या दृष्टि से देखते थे । सत्यकाम आश्रम से दूर जाकर चुपके से तपस्या में रत रहने लगा । सत्यकाम ने विचार किया - मानव के मन को जागृत कर

1· सत्यकाम - पन्त, पृ·197

महान् कर्म का जन्म धरा पर देना होगा और लोक कर्म ही वह महत् कर्म है । उसे यह बोध हो गया कि -

"बिना कर्म के ज्ञान शुष्क नीरस मरुस्थलवत्

xx xx xx

बिना कर्म के भक्ति मात्र मृगतृष्णा भर है,

xx xx xx

कर्म हीन हो मनुज-समाज न उन्नति करता,

वह अभाव में रहता, प्रभु महिमा से वंचित ।"[1]

सत्यकाम को माँ की याद आयी । उसने माँ के दर्शनार्थ गुरु गौतम से आज्ञा मांगी । गुरु ने उसे आशीर्वाद देकर आदेश दिया -

"जाओ, माँ के दर्शन कर तुम नवजीवन में

करो प्रवेश, स्वर्ग-तोरण जो भू-यथार्थ का !

वहाँ सत्य को सृष्टि कर्म में देख सकोगे ।

पूर्ण बन सकोगे नित नव अनुभव - समृद्ध हो ।

मैं भी वहाँ मिलूँगा तुम्हें, न विस्मित हो तुम ?"[2]

3·10·11· मातृशक्ति

सत्यकाम माता की कुटी में गया और उसके चरणों में माथा टेक दिया । उसने देखा कि विश्वप्रकृति ही उसकी माँ बनकर मनोजगत् में लेटी हुई है, शस्य श्यामला भू उसकी माँ ही है । उसने देखा कि

---

1 सत्यकाम - पन्त, पृ·209

2· वही, पृ·210

वह अनन्त ऐश्वर्यमयी माँ निज सौंदर्य स्पर्श से जन-जन को प्रेरित कर रही है उसे अन्तर्नभ की वाणी स्मरण हो आई -

"मातृशक्ति मेरी ही शक्ति, वही मैं निश्चय,
विश्व कर्म मेरा हृत्स्पंदन, महाप्राण नर
उसका अधिकारी हो सकता लोक-धरा पर ![1]"

माता ने उसको आशीर्वाद दिया । माता के प्रेम के सामने वह योगसाधना का सारा अनुभव भूल गया । माँ जबाला ने सरल ऋता को अपने पास बुलाकर सत्यकाम के हाथ में उसका हाथ देकर, दोनों को आशीर्वाद देकर कहा "मेरी अंतिम साध अब पूर्ण होती अब[2] ।" ऋषिवर का अपनी कुटी में देखकर पुनः उसने कहा - "ओ जाबाल, प्रणाम करो निज पूज्य पिता को । गुरु ही तो वास्तव में जीवन दाता होता[3] । ऋषिवर ने भी उसे आशीर्वाद दिया । ऋचा को ऋता में देखकर और उसमें ऋचा के समान ही सब कुछ पाकर सत्यकाम विस्मित हो गया । सत्यकाम की माँ ने अपना सब कुछ पाकर और देखकर अभिलषित मृत्यु का वरण किया सत्यकाम सोचता रहा "माँ मरी, जी उठी[4] ।" उस कथ्य के साथ प्रबन्ध काव्य समाप्त हो जाता है ।

3·10·12· "सत्यकाम" की विशेषतायें

"सत्यकाम" का कथाभाग अत्यन्त क्षीण है । इसमें कवि ने 20 वर्ष की घटनाओं का उल्लेख किया है । सत्यकाम की दीक्षा के समय

1· सत्यकाम - पन्त, पृ·219
2· वही, पृ·222
3· वही, पृ·222
4· वही, पृ·238

वय अठाईस वर्ष रही होगी । अत: एक निश्चित अवधि की घटनाओं का परिचायक होने के कारण इसे समग्र जीवन का द्योतक महाकाव्य नहीं कहा जा सकता । इस काव्य की कथात्मक विशेषता यह है कि घटनाओं और पात्र की मन:स्थिति का विश्लेषण कवि एक साथ करता हुआ चलता है । प्रस्तुत काव्य की सारी घटनावली पात्र के चरित्र को उभारनेवाली है । प्रस्तुत कथानक में बीस वर्षों का अन्तराल नाटकीय त्वरा के साथ बीतता हुआ दिखाया जाता है । कवि ने मातृशक्ति खण्ड में इसे बीस वर्ष की साधना है ।[1] मुख्य घटना व्यापार कान्तार खण्ड में घटित होता है अत: घटनाओं से संबंधित पात्र विशेष की प्रतिक्रियाओं का विश्लेषणपूर्वक संचयन कवि ने किया है । यदि इस काव्य को नाट्य रूप दिया जाय तो इसमें नाटक के तत्व भी विद्यमान है ।

"कामायनी" के मनु को मनस्तत्व का प्रतीक मानकर विद्वानों ने जिस चेतना-विश्लेषण की बात कही है, वह अधूरी है क्योंकि मनस्तत्व के विविध सोपानों का क्रमिक विश्लेषण वहाँ नहीं मिलता । पन्तजी ने सत्यकाम में मनस्तत्व की व्याख्या क्रमिक रूप से की है । इस प्रकार छान्दोग्य उपनिषद् और बृहदारण्यक में केवल मनस्तत्व के विश्लेषक आचार्य के रूप में ही उसका मुख्यत: उल्लेख है । जाबाल की अवैध संतान के रूप में उसका कथन हुआ है तथा मानवेतर प्राणियों से उसके शिक्षा ग्रहण की कथा के अतिरिक्त छान्दोग्य में सत्यकाम संबंधी और कोई महत्वपूर्ण तथ्य नहीं मिलता । इस कथा को अधिक सरस और स्वाभाविक बनाने केलिये पन्तजी ने मूलकथा में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये हैं ।

---

1. सत्यकाम - पन्त, पृ.214

सत्यकाम के व्यक्तित्व को समझने केलिये आरण्यक बोध से लेकर आधुनिक बोध तक की स्थितियों का पर्याप्त ज्ञान होना आवश्यक जान पड़ता है । पन्तजी ने इसस्थिति को इस प्रकार स्पष्ट किया है -

"समझ रहा था वह विधान को विश्व प्रकृति के
मनुज वृत्तियों को जो विकसित, रस संस्कृत कर,
सूक्ष्म मनोभावों, रूपों में, सौंदर्य में
बाह्य सत्य की अभिव्यक्ति करने का क्रमशः
यत्न कर रही थी समग्र जीवन के स्तर पर ।"[1]

सत्यकाम भावुक और दार्शनिक परिवेश के व्यक्ति की मनःस्थिति का भी प्रतिनिधि है । "मनु" की आक्रामक और उद्दाम अनियंत्रित भोगवृत्ति तथा पुरुरवा की आभिजात्य दार्शनिक भीरुता के बीच से सत्यकाम का जन्म हुआ है । सत्यकाम में प्रारंभ से ही झिझक है, नारी के प्रति ग्रन्थि है, नग्न निर्वसन देह और मन की भूख उसमें दुर्दम नहीं है, वह जीवन का समाधान खोजना चाहता है । पन्त के आभिजात्य संस्कार इसका समाधान गुरुकुलीय परिवेश में खोजते हैं । यह प्रतिक्रिया यान्त्रिक सभ्यता के विरुद्ध है क्योंकि उस व्यवस्था में राष्ट्रकी कला, मेधा - शक्ति तथा अर्थशक्ति महानगरों में केन्द्रित हो जाती हैं ।

पन्तजी ने "सत्यकाम" में आश्रम व्यवस्था का पुनरुद्धार किया । बाह्य परिवेश तथा आत्मनिष्ठ उदात्त सौंदर्य-बोध के संयोजन से समस्त मानव जाति के अन्तर्विरोधों को दूर करने का उपक्रम यहाँ हुआ । परम्परित जीवन-दर्शन एवं साहित्यिक दृष्टियों की तुलना में पन्तजी की

1· सत्यकाम - पन्त, पृ·134

कल्पना सर्वथा मौलिक है । आश्रम और आश्रम से बाहर प्रकृति के कान्तार खण्डों में सत्यकाम जीवन की हर समस्या का समाधान ढूँढता है तथा गुरुकुलीन परिवेश से नवमानवतावादी संस्कार लेकर सुसंस्कृत होकर लौटता है । व्यक्तित्व के सर्वतोमुखी विकास की यह मनोरम झांकी "सत्यकाम" में मिलती है "सत्यकाम" में जातीय विवेक, परम्परित दृष्टिकोण तथा आभिजात्य अनुभवों का संस्कार कर दिया गया है । साहित्य में आत्मप्रतिष्ठा, मुक्ति-कामना तथा व्यक्तित्व बोध मानववाद के आवेग के रूप में उत्पन्न हुआ ।

आधुनिक जीवन संदर्भ में इस उपनिषद् का एक महत्व यह है कि इसमें वर्णित नारद के अशान्त मन से आधुनिक मानव तदाकार हो जाता है । सभी विद्याओं से सिद्धहस्त नारद शान्ति पाने केलिये व्याकुल है। नारद की यह अशान्ति भूमवाद में नैपुण्य प्राप्तकर लेने पर भी अनात्मज्ञ होने के कारण है । सर्वविज्ञान रूप साधनों की शक्ति से संपन्न होने पर भी उत्तमकुल, विद्या, आचार और सामाजिक सामर्थ्य होने पर भी नारदजी का शोकाकुल होना, आधुनिक ज्ञान-विज्ञानपूर्ण वैज्ञानिक प्रकर्ष को पहुँचे हुए मानवके चिर अशान्त रहने की स्थिति का द्योतक है । उपनिषद्कार इसका कारण नारद का अध्यात्म विद्या के रहस्य से अपरिचित होना मानता है ।

सत्यकाम अवैध सन्तान होने पर भी हीन भावना से ग्रस्त नहीं है । वह स्पष्ट वक्ता है । अपनी सत्यवादिता, सेवा और तपस्या से एक जारज सन्तान के प्रतिनिर्मित सामाजिक धारणा में परिवर्तन करा देता है । वर्णव्यवस्था, काम और क्षुधा की वर्जनाओं में जकडे हुए समाज के परम्परित रूप के प्रति आक्रोश और विद्रोह उत्पन्न करने केलिये ही छान्दोग्य के उक्त तीन उपाख्यान आधुनिक संदर्भ में नई अर्थवत्ता प्राप्त करते हैं ।

पन्तजी ने वर्णव्यवस्था हीन समाज और काम क्षुधाग्रस्त मानव के सहज मुक्ति आन्दोलन की उपकथाओं के कथ्य को संयोजितकर सत्यकाम की रचना की है । अतः सत्यकाम आरण्यक पृष्ठभूमि पर आधारित आधुनिक बोध-काव्य कहा जायेगा ।

"जीवब्रह्म" खण्ड में तो कैलश शैली में आदिमयुग की प्रवृत्तियों से लेकर गाँधीयुग तक की वैज्ञानिक मानवीय प्रगति का चित्रण भी मिलता है । ऋचा के साथ उनके परिचय की कथा मात्र मानसिक भ्रम है, कवि ने नाटकीय कौशल से इसका उद्घाटन गौतम द्वारा कराया है -

"कौन ऋचा ? कैसी ? वह कहाँ मिली थी तुम को ?
ऋषि ने प्रश्न किया परिहास भरे स्वर में फिर ! "[1]

विवाह संस्था की सामाजिक स्वीकृति ही दूसरे शब्दों में इस नाटकीय काव्य का मुख्य फल है । सत्यकाम के हाथ में ऋचा को सौंपती हुई सत्यकाम की वृद्धा माँ यह कहती है -

"पुत्र, ऋता तुम दोनों मिलकर जीवन रथ के
युगल चक्र-से साथ रहो नित ! करुणामय प्रभु
सफल बनायेंगे संयुक्त तुम्हारा जीवन !
xx xx xx
निष्कंटक हो मार्ग तुम्हारा ! विश्व यज्ञ प्रति
अर्पित हो संयुक्त तुम्हारा जीवन प्रतिक्षण !
सुखी रहो तुम ।"[2]

गृहस्थ का समर्थन करते हुए इस अवसर पर गौतम भी कहते हैं -

"साथ ऋता को आशीर्वाद दिया - जीवन हो
सफल तुम्हारा ! सृष्टि चक्र में पड़कर अब तुम
पूर्णरूप से ब्रह्म सत्य चरितार्थ कर सको[1] ।"

गौतम का इस अवसर पर पधारना पाठक केलिये सुखद आश्चर्य उत्पन्न करता है, वस्तुत: जीवन भी जिस संरक्षण और स्नेह की भूख जबाला को व्याकुल करती रही, आज उसकी परितृप्ति हुई । यहाँ ऋषिवर केलिये "तुम" शब्द का प्रयोग जबाला के मानसिक नैकट्य को ध्वनित करने केलिये ही कवि ने किया है । जाबाल को प्रथम बार पूज्य पिता के रूप में माँ के समक्ष किसी पुरुष व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त हुआ है ।

सत्यकाम के विवाह की यह उपलब्धि विवाह संस्था की सर्वमान्य स्वीकृति के रूप में ही कवि को अभीष्ट है, माँ के द्वारा कर में दिये जाने की प्रक्रिया का सामाजिक मूल्य है और पाणिग्रहण की वह परिपाटी है जिसमें दो परिस्थितियों और इच्छाशक्तियों के द्वन्द्व का शमन होता है । जबाला की इच्छामृत्यु के समय में भी ऐसा अवसर आता है -

"सरल ऋता को अपने पास बुलाकर मा ने
सत्यकाम के कर में उसका मृदु कर देकर
आशीर्वाद दिया दोनों को, - गद्गद् स्वर में
बोली, "मेरी अन्तिम साध पूर्ण होती अब[2] ।"

---

1 सत्यकाम - पन्त, पृ॰223

2॰ वही, पृ॰222

दाम्पत्य जीवन सन्तानोत्पत्ति केलिये है या आनंदधर्मिता केलिये ? इसके उत्तर धर्मशास्त्र ने दिये हैं । आपस्तम्ब धर्मसूत्र ने इन दोनों को विवाह का उद्देश्य कहा है ।

जीवन की सार्थकता और निरर्थकता का प्रश्न भी इस काव्य का द्वन्द्व बिन्दु है । "साक्षात्कार" और "आत्मब्रह्म" खण्डों में इस बिन्दु को बडा गहरा उठाया गया है । पन्तजी की सफलता दिनकर से इस बात में अधिक है कि उनका सत्यकाम अतृप्त पुरुरवा की तरह दुःखद मनःस्थिति में पलायन नहीं करता । सत्यकाम अवैध सन्तान होने के कारण द्वन्द्व और अतृप्ति में हीन भावना के कारण अनिवार्य जीवन-विरक्ति का अनुभव अधिक कर सकता था पर जबाला की स्पष्टवादिता तथा सत्यवादिता से उसका सन्ताप बहुत कम हो जाता है और चेतना के स्तर पर वह स्वयं उस मादन भाव, ईर्ष्या, घृणा और कडुवाहट की प्रखरता को भोगता है । अतः संस्कृत जीवन की यात्रा में पुरुरवा का संचरण मात्र जैविक है और सत्यकाम का जैविक आध्यात्मिक ।

इस महाकाव्य में पन्तजी ने काम-अध्यात्म को मनोविश्लेषणवाद और अरविन्द के ऊर्ध्वचेतनावाद से संपृक्तकर एक वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित करते हैं । काम परिष्कार का दृष्टिकोण भी उन्होंने आनुभविक अध्ययन के आधार पर ही संगत माना है । समाज-मनोविज्ञान में सामूहिक मन और सामूहिक चेतना की परिकल्पना का आधार अब अस्वीकार्य हो गया है ।

प्रकृति और मनुष्य में विश्वात्मा के साक्षात्कार की धारणा गांधी और अरविन्द की समन्वित धारणा का फल है । "सत्यकाम" इसी समन्वित भागवत धारणा का काव्य है और इसकी अर्थवत्ता आज भी है,

वर्तमान की विसंगतियों में मूल्यवान भी है । "सत्यकाम" युग स्थिति के अनुरूप कर्ममूलक जीवन का समर्थन करता है अत: इसकी सार्थकता स्वयं प्रमाणित हो जाती है । विज्ञान, राजनीति, तकनीकी ज्ञान, अन्तर्राष्ट्रीयता तथा सामाजिक संस्थागत प्रवृत्तियों का निरूपण यहाँ हुआ है और इस दृष्टि से यह नवीन मूल्य बोध से संपृक्त है । सामाजिक रूढियों के प्रति आदर्शोन्मुख विद्रोह के स्वर भी इस रचना में मिलते हैं । प्रणय तथा काम के मूल बिन्दु पर अनेक अन्तर्द्वन्द्वों की सृष्टि होने से यह काव्य मर्मस्पर्शी बन पड़ा है । इस प्रकार पन्तजी का "सत्यकाम" उपनिषद्काल के छोर पर खड़ा होकर आधुनिकतम युग के दर्शन कर रहा है, अत: बौद्धिक चिन्तन का यह एक श्रेष्ठतम रसात्मक काव्य है ।

3·11· गीत-अगीत

इसमें गेय और अगेय कवितायें हैं । बीमारी के कारण उनका तटस्थमन लगातार बाह्य जीवन की परिक्रमा में संलग्न रहता था । युग-परिस्थितियों से प्रेरित होकर लिखी गयी कवितायें होने के कारण इसमें एक प्रकार का युग-वैषम्य हम देख सकते हैं ।

इस कृति के संबंध में स्वयं कवि का मत है - प्रस्तुत संग्रह की रचनायें आज के संक्रांतियुग की परिस्थितियों से प्रेरित होकर लिखी गयी हैं । उनके भावबोध में एक प्रकार के युग-वैषम्य को अभिव्यक्ति मिली है[1] ।"

1· गीत-अगीत - पन्त, दो शब्द

इनकी कविताओं को क्रम की निरन्तरता के साथ कवि ने "गीत-अगीत" शीर्षकों में व्यवस्थित किया है । पहले सर्ग में साठ और दूसरे में इकतीस रचनायें हैं । सभी कवितायें शीर्षक रहित हैं ।

गीतवर्ग की प्राय: सभी रचनायें कवि की आशावादी समन्वया दृष्टि, मानव संस्कृति और चेतना के प्रति आस्था की अभिव्यक्ति है । इनके कथ्य का मूल स्वर भौतिक चिन्तन के माध्यम से ईश्वर चिंतन के रूप में है । सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विसंगति और वैषम्य की परिस्थिति कवि को मानव संस्कृति और चेतना पर दृढ विश्वास रहा है । इसलिये वह भूजीवन को स्वर्णिम जीवन में ढालने का संकल्प सदा संजोये रहा है । विचार के धरातल पर उसने भौतिक सुख समृद्धि का समर्थन किया है।

गीत 55 में कवि ने माँ सरस्वती से सुख समृद्धि या यश की कामना नहीं की । वरन् भू जीवन की करुण दशा को देखकर लोकसेवा का वरदान माँगा है । उन्होंने भौतिक जीवन की समस्याओं का समाधान अन्तर्जगत् के संस्कार द्वारा ही संभव बताया है -

"दृष्टि मोड़नी मानव की
बाहर से भीतर
वस्तु विभव से भाव विभव में
उर केन्द्रित कर ।"[1]

इसका प्रधान कारण कवि को जगत् में व्याप्त बुद्धि का अतिवाद लगा होगा ।

---

1. गीत - अगीत, पन्त, पृ.18

अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष का स्वागत करते हुए कवि ने लिखा है -

"अन्तर्राष्ट्रीय महिला दशक,
तुम्हारा स्वागत,
स्त्री-स्वतंत्रता जन श्रेणी की
नव अभ्यागत !
- - - - -
उसके बिना अधूरा ही था
जग का जीवन
मानव गरिमा -स्त्री युग के संग
करे पदार्पण ।"[1]

इस तरह दहेज प्रथा की विभीषिका का वर्णन उन्होंने किया है

"दहेज़ प्रथा
पुरानी कथा,
माँ-बाप की व्यथा !
अब तो आइ-ए-एस
इंजीनियर, डाक्टर,
प्रोफेसर, एडवोकेट तक
मृत्यु हो गया निश्चित !
तिलक स्थल,
कमी न किंचित्[2] ।"

---

1. गीत - अगीत - पन्त, पृ.40- 41
2. वही, पृ.167

इस संग्रह के कई गीतों में कवि के वार्द्धक्यजन्य विषाद की अभिव्यक्ति हुई है -

"वृद्ध हो रहा हूँ मैं प्रतिक्षण ।
मुझे खेद अति, रोग-शोक से
ग्रस्त आज मेरा मानव-तन !
अर्धशती तक कर संघर्षण
रहा जूझता अनथक जीवन,
मातृहीन पशु, मिला न मन को
मातृ स्नेह का तन्मय पोषण ।"[1]

जगत् की दु:स्थिति देखकर कवि का मन विषण्ण हो जाता दुनियाँ में सब कहीं हिंसा - प्रतिहिंसा ताण्डव नृत्य करती है । मनुष्य भूल गया है -

"भय संशय से
ग्रस्त, अनास्था कुंठित
मानव भूल गया है -
नर-चरित्र की गरिमा को,
कृमि तुल्य रेंगता
वह विलास कर्दम में,
विभव भोग स्पर्धारत ।"[2]

---

1. गीत - अगीत - पन्त, पृ.48

2. वही, पृ.100

कुमार्गों से पैसा कमानेवाले अधोलोक के राजाओं की हँसी उडाते हुए कवि ने कहा है -

"दुश्चरित्र तस्कर वह
काला धन संचय कर
शोषित गौर नर कीर्ति
कलंकित करता प्रतिक्षण ।
नारकीय शक्तियाँ
प्रशासित करतीं भू-उर,
विश्व ध्वंस के लिये
आज कटिबद्ध मनुज - मन[1] !"

जग-जीवन की नश्वरता और निरर्थकता की ओर कवि ने संकेत किया है -

"संभव, अब थोडे ही दिन
रहना हो जग में -
मन में जग से पृथक,
परे जग-जीवन से स्थित,
देख रहा हूँ - व्यर्थ
भटक नर गया जगत् के
कटु कर्दम में -
हाथी डूब गया दलदल में[2] ।"

---

1 गीत - अगीत - पन्त, पृ・100
2・ वही, पृ・110

मनुष्य इस दुनिया के चार दिन के मेहमान हैं। जब वह अवधि पूरी हो जायेगी तब इस पथ से हटकर उसे जाना पड़ेगा -

"मानव केवल यात्री रे
जन-भू के पथ पर,
उसको सदा नहीं रहना
अनगढ़ पृथ्वी पर !
उसका गृह अन्यत्र,
मुक्त आत्मा की भू पर ![1]"

"परिवार नियोजन" के प्रति पन्तजी की राय ऐसी है -

"बच्चों को मत जन्म दो !
x x x x x
भू के जीवन को सँवार कर
सृजनशक्ति का तुम प्रमाण दो ![2]"

पन्तजी जीवन के सभी कार्यों में संतुलन चाहते थे। "अति" के विरोधी थे -

"कीड़ों से रेंगते धरा जन
तन से निर्धन, मन से निर्धन !
धिक् अति प्रजनन, धिक् अति चिन्तन,
धिक् अतिधन, जो करता शोषण,
अति अतिशय वर्जित, मानव को
जीवन में चाहिये सन्तुलन[3]।"

---

1. गीत-अगीत - पन्त, पृ.111
2. वही, पृ.28
3. वही, पृ.30

भोले - भाले शिशुओं में पन्तजी ईश्वर के दर्शन पाते हैं । शिशुओं के आनन स्वर्ग की प्रतिछाया है । सूर्य, चन्द्र और तारे उनके पदरज के समान है ।" [1] शिशु के बिना वे इस संसार को शून्य मानते हैं -

"शिशु ईश्वर के प्रतिनिधि पावन,
उनके सम्मुख नत मेरा मन
वे अज्ञात भविष्य पथिक रे,
शिशु से रहित व्यर्थ सूना भव !" [2]

धरा के बडे बडे संपन्न देशों का अस्त्र-शस्त्र- निर्माण और युद्धोन्माद के प्रति कवि ने ऐसा उपदेश दिया है -

"संकट मत लाओ जन-भू पर !
ओ संपन्न धरा के देशो,
शपथ करो जन-भू-रज छूकर !
तुम युग के भस्मासुर बनकर
ध्वंस करो मत जग को सुन्दर,-
तुम भी रह न सकोगे शेष,
रहेगा बस आक्रोश भयंकर ।" [3]

कवि मनुष्य प्रेमी को भावि ईश्वर मानता है -

---

1 गीत-अगीत - पन्त, पृ.63

2. वही, पृ.65

3. वही, पृ.87

"मनुज प्रेम ही भावी ईश्वर,
कर्म करो भू-हित श्रेयस्कर,
मनुजों की धर देह, धरा पर
देव विचरने को अविनश्वर ।"[1]

कालाबाजारी और जनजीवन में नैतिक मूल्यों का ह्रास देखकर कवि अशान्त हो जाता है -

"काला बाज़ार, काला बाज़ार
पत्रों में छपते -
रात-दिन समाचार !
पाशविक बलात्कार
सामूहिक संहार !
कहाँ गया चरित्र ?
साथी या मित्र?
स्वार्थरत संसार,
भ्रष्टाचार, दुराचार !-
काला धन, काला मन,
काला जीवन, यौवन !
दूषित अन्न खाद्यान्न
दूषित जल पवमान !
रुग्ण देह-मन-प्राण !!"[2]

---

1. गीत - अगीत - पन्त, पृ.88
2. वही, पृ.152

कवि गरीबी को अमीरी से श्रेष्ठ मानता है । अमीर अपने दाव-पेंचों से आगे जाते हैं । लेकिन गरीब अपने श्रमबल से आगे जाते हैं -

"गरीबी न हटाओ
न हटाओ !
वह अमीरी से अच्छी
राजनीति - सी झूठी नहीं
श्रम-तप-सी सच्ची ।
किसके बल रहता अमीर ?
उस के पास
दावों के तरकस
पेंचों के तीर !
किसके बल रहता गरीब ?
उसे श्रमबल की
ढाल ही नसीब ।"[1]

कवि नारी जीवन और उसके कल्याण की कामना हमेशा करता है । अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के संबंध में कवि ने ऐसा गाया है -

"अन्तर्राष्ट्रीय महिला दशक,
तुम्हारा स्वागत,
स्त्री स्वतंत्रता जन धरणी की
नव अभ्यागत !
xx xx
युग-युग की बन्दिनी
जगत गति से हो परिचित

---

1. गीत-अगीत - पन्त, पृ.40

स्त्री नर के भावों के
विनिमय से उर शिक्षित !
उसके बिना अधूरा ही था
जग का जीवन,
मानव गरिमा स्त्री-युग के संग
करे पदार्पण ![1]"

वायु प्रदूषण की समस्या को कवि ने अपनी कविता का विषय बनाया है -

"दूषित वायु, दूषित जल,
कैसे हो जीवन मंगल ?
क्षीण आयु, क्षुब्ध पल
कैसे हो जन्म सफल[2] ।"

इस काव्य की रचनाओं से ऐसा मालूम होता है कि आपातकालीन वातावरण के धुंआधार प्रचार के कारण ये समस्यें कवि के मन में प्रतिध्वनित हुई हों । कवि की मान्यता है कि भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति केवल अमीरों केलिये ही आवश्यक नहीं है, बल्कि ये सभी केलिये सुलभ होनी चाहिये ।

दर्शन के क्षेत्र में कवि ने भारतीय चिन्तन की नई दिशा दी है । वह शंकर दर्शन के जगन्मिथ्या की उपेक्षा कर भू जीवन के सत्य की प्रतिष्ठा करता है । वह कहता है -

---

1· गीत-अगीत - पन्त, पृ·40

2· वही, पृ·145

"ओ विरक्त मन
इन्द्रियचारी बन !
इन्द्रिय-पथ से ही सुलभ
ईश्वर - दर्शन ।
मन
तू इन्द्रिय विहारी बन ।"[1]

वास्तव में इन्द्रियाँ ही भौतिक सुख, कलात्मक उन्नति, आध्यात्मिक विकास की सोपान हैं । वे ही लक्ष्य की ऊँचाई का आभास कराती है ।

इस संग्रह की कुछ ही ऐसी रचनायें हैं जो आज की कविता की कसौटी पर खरी उतर सकेगी । क्योंकि कवि भौतिक जीवन की इस अभाव ग्रस्तता का मूलकारण नैतिक मूल्यों का ह्रास ही मानता है, व्यवस्था और सत्ता को नहीं । अत: उसकी दृष्टि में इस विषमता का समाधान बाह्य जगत् में नहीं मिल सकता । यह सच है कि पन्त की काव्य-यात्रा प्रकृति, प्रेम, नरजीवन, भू जीवन के सोपानों से अन्त: चैतन्य को साथ लिये हुए अन्त में आत्मा की गहराई में विलय हो गयी है । अत: उन्होंने भौतिक जीवन की समस्याओं का समाधान अन्त:जगत्, के संस्कार द्वारा ही संभव बताया है -

"दृष्टि मोड़नी मानव की
बाहर से भीतर,
वस्तु विभव से भाव विभव में
उर केन्द्रित कर ।"[2]

---

1 गीत-अगीत - पन्त, पृ॰164

2॰ वही, पृ॰18

इसका मुख्य कारण कवि को जगत् में व्याप्त बुद्धि का अतिवाद लगा होगा ।

कवि कभी भी निराशावादी नहीं है । आस्था का स्वर इन कविताओं में सर्वत्र मिलेगा –

"मृत्यु स्वर्ण कुंजी, नव जीवन द्वार के लिये[1] ।"

xx xx xx

"हम शाश्वत के बीज, हमें जग में किसका डर[2] ।"

xx xx xx

"विरक्त मत हो, जीवन अनुरक्त बनो
न निराश हो, न विभक्त बनो[3] ।"

यद्यपि पन्त कोमलकान्त पदावली के प्रसिद्ध कवि रहे हैं परन्तु समीक्ष्य संग्रह की रचनाओं में दर्शन चाहे जितना ऊँचा हो, कवित्व प्रभावी नहीं बन पाया है । इनमें न तो सम्यक् बिम्बविधान है न मन मस्तिष्क को प्रभावित करनेवाली जीवन प्रक्रिया की अभिव्यक्ति। कई दशकों से पन्त काव्य में प्राय: प्रयुक्त होनेवाले शब्द "सृजन", "बहिरन्तर समता", "नवजीवन", "चेतना", "कल्पना", "चित्" या "सत्य" शिवं सुन्दरम्" बार बार प्रयुक्त हुए हैं । रचनाओं में भावों की अनेक बार आवृत्ति हुई है । उनमें कवि के वृद्ध जीवन की उपदेशात्मक चाहिये वृत्ति की गूँज तो है । निश्छल मन की सरलता, सहजता भी है पर कलात्मक दृष्टि से ये रचनायें श्रेष्ठ नहीं कही जा सकतीं । महान सिद्धांत पद्यबद्ध होकर भी श्रेष्ठ कविता नहीं हो सकती

---

1 गीत-अगीत - पंत, पृ. 11।
2. वही, पृ. 60
3. वही पृ. 133

इस संग्रह की रचनायें चिन्तन और दर्शन की रचनायें हैं हृदय की नहीं । इन में पन्त की दृष्टि कथ्य पर है, सामाजिक उपयोगिता, मूल्यवादिता अथवा सिद्धान्त कथन की प्रधानता है ।

3·12· संक्रांति

इस संग्रह की रचनायें 24·3·1977 से 7·4·1977 के बीच लिखी गयी हैं । इन रचनाओं की प्रेरणा कवि को सन् 1977 के चुनाव से मिली है । कवि की राय में लोगों ने युग प्रबुद्ध होकर मनोनुकूल राजनीतिक निर्णय ले लिया है । इस घटना को पन्तजी ने अपने देश ही की नहीं, विश्व इतिहास की एक महान घटना मान ली है -

"यह निर्वाचन नहीं,
नये युग का आवाहन !
धन्य हे भारत के जन !
तुम ने प्रस्तुत किया निदर्शन
आज विश्व के सम्मुख
नि:स्वर लोक क्रांति का नूतन !"[1]

कवि ने इस चुनाव को एक शांतिपूर्ण रक्तहीन क्रांति और राज्य परिवर्तन का साधन मान लिया है -

"शाँति ! शाँति !
यह रक्त हीन जन क्राँति !

1· संक्रांति - पन्त, पृ·9

अहिंसक युग, संक्रांति !
शाँति ! शाँति ![1]

"ग्राम्या" में मैं ने ग्राम देवता को निकट से देखकर उसे प्रणाम किया था । प्रस्तुत संग्रह "संक्रांति" में उसे दूर दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया है । गाँव, निःसंदेह ही हमारे इस विराट् देश के अभिन्न अंग हैं और हमारे लोकतंत्र की एक मात्र शक्ति । गाँवों के जागरण से भारत पर मेरी आस्था और भी बढ़ गयी है, कभी उनका युग के अनुरूप विकास हो सकेगा[2] ।

भारत का मन देखना है तो ग्रामीण जनों को देखना चाहिये । ग्रामीण जनता निरक्षर होती है । लेकिन उन लोगों का मन प्रबुद्ध है । उनका रहन-सहन सीधा सादा है । वे हृदयवान और ईश्वर के प्रति आस्था रखनेवाले हैं । आधुनिकता की दृष्टि से वे सभ्य न होंगे लेकिन वे भारतीय संस्कृति के जीवित दर्पण हैं । वे क्षमता, दया और सहृदयता के पुंजीभूत हैं । उनका मन विश्वश्रेय के प्रति अर्पित है । वे संघर्षण में शान्ति और शांति और शान्ति में संघर्षण चाहते हैं -

"दया क्षमा सहृदयता प्रेरित
विश्व श्रेय के प्रति मन अर्पित,
संघर्षण में शाँति, शाँति में
संघर्षण उनको प्रिय प्रतिक्षण[3] ।"

1· संक्रांति - पन्त, पृ·9

2· वही, दो शब्द

3· वही, पृ·16

कवि की राय में विश्वप्रेम ही लोकतंत्र है । आंतरिक क्रांति एक महान मंत्र है । सृजन कर्मों में नित्य अर्पित मन जीवन रूपी रास्ते में कभी थकता नहीं -

"विश्व-प्रेम ही लोकतंत्र है,
और क्रांति महान मंत्र है,
सृजन कर्म के प्रति अर्पित मन,
कभी न जीवन मग में थकता[1] ।"

इस संग्रह में कवि ने वर्तमान सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं पर घोर व्यंग्य किया है । यांत्रिक सभ्यता के विरुद्ध कवि ने अपना क्रोध ऐसा दिखाया है -

"यांत्रिकता के दास बनो मत
रो मानवपन,
विद्युत् अणु अश्वों पर करो
अभय आरोहण,
यन्त्र तुम्हारे सेवक,
भूत प्रकृति पद दासी[2] !"

कवि ने भारतवासियों की महिमा गायी है । भारतीय भूमि के अक्षय निधि हैं । वे सबकुछ दान करनेवाले हैं । दान देते-देते उनका अंतर अघाता नहीं[3] ।" भारतीयों में वसुधैवकुटुम्बकम् की भावना हमेशा है

1· संक्रांति - पन्त, पृ·42

2· वही, पृ·23

3· वही, पृ·32

"सृजन स्वप्न से हो उर प्रेरित
नव श्री शोभा से उन्मेषित,
हम वसुधैव कुटुम्ब ध्येय रख
बनें नये युग के निर्माता[1]।"

भारत राष्ट्रवाद की संकीर्णता में रहनेवाला एक राज्य नहीं है। वह विश्व के सभी देशों से स्नेह संबंध स्थापित करता है। भारत का लक्ष्य -

"ईशावास्यमिदं सर्व का
दिव्य बोध कर
कौन त्याग को बना
भोग सुख का साधन वर -
पूर्ण समर्पण करना
निष्कलाता प्रभु के प्रति -
भारत ही, वह भारत,
श्रद्धार्पित जीवन गति[2]।"

निर्वाचन के संबंध में कवि की खुशी ऐसी है -

"निःस्वर सामूहिक आन्दोलन,
लोक एकता का यह दर्पण,
कौन शक्ति वह हिला सके जो
जन आँद के पद रोपण को!
यह निर्णय रे जन मन का पण,
मानवीय उनको प्रिय शासन,

---

1 संक्रांति - पन्त, पृ.33
2. वही, पृ.66

सूक्ष्म दृष्टि चाहिये मर्मस्पृक्
देख सके जो उर व्रण को !"[1]

और एक पद्य में कवि ने निर्वाचन के संबंध में ऐसा गाया है:-

"ज़िन्दाबाद ! ज़िन्दाबाद !
गूँज उठे लो दिग् दिगन्त सब
भूल गये जन मूक विषाद !
आया नव युग का निर्वाचन
आया जन के निर्णय का क्षण,
मुखर हो उठे गूँगे, देखो
विजय दर्प का भरा निनाद !"[2]

इस प्रकार सुन्दर से सुन्दरतर, सुन्दरतर से सुन्दरतम गानेवाले पन्तजी अंतिम इन कृतियों में सत्यान्वेषी और दार्शनिक बन गये हैं ।

3.13 निष्कर्ष

परवर्ती रचनाओं के अन्तरंग अवलोकन से स्पष्ट होता है कि पन्तजी के काव्यविकास के प्रथम दो चरणों की अपेक्षा यह तीसरा चरण "अध्यात्मचेतना का युग" है । इस समय की सभी रचनाओं में मुख्य रूप से उन्होंने अरविन्द के समन्वयकारी दृष्टिकोण को अपनाया है। अरविंद दर्शन से कवि ने जड और चेतन, भूत और आत्मा, दर्शन और विज्ञान सब में

---

1 संक्रांति - पन्त, पृ.35
2. वही, पृ.73

समन्वय की प्रेरणा ग्रहण की है । अपनी परवर्ती सभी कृतियों में कवि ने बड़ी तन्मयता और विश्वास के साथ इस भावना को व्यक्त किया है ।

"किरण-वीणा" की कविताओं में दार्शनिकता के तत्व यत्रतत्र बिखरे पड़े हैं । इसमें पन्तजी ने शंकराचार्यजी के मायावादी दर्शन का खंडन किया है । कवि का विश्व प्रेम और भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति की समन्वय भावना भी इसमें मुखरित है ।

"पुरुषोत्तम राम" में कवि ने पुराणों में वर्णित रामकृष्ण को नवयुग के लोगों में देखने की इच्छा प्रकट की है । "पौ फटने से पहले" में कवि ने सारे संसार में एक दिव्यचेतना या एक परम सत्य को खोजने का प्रयत्न किया है ।

"पतझर एक भावक्रांति" में उनका बौद्धिक व्यक्तित्व दर्शित है । इसमें बाह्य क्रांति को आन्तर-क्रान्ति के बिना अधूरी एवं एकांगी माना है।

"गीतहंस" की अधिकांश रचनायें आंतरिक मूल्यों से संबंधित हैं ।

"शंखध्वनि" में नये जागरण का संदेश देनेवाली अनेक कवितायें हैं । इसमें आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित एक नये समाज की कल्पना की है ।

"शशि की तरी" में कवि ने संसार की नश्वरता पर आँसू बहाये हैं । "समाधिता" और "आस्था" में कवि की राय में जीवन में मनुष्य का ध्येय ईश्वर प्राप्ति है । मनुष्य को अपनी सर्वांगीण प्रगति केलिये वस्तुगत मूल्यों के साथ ही आंतरिक मूल्यों को भी विकसित करना है ।

"सत्यकाम" भारती के जीवन का महाकाव्य है । औपनिषदिक पृष्ठभूमि में कवि ने आधुनिक जीवन मूल्यों को आँकने का प्रयास किया है । विज्ञान, राजनीति, तकनीकी, अन्तर्राष्ट्रीयता तथा सामाजिक संस्थागत प्रवृत्तियों का निरूपण इसमें किया गया है । नवीन मूल्य बोध से भरे हुए इस प्रबंध काव्य में भी कवि की समन्वय भावना लक्षित है । यह उनके बौद्धिक चिन्तन का एक रसात्मक काव्य है ।

"गीत - अगीत" और "संक्रांति" में युग-वैषम्य का सुन्दर चित्रण है । तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक परिस्थिति का सुन्दर दृश्य भी इसमें विद्यमान है ।

इस प्रकार "लोकायन" महाकाव्य से लेकर "संक्रांति" तक के काव्यसंग्रहों में आध्यात्मिक चेतना को विभिन्न सामाजिक संदर्भों में रूपायित किया है । उन्होंने भावी मानव समाज में सुख और शान्ति के लिये भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय चाहा है । परवर्ती सभी कृतियों में यही दर्शनोन्मुख सामाजिक भावना लक्षित होती है ।

चौथा अध्याय

लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में पन्त की दार्शनिक विचारधारा

चौथा अध्याय

4. लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में पन्त की दार्शनिक विचारधारा

महान् चिंतक और महाकवि स्वयं भी अपने युग से प्रभावित होते हैं तथा अपने मौलिक चिंतन और काव्य से अपने युग को और आगामी युगों को प्रभावित करते हैं[1]। आधुनिक युग के मौलिक चिंतकों एवं मनीषियों के दार्शनिक सिद्धांतों से आधुनिक युग का हिन्दी काव्य प्रभावित हुआ है। सर्वाधिक प्रत्यक्ष प्रभाव हिन्दी के महान कवि श्री· सुमित्रानंदन पन्त पर परिलक्षित होता है।

"लोकायतन" और परवर्ती रचनाओं में मुख्य रूप से पंतजी की दार्शनिक विचारधारा लक्षित होती है। "दार्शनिक हुए बिना कोई भी कवि महान नहीं बन सकता[2]।" पन्त जी की विशेषता के मूल में भी

1· आधुनिक हिन्दी काव्य पर अरविंद-दर्शन का प्रभाव
डॉ· कृष्णा शारदा, पृ·239

2. No Man was ever yet a great poet without being at the same time a profound philosopher.
S.T.Coleridge - Biographia Literaria, Chapter XV First edition,1907, p.19

यही दार्शनिकता है । दर्शन की ओर उनकी रुचि बचपन से ही थी, प्रौढावस्था में आकर यह द्रुतगामी हो गयी । जब व्यक्ति के जीवन और जगत् संबंधी विचार सामाजिकता की ओर उन्मुख होते हैं तो वह दर्शन सामाजिक जीवन-दर्शन कहलाता है और जब वह विचारधारा मन या आत्मा की ओर उन्मुख होती है तब वह आध्यात्मिक दर्शन की संज्ञा पाती है । पन्त जी ने सामाजिक दर्शन और आध्यात्मिक दर्शन में समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की है । युगीन विचारधाराओं से प्रभावित पन्तजी अनेक दर्शनों से प्रभावित हुए हैं । आरंभिक काल की रचनाओं में छायावादी चिन्तन, गाँधीवादी चिन्तन और मार्क्सवादी चिन्तन का प्राधान्य था । लेकिन "लोकायतन" और परवर्ती रचनाओं में अरविंद दर्शन और नवमानवता-वादी दर्शन का प्रभाव है ।

4·1 पन्त की दार्शनिक विचारधारा

पन्त जी को प्रभावित करनेवाली मुख्य विचारधारायें इस प्रकार हैं - उपनिषद् दर्शन, शंकर वेदान्त, विवेकानंद की विचारधारा, गाँधीवादी दर्शन, सर्वात्मवाद और अरविंद दर्शन ।

4·2 उपनिषद् दर्शन

अध्ययन के माध्यम से आये इन संस्कारों को कवि ने कल्पना द्वारा काव्य में अभिव्यक्त किया है । विविध रंगों और रूपों में चित्रित जिस नवचेतना की कल्पना हमें इनके काव्य में मिलती है, वह इसी उपनिषद् दर्शन की देन है । ब्रह्म का विराट स्वरूप, आत्मा, जीव और जगत् का संबंध, सृष्टि-प्रक्रिया, आत्मज्ञान, अनुभूति और उपलब्धि आदि के बारे में

जो विचारधारा हमें उपनिषदों में मिलती है, वही पन्त के काव्य में उनकी नव-चेतना के आस-पास मंडराती है ।

4·3 शंकर वेदान्त

शंकराचार्य इस विचारधारा के प्रबल समर्थक रहे हैं । ब्रह्म, जीव, जगत्, माया आदि का जो विवेचन इस विचारधारा के अन्तर्गत किया गया है, पन्त काव्य में अभिव्यक्त दार्शनिक कल्पना पर उसका पूर्ण प्रभाव दिखाई देता है । इनके अनुसार ब्रह्म निर्विशेष और सर्वव्यापी है । यह वह विशुद्ध कर्ता है, जिसके अस्तित्व को बाह्य या वस्तु रूपात्मक जगत् में नहीं छोडा जा सकता । इस ब्रह्म का वर्णन हम किसी प्रकार नहीं कर सकते ।

उपनिषद् में दिये गये आत्मा, जीव और जगत् संबंधी विचारों को भी पन्त ने ग्रहण किया है। लोक-मंगल और प्राकृतिक उपादानों की कल्पना में ये विचार जहाँ-तहाँ अभिव्यक्त हुए हैं । आत्मा को वे भी उसी प्रकार निर्लिप्त, अविनाशी और निरामय मानते हैं जैसा कि शंकर अद्वैत में ।

4·4 विवेकानंद की विचारधारा

विवेकानंद अद्वैतवाद के आधुनिक व्याख्याता हैं । उन्होंने औपनिषदिक अद्वैतवाद की जो विवेचना की है उसमें उनकी कुछ मौलिक विशेषतायें स्वत: ही आ गयी हैं । पन्त की कल्पना पर इन विशेषताओं का भी प्रभाव पडा है । ये विशेषतायें इस प्रकार हैं -

अ· मातृशक्ति के रूप में ब्रह्म की विवेचना

आ· ईश्वर का मानवीय स्वरूप

इ मानव-ईश्वर में प्रेम-प्रतिष्ठा

ई सुख-दु:ख की विवेचना ।

स्वामी विवेकानंद ने ईश्वर को शक्ति-स्वरूपा माना है । उनके अनुसार ईश्वर से बढ़कर हम किसी उच्च वस्तु की कल्पना नहीं कर सकते, क्योंकि ईश्वर पूर्णरूप है और वही मनुष्य का चरम लक्ष्य है । लेकिन ऐसे ईश्वर को खोजने केलिये और कहीं जाने की आवश्यकता नहीं । "हम जीवित ईश्वर की पूजा करना चाहते हैं । मैं ने संपूर्ण जीवन ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखा[1] ।" जीवित ईश्वर तुम लोगों के भीतर रहते हैं, तब भी तुम मन्दिर, गिरजाघर आदि बनाते हो और सब प्रकार की काल्पनिक झूठी चीज़ों में विश्वास करते हो । मनुष्य-देह में स्थित मानव-आत्मा ही एकमात्र उपास्य ईश्वर है । पशु भी भगवान् के मंदिर हैं, किन्तु मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ मंदिर है - ताजमहल जैसा[2] ।"

पन्त ने सुख-दु:ख की विवेचना इसी आधार पर की है :-

"दु:ख इस मानव-आत्मा का
रे नित का मधुमय-भोजन,
दु:ख के तम को खा खा कर
भरती प्रकाश से वह मन[3] ।"

1· विवेकानंद साहित्य, अष्टम खण्ड, पृ·28

2· वही, पृ·29

3· गुंजन - पन्त, पृ·20

4.5 गाँधीवादी दर्शन

पन्त-काव्य में और एक चिन्तन-धारा जो सबसे अधिक उभरकर आयी है और जिसे उनकी सामाजिक दर्शन संबंधी चिन्तनधारा कह सकते हैं वह गाँधीवादी चिन्तन के नाम से अभिहित की जा सकती है। उन्होंने गाँधीजी के प्रथम साक्षात्कार का वर्णन करते हुए लिखा है कि "जिस भव्य आकृति को सामने उच्च मंच पर बैठे हुए देखा उससे मेरे भीतर एक अज्ञात प्रकार का सन्तोष प्रवाहित हुआ। जैसे अपने देश के किसी चिरपरिचित सत्य को या प्राचीन कथाओं में वर्णित उदात्त जीवन-आदर्श को आँखें मूर्तिमान रूप में अपने सामने, शान्त मौन एकाग्र भाव में प्रतिष्ठित देख रही हो। स्वच्छ खादी से विमण्डित एक दुबली-पतली, दीर्घ, ताम्रवर्ण तप:क्लिष्टमूर्ति - जैसे शरद्ऋतु के शुभ्र-मेघों से घिरा हुआ युग-सन्ध्या का स्वर्णशुभ्र सूर्य-बिम्ब वह उन समस्त दृष्टियों और हृदय की भावनाओं का लक्ष्य बन गये थे।"[1] उसके बाद पन्त जी एक नूतन सामाजिक व्यवस्था के चिन्तन एवं मनन में डूब गये और उनकी दृष्टि भी आदर्शोन्मुख के स्थान पर अधिकाधिक यथार्थोन्मुख हो गयी। गाँधीजी की प्रेरणा से ही पन्तजी में मानव-जीवन के प्रति नयी आस्था एवं श्रद्धा जाग्रत हुई और वे गाने लगे -

"विचरे मानव संग भू पर ईश्वर
दिशि क्षण हों चित् संपद् में कुसुमित,
बुद्धि भावना, धर्मकाम, इह-पर
भू मानस में हों नव संयोजित !
जीवन शोभा हो नव प्रभु प्रतिमा,
जन प्रांगण देवालय श्रद्धा स्मित,

---

1. शिल्प और दर्शन - पन्त, पृ.338

मानव हृदय मिलन ही तीर्थस्थल,
भू मंगल प्रति हों रति कृति अर्पित ![1]"

पन्त जी ने गांधीजी की सत्य एवं अहिंसा संबंधी विचारधारा का पूर्ण समर्थन सिरी के मुँह से किया है -

"सत्य अहिंसा ही कर सकते
विश्व ध्वंस से जनसंरक्षण ![2]"

गांधीजी ऐसी नई संस्कृति का प्रचार एवं प्रसार कर रहे थे, जिसमें ऊँच-नीच, छुआछूत, जाति-पांति आदि भावनाओं का परित्याग करके मानव सभी व्यक्तियों को गले लगायेगा, संपूर्ण मानवता के विकास केलिये प्रयत्न करेगा और तन-मन, जीवन में व्याप्त भेदभावों को छोड़कर वाणी, भाव, कर्म आदि से सुसंस्कृत होकर एक नई संस्कृति का अनुयायी होकर इस धरा पर स्वर्ग की स्थापना करेगा । पन्तजी गांधीजी के इन विचारों से पूर्णतया प्रभावित हुए और उन्होंने ऐसा कहा -

"मानव मानव सब समान भू पर
और छोट करने भू के दीपित,
मानव भगवत् पावक का चित्कण,
निर्णय लेना-जन भू हो संस्कृत !
भेद नहीं कुछ मानव मानव में

मनुजों में नित मनुज एक चिद्घन ![3]"

1· लोकायतन - पन्त, पृ·434

2· वही, पृ·71

3· वही, पृ·526

सभी वर्णों के मनुष्य को कवि विराट ईश्वर के हर एक अवयव के समान मानता है -

"वह विराट् फिर परिणत हुआ मनुज समाज में,
कर्मों के अनुरूप हुआ वह वर्ण विभाजित,
सभी वर्ण अवयव समान उस दिग् विराट् के !
विद्या, शौर्य, विभव, सेवा-श्रम के प्रति अर्पित[1] !"

"लोकायतन" का पूर्वार्द्ध गाँधीवाद से प्रभावित है । वहाँ कला-शिविर में राष्ट्र-वन्दना होती है । यहाँ कवि ने राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रति भी अपने उद्गार व्यक्त किये हैं, जिसे गाँधीजी भी राष्ट्र-भाषा बनाने केलिये प्रेरणा देते थे और उस शिविर का संपूर्ण कार्य हिन्दी में ही होता है । गाँधीजी को एक महान जननायक मानकर उनका स्तवन इस तरह किया गया है -

"जय राष्ट्रपिता, जय मानव,
जय शुभ्र पुरुष, युग संभव !
जय आत्मशक्ति के पर्वत,
भू-स्वर्ग दूत, युग नर नव !
तुम छू जन जीवन के बहु
जर्जर पक्षाहत अवयव
भू संस्कृति को, युग मन को
दे गये ऊर्ध्व नव गौरव[2] !"

गाँधीजी की ही विचारधारा से प्रभावित होकर पन्तजी ने भी नारी को पूर्णतया स्वतंत्र करने की आवाज़ बुलन्द की -

---

1. सत्यकाम - पन्त, पृ.194
2. लोकायतन - पन्त, पृ.136

"मुक्त करे स्त्री को, नारी को मुक्त करे नर,
महामंत्र बल यह, सामूहिक योग इसी से
सिद्ध धरा पर होगा ! मनुज प्रकृति का जिससे
दिव्यीकरण स्वत: ही संभव हो जायेगा ![1]"

xx xx xx

नारी को बंदिनी किये
गत पशु नर,
प्रीति-मुक्ति का स्वर्ग
धरा पर दूभर ![2]"

"लोकायतन" में हरि ने स्त्रीजन के जीवन विकास केलिये तकली-चरखे, जुटाकर गृह-उद्योग शिविर खोल रखे थे । सिरी नारी उद्धार केलिये दृढ निश्चय करती है -

"मैया का वह कार्य करेगी,
जन जन का होगा उसका मन ![3]"

इस प्रकार गांधीवाद से प्रभावित चिन्तन-धारा का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि पन्तजी गांधीजी की तरह एक विराट् सत्ता में विश्वास करते हैं, ईसा-मुहम्मद-केशव-राम आदि में कोई भेद नहीं मानते, संपूर्ण मानव कल्याण में ही अपना कल्याण समझते हैं और संपूर्ण समाज की मुक्ति में ही अपनी मुक्ति मानते हैं । समाज के सभी बन्धनों को तोडकर एक मानवता के पक्षपाती हैं, जहाँ जीव सभी समान हैं, कोई छोटा-बडा, ऊँचा-नीचा, छूत-अछूत नहीं है और जो सभी एक ईश्वर के बनाये हुए हैं,

---

1. सत्यकाम - पन्त, पृ.91
2. आस्था - पन्त, पृ.97
3. लोकायतन- पन्त, पृ.67

प्रार्थना, नमाज़ आदि में कोई अन्तर नहीं समझते तथा ईश्वर के प्रति गहन श्रद्धा एवं आस्था व्यक्त करना अपना परम कर्तव्य मानते हैं। वे प्राचीनता से ग्रस्त रूढ़ियों एवं परंपराओं का विनाश करके नवीन विचारधारा के पोषक हैं तथा नई सभ्यता एवं नई संस्कृति के द्वारा मानवों में नई चेतना एवं नई स्फूर्ति जाग्रत करना चाहते हैं। इसी कारण पन्तजी ने गांधीजी से प्रभावित होकर सत्य-अहिंसा पर आधारित नई उदारवादी क्रांति को ही नवीनता लाने में समर्थ माना है और उग्रवादी विचारधारा का विरोध किया है, नारी-शिक्षा एवं नारी-स्वातंत्र्य पर बल दिया है तथा एक ऐसी नई सांस्कृतिक क्रांति लाने की चर्चा की है, जो संप्रदायों, धर्मों एवं मत-मतान्तरों की दीवारों को तोड़कर मानव को सुख एवं शांति प्रदान करनेवाले एक आदर्श मानव-समाज की स्थापना में सहायक हो।

4·6 सर्वात्मवाद

पाश्चात्य सर्वात्म दर्शन ने भी पन्त की काव्य-कल्पना को प्रभावित किया है। यह दर्शन भारतीय अद्वैत दर्शन से अत्यधिक मिलता है। सर्वात्मवाद के अनुसार सब कुछ ईश्वर ही है। ईश्वर जगत् है और जगत् ही ईश्वर है।[1] इसमें एकात्मवाद (Monism) और निर्गुणतिवाद दोनों का होना अनिवार्य माना गया है। यह भावना वेदान्त दर्शन की "सर्वंखल्विदं" ब्रह्म, ईशावास्यमिद" - जो जगत् को ब्रह्म रूप प्रमाणित करती है - भावना से मिलती है।

---

1. सर्वात्मवाद अंग्रेज़ी शब्द पेन्थिइज्म (Penthecism) का पर्याय है। पेन्थिइज्म का शाब्दिक अर्थ है पेन (सब) थिइज्म (ईश्वर) अर्थात् सब कुछ ईश्वर (Panthcism (Pan,All' and theos, (God'), the name given to that system of speculation, whichin its spiritual form identifies the Universe with God). Chambers Encyclopaedia, Vol.VII, p.732, Ed.1926

पन्तजी ने अपने काव्य में सर्वात्मवाद की निम्न विशेषताओं को वाणी दी है

अ· जगत ईश्वरमय है और जगत ही ईश्वर है

आ· ईश्वर और जगत का संबंध अंगी-अंग रूप में है इसलिये जगत् सत्य है ।

इ· ईश्वर सर्वानुस्यूत है ।

ई· प्रकृति और परमेश्वर मूलत: एक है ।

जगत् और ईश्वर संबंधी सर्वात्मवादी विचारधारा को भी उसी आधार पर ग्रहण किया है । प्रकृति सौंदर्य कवि की सर्वात्मवादी विचार-धारा का मूल आधार रहा है । प्रकृति में विराट का आरोप, उसके अन्तर बाह्य सौंदर्य का विश्लेषण, अनेकता में एकता की भावना, उसमें दिव्य चेतना की अनुभूति आदि विशेषतायें प्रकृति और परमेश्वर के ऐक्यभाव की सूचक है । कवि प्रकृति और परमेश्वर की एकता इन शब्दों में व्यक्त करता है -

"वही तिरोहित जड में जो चेतन में विकसित,
वही फूल मधु सुरभि, वही मधुलिह् चिर गुंजित !"[1]

प्रकृति सौंदर्य के संदर्भ में कवि-काव्य में ऐसे उदाहरण भरे पडे हैं, जो सर्वात्मवादी दर्शन के प्रभाव को इंगित करते हैं ।

"गीतहंस" में कवि ने सर्वात्मवाद के विचार स्पष्ट रूप से व्यंजित किया है -

---

1· स्वर्णकिरण - पन्त, पृ·135

"भुंजीथा त्यक्तेन तेन,
भव राग-चक्र नि:संशय,
ब्रह्मानंद सहोदर सुख
भोगें स्त्री पुरुष अनासक्त !
ईशावास्य मिदं सर्वं -
उपनिषद् दृष्टि हो सार्थक,
अनघ राग-भू गरिमा देखें
स्वर्ग-चकित दृग, अपलक ![1]"

सारे संसार में ईश्वर व्याप्त है और ईश्वर में सारे संसार व्याप्त है -

"संस्कृति के स्फटिक प्रांगण में
करता नव नर विचरण,
ईश्वर में जग के,
जग ही में
ईश्वर के कर दर्शन ।[2]"

4·7 पन्तजी का नवीन जीवन दर्शन

पन्तजी ने कवीन्द्र रवीन्द्र, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गाँधी और कार्ल मार्क्स आदि महान् विभूतियों के प्रभाव को भी स्वीकार किया है इस प्रकार पन्तजी ने अध्यात्मवाद एवं भौतिकवाद के समन्वय का प्रयत्न किया है । केवल जडवाद को लेकर चलनेवाले मार्क्सवाद में उनका मन अधिक समय तक न रम सका । डॉ· नगेन्द्र की मान्यता है कि "जीवन के भौतिक मूल्य पन्तजी के संस्कारी व्यक्तित्व को तृप्त नहीं कर सकते ।[3]"

1· गीतहंस - पन्त, पृ·194
2· वही, पृ·197
3· सुमित्रानंदन पन्त - डॉ· नगेन्द्र, पृ·167

आगे उन्होंने कहा है कि "पंतजी क्रमशः शरीर से मन और मन से आत्मा की ओर बढ़ रहे थे[1]।" डॉ॰ नगेन्द्र ने इस आध्यात्मिकता को सांप्रदायिक अथवा धार्मिक आध्यात्मिकता एवं रहस्यवाद से भिन्न, मनोवैज्ञानिक आध्यात्मिकता कहा है[2]।" उनका कहना है - यह कोई नवीन दर्शन नहीं है, शास्त्रीय शब्दावली में वह भारतीय अद्वैतवाद की पीठिका पर यूरोप के मानववाद की प्रतिष्ठा है, जो आज से कुछ दिन पूर्व कवीन्द्र रवीन्द्र कर चुके थे[3]। पन्तजी का कथन ऐसा है - "इन सब में जो एक परिपूर्ण एवं संतुलित अंतर्दृष्टि का अभाव खटकता था, उसकी पूर्ति मुझे श्री॰ अरविंद के जीवनदर्शन में मिली, और इस अंतर्दृष्टि को मैं इस विश्व-संक्रांति-काल केलिये अत्यंत महत्वपूर्ण तथा अमूल्य समझता हूं[4]।" पन्तजी ने केवल अरविंद-दर्शन के प्रभाव को ही नहीं वरन् श्री॰ अरविंद के व्यक्तित्व की महानता को भी स्वीकार.करते हुए लिखा है - "श्री॰ अरविंद को मैं इस युग की अत्यंत महान् तथा अतुलनीय विभूति मानता हूं। उनके जीवन दर्शन से मुझे पूर्ण संतोष प्राप्त हुआ है[5]। समान धर्मा सहज ही एक दूसरे को जान लेते हैं। आरंभ से ही कवि पन्त के संस्कार, प्रवृत्त्तियाँ, रुचियाँ एवं स्वभाव ऐसा था कि वे उचित ही श्री॰ अरविंद और उनके साहित्य के संपर्क में आ गये। यह परिचय ऐसे समय हुआ, जब-उनके शब्दों में - "मुझे किसी प्रकार के बौद्धिक तथा आध्यात्मिक अवलंब की आवश्यकता थी[6]।" डॉ॰ विजयेन्द्र स्नातक का कहना है कि "पन्तजी किसी एकांगी दृष्टिकोण के समर्थक नहीं हैं। जड और चेतन, क्षर और अक्षर, अनंत और सांत दोनों में ही सत्य की प्रतिष्ठा उन्होंने की है।

---

1. सुमित्रानंदन पन्त - डॉ॰ नगेन्द्र, पृ॰167
2. वही, पृ॰168
3. वही, पृ॰173
4. उत्तरा - सुमित्रानंदन पन्त, पृ॰22 {प्रस्तावना}
5. वही, पृ॰ 22-23
6. वही, पृ॰22

पन्तजी को योगी अरविंद के जीवन में इस शिवत्व का सर्वाधिक आभास मिला। विश्वकल्याण केलिये वे श्री॰ अरविंद को इतिहास की सब से बडी देन मानते हैं[1]। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने लिखा है - हिन्दी पाठक रवीन्द्र, गांधी, और मार्क्स के प्रति पन्तजी की श्रद्धा से परिचित हैं, अब वे अरविंद के अनुगामी हैं[2]। द्विवेदीजी के अनुसार यह अनुगमन आकस्मिक नहीं था, इसकी तैयारी आरंभ से ही हो रही थी। अत: छायावाद युग में जिस अंतर्ज्योति का आभास कवि ने पाया था वह युग के झंझावात में प्रकंपित होकर बुझ नहीं गयी[3]।" आगे द्विवेदीजी ने कहा - अस्वस्थता के बाद अकस्मात् उन्हें योगी अरविंद की साधना से नवजीवन मिला[4]।

डा॰ तारकनाथ बाली ने "सुमित्रानंदन पन्त और उत्तरा" में अरविंद-दर्शन की बडी सटीक व्याख्या प्रस्तुत की है तथा "उत्तरा" की रचनाओं में इस दर्शन के प्रभाव पर विचार किया है। डा॰ बाली के मतानुसार, अरविंद-दर्शन बाह्य जीवन की पूर्णता एवं आंतरिक जीवन की पूर्णता को समन्वित करनेवाला दर्शन है[5]। डा॰ बाली के अनुसार पन्त द्वारा अरविंद-दर्शन की स्वीकृति उसके चिंतन के विकास की एक सहज स्वाभाविक घटना है[6]। डा॰ बाली के प्राय: सभी कथनों का निष्कर्ष यह है कि अरविंद दर्शन के मूल तत्व पन्तजी के "पूर्वकाव्य" में भी बीजरूप से विद्यमान थे, अरविंद दर्शन का प्रत्यक्ष संपर्क पाकर, वह बीज "स्वर्णकाव्य" में प्रस्फुटित एवं परिवर्धित हुए।

1· सुमित्रानंदन पन्त - संपादिका शचीरानी गुर्टू, पृ·308
2· ज्योति विहग - श्री· शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ·379
3· वही, पृ·356
4· वही, पृ·380
5· सुमित्रानंदन पन्त और उत्तरा - डा॰तारकानाथ बाली, पृ·108
6· वही, पृ·130

कवि "दिनकर" के मतानुसार श्री॰ अरविंद के सम्पर्क में आने से पूर्व ही पंतजी के भीतर कुछ वैसी अनुभूतियां उदित होने लगी थीं, जैसी अनुभूतियां अरविंद दर्शन से संपर्क के बाद आयी और पुष्ट हुई[1]।" दिनकरजी ने आगे लिखा है - "मानस से अतिमानस की यात्रा अत्यंत दुरूह है। अतिमानसी धरातल की झाँकी किन्हीं किन्हीं कविताओं में पहले भी उतरी थी, किन्तु मानस से निकलकर अतिमानस में जाने की राह किसी ने पहले नहीं बनाई। उस मार्ग के सर्वप्रथम प्रयोक्ता श्री॰ अरविंद हुए हैं और हिन्दी में यह कार्य केवल पंतजी कर रहे हैं[2]।"

आज से बहुत वर्ष पहले "पल्लव" के प्रकाशन के साथ ही महाप्राण "निराला" ने पन्त काव्य में निहित ब्रह्मवाद एवं कवि के आंतरिक विकास की क्षीण रेखा को पहचान लिया था। उन्होंने कहा था - "मौलिकता के प्रश्न पर बारीक छानबीन होने पर, निश्चय है, ब्रह्म ही हर सृष्टि के मूल में दृष्टिगोचर होगा, तथापि विकास के विचार से, पंतजी का विकास हिन्दी साहित्य में बड़ा ही मधुर और बड़ा ही उज्ज्वल हुआ है[3]।" इस प्रकार ब्रह्मवाद की रेखा तब से आज तक की पन्तजी की प्राय: सभी काव्य कृतियों में उपलब्ध होती है।

पन्तजी ने लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में अरविंद-दर्शन और उसकी मौलिकता को अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न किया है। "लोकायतन" का एक पात्र, जो कवि भी है, द्वितीय महायुद्ध के "हिरोशिमा" आदि सर्वनाशक कांडों से अवसन्न होकर श्री॰ अरविंद की शरण में पहुंचता है। इस घटना का वर्णन पंतजी ने इस प्रकार किया है -

---

1· पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण - श्री॰ रामधारीसिंह दिनकर, पृ॰101
2· वही, पृ॰134
3· प्रबन्ध पद्म - श्री॰ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पृ॰139

"गया कवि दिव्य प्रीति के द्वार
ज्योति का पाने नव वरदान !
निभृत आश्रम में आत्म प्रशांत
योग रत थे श्री-युत् अरविंद,
दिव्य मानस के स्वर्ण प्रतीक
विश्व मन पर हों स्मित सित इंद्र ![1]"

उन्होंने श्री· अरविंद की दार्शनिकता को पचाकर पुन: उसे अपनी रुचियों के अनुरूप ढाला है । उनका कथन है - "मैं हिमालय तथा कूर्माचल के प्राकृतिक ऐश्वर्य से उसी प्रकार किशोरावस्था में प्रभावित हुआ हूँ, जिस प्रकार युवावस्था में गाँधीजी तथा मार्क्स से अथवा मध्यवयस में श्री· अरविंद के दर्शन तथा व्यक्तित्व से[2] ।" वे प्रारंभ से ही एक विशिष्ट जीवन-दृष्टि को रचनात्मक एवं विचारात्मक धरातल पर प्रतिष्ठित करने केलिये प्रयत्नशील दीखते हैं । युगवाणी, ग्राम्या तथा ज्योत्सना में कवि अपनी आध्यात्मिक अभिवृत्ति का स्पष्ट संकेत दे चुका था । कवि की मानसिकता का विकास काफी पहले से एक विशेष बिन्दु की तरफ हो रहा था । ऐसा नहीं था कि पन्त अकस्मात् बिना किसी पूर्वाधार अरविंद दर्शन के संपर्क में आये हों । निश्चय ही पन्त का वैचारिक धरातल बहुत कुछ उसी प्रकार से निर्मित हो रहा था जिस प्रकार अरविंद का दार्शनिक चिन्तन । पन्तजी इन दिनों मूल्यों के विकट संघर्ष के बीच अपनी दृष्टि की इयत्ता को रेखांकित करने केलिये प्रयत्नशील थे । गाँधीवाद और मार्क्सवाद से क्रमश: उनका मोह भंग होता जा रहा था । उनका यह विश्वास दृढ होता जा रहा था कि लोक-संगठन एवं मन:संगठन एक दूसरे के पूरक हैं

1· लोकायतन - श्री· सुमित्रानंदन पन्त, पृ·416

2· शिल्प और दर्शन,- पन्त, पृ·118

क्योंकि वे एक ही युग चेतना के बाहरी तथा भीतरी रूप हैं । इन दोनों विचारधाराओं में एकपक्षीय प्रतिपादन की ही बहुलता है । भौतिक उन्नति किसी विश्वव्यापी एवं स्थायी मूल्य की सृष्टि नहीं कर सकती क्योंकि उसमें "संस्कृति" के मूलभूत उच्चादर्शों का विकास संभव नहीं हो पाता । पन्त की विचारधारा के सनातन प्रवाह को विश्लेषित करने की प्रक्रियामें इतना तो स्पष्ट ही है कि ज्योत्स्ना काल से ही भौतिकवाद की तरफ उनकी अनास्था रूप-ग्रहण कर रही थी । "ग्राम्या" में मार्क्सवादी दृष्टिकोण को विशेष प्रश्रय देने के बावजूद उनके अंतर्मन में यह धारणा बद्धमूल हो रही थी कि आध्यात्मिक विकास में ही व्यक्ति की पूर्ण सांस्कृतिक चेतना का प्रतिफलन हो सकता है । कवि का जिज्ञासु मन जड़वाद व चेतनवाद में सामंजस्य सूत्रों की खोज कर रहा था । अरविंद ने चूंकि ऐसा सामंजस्य खोज निकाला था और इस सामंजस्य का आधार प्राचीन अद्वैतवाद को बताया था । वेद, गीता आदि में भी उसी अपनी अभीष्ट व्याख्या को खोज निकाला था अत: पन्त का स्वाभाविक रूप से अरविंद दर्शन की तरफ आकर्षण हुआ । उन्हें मालूम हो गया कि मार्क्सवाद केवल आर्थिक समता के ऊपरी सिद्धान्त का पोषक है । 19वीं शताब्दी की विषम परिस्थितियों ने ही मार्क्स की इस चिंतन पद्धति को विकसित किया था अत: उनकी दृष्टि विभाजन व विश्लेषण प्रधान थी । संश्लेषण तथा सामंजस्य की उच्च सांस्कृतिक कल्पना उनकेलिये विरल ही थी । परिणामत: वह एक जड़वादी दर्शन होकर ही रह गया । इसके विपरीत सूक्ष्मदर्शी तत्वज्ञ भारतीय मनीषियों ने समन्वित दृष्टि से पदार्थ व चेतना दोनों को देखा था और जड और चेतन की अद्भुत समरसता का प्रतिपादन किया था । अत: पन्त को अपना दृष्टिकोण आदि परम्परा के अधिक निकट लगा । पन्त अरविंद के व्यक्तित्व एवं उनकी चिन्तनपद्धति को विश्व की महानतम उपलब्धि मानते हैं ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि अरविंद दर्शन समन्वय के व्यापक सिद्धान्त पर आधारित है । वे जगत् और ब्रह्म में से किसी का भी निषेध नहीं करते । उनके अनुसार जीवन में भौतिकता तथा आध्यात्मिकता, दोनों की आवश्यकता है । कवि पन्त पर अरविंद के मत का व्यापक प्रभाव पड़ा । आलोच्यकाल की कृतियाँ अन्तश्चेतना और मानवता को पर्याप्त प्रकर्ष देती हैं । पन्त ने अपनी इन रचनाओं में दृढतापूर्वक प्रतिपादित किया है कि अविकसित चेतना एकांकी होती है इसलिये उन्होंने भूत और चेतना, अध्यात्म और भौतिकता तथा हृदय और मस्तिष्क के पूर्ण समन्वय का उद्घोष किया है ।

4·8 अरविंद दर्शन

भारतीय दार्शनिकों की परम्परा में अरविंद का स्थान अप्रतिम है । एक निश्चित कार्य केलिये उनका जन्म हुआ था, उसी केलिये उन्होंने जीवन भर प्रयत्न किया और उसी केलिये महासमाधि ग्रहण की । उनके जीवन का मूल उद्देश्य क्या था, यह उनके पांडिचेरी निवासकाल में धीरे धीरे स्पष्ट हुआ । वहाँ उनका जीवन एक योगी का जीवन रहा, किंतु सन्यासी का नहीं । सन्यास को उन्होंने अपने योग का अंग कभी स्वीकार नहीं किया । उनके अनुसार - "यह योग संसार से पिंड छुडानेवाले सन्यास का नहीं, अपितु दिव्य जीवन का योग है"[1] । उनके जीवन का मूल उद्देश्य माताजी के निम्नलिखित शब्दों से व्यक्त होता है -

---

1. 'This yoga is not a Yoga of world - shunning asceticism, but of divine life.
Sri Aurogindo on Himself and on the Mother,
Sri Aurobindo, p.150

"श्री॰ अरविंद हमें यह बताने केलिये आये थे कि सत्य को पाने केलिये पृथ्वी का त्याग करने की आवश्यकता नहीं, अपनी आत्मा को प्राप्त करने केलिये जीवन त्याग आवश्यक नहीं । भगवान के साथ संबंध स्थापित करने केलिये न तो संसार त्याग की आवश्यकता है और न कुछ सीमित विश्वासों को ग्रहण करने की । भगवान सर्वत्र हैं, सभी वस्तुओं में हैं और यदि वे छिपे हुए हैं तो इसका कारण बस यह है कि हम उन्हें ढूंढने का कष्ट नहीं उठाते[1] ।"

अरविंद दर्शन मूलत: एक समन्वयवादी दर्शन है किन्तु यह समन्वय योगसंभूत अंतश्चेतनामूलक पृष्ठभूमि पर खोजा गया है । पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान का भंडार अर्जित कर लेने पर भी साधना के बाद अरविंद की धारणा बनी कि अखिल विश्व के ज्ञान का मानव जीवन में समायोजन भारतीय अध्यात्म दृष्टि से ही हो सकता है । भारतीय ईश-साधना, जिसमें यौगिक साधना का स्थान सर्वोपरि है, के अन्तर्गत ही अन्य साधनाओं का या तो अंतर्भाव कर दिया गया है या उसे सहायक के रूप में स्वीकार किया गया । अरविंद विश्व के विविध ज्ञान को विविध चेतना स्तरों की उपज मानकर स्वीकार करते हैं किन्तु अंतिम और उच्चतम स्थान वे भारतीय साधना पद्धति को ही देते हैं । अरविंद ने भी अन्य दार्शनिकों की भांति ब्रह्म, जीव एवं जगत् के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं । इस क्षेत्र में उनकी सबसे महत्वपूर्ण देन अतिमानस की खोज, सामूहिक मुक्ति, पृथ्वी और स्वर्ग का समन्वय और दिव्य जीवन का दर्शन या स्थापना है ।

अरविंद ने अपनी तर्कपूर्ण शैली में यह सिद्ध किया कि चेतना और पदार्थ में कोई शाश्वत विरोध नहीं है । विरोध तभी परिलक्षित होता है जब मानव चेतना में उलझनें हों, जब वह आंतरिक सामरस्य के

1॰ अवतार (अनूदित) - श्री॰ अरविंद, पृ॰75

दर्शन में अक्षम हो । प्रश्न उठता है कि चेतना और पदार्थ में सामरस्य कैसे संभव है ? अरविंद ने इसके समाधान केलिये दो बातों को ध्यान में रखने का निर्देश दिया है - प्रथम, हमें एक सर्वव्यापी सत्ता को पहचानना है जो इन दोनों तत्वों को उचित महत्व एवं गरिमा प्रदान करती है । द्वितीय, जब हम उस सर्वव्यापी सत्ता और चेतना तथा पदार्थ के पारस्परिक संबंध पर विचार करेंगे तो विकासवाद का सिद्धान्त ही सारी गुत्थियों को सुलझाता है । अरविंद के दर्शन का मूल है उपनिषद-ज्ञान और विकासवाद का समन्वय । अरविंद का विचार था कि प्राचीन पौर्वात्य ज्ञान एवं आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान के समन्वय की ओर ही आज का युग बढ रहा है ।

श्री॰ अरविंद की दार्शनिक मान्यताओं के मूलस्रोत ये हैं' - (अ) ब्रह्म (आ) जीवात्मा (इ) जगत (ई) अतिमानस ।

4·8·1 ब्रह्म

श्री॰ अरविंद के अनुसार ब्रह्म गंभीर आत्मानुभूति से प्राप्त एक अद्वितीय सत्ता है जो अनिर्वचनीय है और असंभव संभावनाओं से युक्त है । उनके अनुसार ब्रह्म परम, सनातन और अनंत है । प्रकृति ब्रह्म की आद्याशक्ति और सृष्टि रचना का मूल है । "ब्रह्म में एक से ऐसी आत्मचेतना अंतर्निहित है जो अपनी शक्ति से विभिन्न रूपों और जगतों की सृष्टि करती है[1] ।"

---

1. **This Brahman, this sat as the absolute beginning, end and continent of things and in Brahman as inherent self-consciousness--which is creative of forces, forms and world's. The Life Divine, p.86**

परा रूप में वह भगवती माता अर्थात् जगद्‌जननी है और अपरा रूप में वही "माया" है जिस का आवरण ब्रह्म को अज्ञान बना देता है । ब्रह्म के निर्गुण और सगुण रूपों के संबंध में भी श्री· अरविंद ने अपना मत व्यक्त किया है - "निष्क्रिय ब्रह्म तथा सक्रिय ब्रह्म कोई भिन्न और विरोधी सत्तायें नहीं हैं । ये एक ही ब्रह्म के भावात्मक और अभावात्मक दो पहलू हैं[1] ।" निर्गुण और सगुण, अज्ञात पर ज्ञेय, ब्रह्म की दो अवस्थायें हैं । अज्ञात ब्रह्म को ज्ञात करना मानव जीवन का परम लक्ष्य है । भारतीय दार्शनिक पद्धतियाँ व्यक्तिगत जीवन में ब्रह्म साक्षात्कार के साधनों का निर्देश करती रही है । श्री· अरविंद संपूर्ण मानव जाति के ब्रह्म रूप में रूपांतरित हो जाने की चर्चा करते हैं । यह अरविंद दर्शन की मौलिक देन है । अरविंद दर्शन की उपर्युक्त सभी मान्यताओं के मूल स्रोत वेद, उपनिषद्, गीता तथा शैव एवं शाक्त दर्शनों में अंतर्निहित हैं ।

4·6·2· जीवात्मा

श्री· अरविंद ने जीव और जीवात्मा शब्दों को एक ही अर्थ में प्रयुक्त किया है[2] । आत्मा शब्द से भी उनका वही अभिप्राय है । उन्हीं के शब्दों में - जीवात्मा जन्म और मरण से अतीत, सदा एकरस, वैयक्तिक आत्मा है । यह व्यक्ति की सनातन सत्य सत्ता है[3] ।

श्री· अरविंद के मत के अनुसार जीवात्मा अजन्मा, सनातन और एक है । ब्रह्म भी उनके मतानुसार अजन्मा, सनातन और एक है । अत: जीवात्मा और ब्रह्म अभिन्न हैं । उपनिषद् और गीता ने ब्रह्म को अनादि और अनंत कहा है । अत: इन ग्रन्थों के मतानुसार भी जीवात्मा और ब्रह्म अभिन्न हैं ।

1· The Life Devine- P 21

2· "मैं ने जीव और जीवात्मा शब्द, यहाँ तथा अन्य सभी स्थलों में सर्वथा एक ही अर्थ में प्रयुक्त किये हैं ।"
श्री· अरविंद के पत्र [हिन्दी अनुवाद] भाग - 1, पृ·78

3· वही, पृ·68

अरविंद-दर्शन के अनुसार ब्रह्म की तीन स्थितियाँ हैं । प्रथम स्थिति में ब्रह्म एक है । द्वितीय स्थिति में दो रूप हैं - ब्रह्म और जीवात्मा, किन्तु दोनों अभिन्न हैं । तृतीय स्थिति में ब्रह्म और जीवात्मा भिन्नता को प्राप्त होते हैं । अत: श्री· अरविंद के अनुसार जीवात्मा ब्रह्म से अभिन्न भी हैं तथा भिन्न भी । कठोपनिषद् ने जीवात्मा और ब्रह्म की भिन्नता व्यक्त की है - "मानव शरीर में निवास करनेवाले जीवात्मा और परमात्मा दोनों छाया और धूप की भाँति परस्पर भिन्न हैं[1] ।" इस कथन का तात्पर्य है कि जीवात्मा छाया की भाँति अल्पप्रकाश अल्पज्ञ हैं । और परमात्मा धूप की भाँति पूर्ण-प्रकाश स्वरूप सर्वज्ञ हैं । अत: दोनों भिन्न हैं । जीवात्मा में अल्पज्ञान पूर्ण ज्ञान रूप परमात्मा से ही प्राप्त होता है ।

गीता और उपनिषद् के कथनों के अनुसार प्रकृति के दो रूप हैं - एक रूप अजन्मा है, जो अजन्मा ब्रह्म से अभिन्न है । किन्तु प्रकृति का दूसरा रूप जो जन्म ग्रहण करता है, ब्रह्म का अंश है । श्री· अरविंद ने इन्हीं रूपों को जीवात्मा तथा अंतरात्मा कहा है । उपनिषद्×के इस वर्णन के अनुसार अन्नमय और प्राणमय पुरुष परम सत्ता के बाह्य तथा स्थूल आवरण हैं । मनोमय पुरुष सूक्ष्म है और बाह्य आवरण में व्याप्त है । विज्ञानमय पुरुष सूक्ष्मतर तथा आनंदमय पुरुष सूक्ष्मतम है और यह समस्त सत्ता में व्याप्त है । उपनिषद् एवं श्री· अरविंद की अन्नमय, प्राणमय, एवं मनोमय पुरुषों संबंधी धारणाओं में पर्याप्त समानता है । "विज्ञानमय पुरुष को श्री· अरविंद ने अतिमानस कहा है और आनंदमय पुरुष तो है ही परमात्मा अर्थात् परब्रह्म[2] ।"

1· छायातपौ ब्रह्मविदो वदंति - कठोपनिषद् 1-3-1

2· आधुनिक हिन्दी काव्य पर अरविंद-दर्शन का प्रभाव -

डॉ· कृष्णा शारदा, पृ·47

अरविंद-दर्शन की स्थापना है कि पूर्ण चेतन जीवात्मा, अवरोहण क्रम में अचेतन जड तक पहुँचने के पश्चात् आरोहण क्रम में अवचेतन वनस्पति और अर्द्धचेतन पशु के स्तरों को पार करती हुई, आज सचेतन मानव तक पहुँच पायी है । "वह अपने बाह्य स्वरूप अर्थात् देह, प्राण और मन को ही वास्तविक सत्ता समझता है[1] ।" श्री· अरविंद के अनुसार, मानव में निहित शक्ति, वही शक्ति है, जो जगत् की सृष्टि करती है । उनके शब्दों में - यह शक्ति, वह संकल्पशक्ति है, जो एक चेतना के रूप में किसी कर्म और उसके परिणाम को सिद्ध करने में लगी हुई है[2] ।

उपनिषद् ने मानव को वह मार्ग सुझाया है, जिससे वह अन्नमय, प्राणमय और मनोमय स्तरों को पारकर विज्ञानमय तथा आनंदमय लोकों में अवस्थित हो सके । अरविंद-दर्शन ने उपनिषद् की इस विचारधारा को और आगे बढाया है । यह दर्शन आनंदमयी तथा विज्ञानमयी सत्ताओं को मानव की मनोमयी, प्राणमयी तथा अन्नमयी सत्ता पर्यंत उतार लाने का मार्ग निर्दिष्ट करता है, जिससे संपूर्ण मानवसत्ता का दिव्यीकरण हो सके । इस दिव्यीकरण का परिणाम होगा, अपनी जीवात्मा के प्रति पूर्ण सचेतन अतिमानव का जन्म । श्री· अरविंद की मौलिक स्थापना है कि भावी अतिमानव अपने जीवात्मा के प्रति उतना ही सचेतन होगा, जितना कि आज का मानव अपने शरीर, प्राण और मन के प्रति है ।

1· श्री· अरविंद के पत्र (हिन्दी अनुवाद) भाग - 1, पृ·82

2· The Energy that creates the world can be nothingelse than a will, and will is only consciousness applying itself to a work and a result.
The Life Divine, p,15-16

अरविंद-दर्शन जीवात्मा को शरीर, प्राण और मन से भिन्न, इन सब का अधिष्ठाता मानता है । श्री• अरविंद का कथन है - सनातन आत्मा इस शरीर रूपी भवन का निवासी है, इस परिवर्तनशील पोशाक का पहननेवाला है । एक ही जड पदार्थ से इस भवन अर्थात् पोशाक का निर्माण होता है । यह जड पदार्थ एक ऐसा योग्य और उत्कृष्ट उपादान है, जिससे आत्मा निरंतर अपने वस्त्रों को बुनता एवं अपने भवनों की अनंत श्रेणियों का बार बार निर्माण करता रहता है[1] । एक अन्य स्थान पर श्री• अरविंद लिखते हैं - "आत्मा शरीर में उसी प्रकार निहित है जैसे मन और प्राण, किन्तु आत्मा इन तीनों को अधिष्ठित किये हैं[2] ।

कठोपनिषद् में एक सुन्दर रूपक द्वारा आत्मा को शरीर, प्राण और मन से भिन्न तथा इन तीनों का स्वामी कहा गया है - "यह शरीर रथ है, बुद्धि सारथि है, मन लगाम है, इंद्रियाँ घोडे हैं जो विषय रूपी मार्ग पर चला करते हैं और आत्मा है रथ का स्वामी[3] ।" श्री• अरविंद ने मन, प्राण और शरीर की भी-जिन सबका अधिष्ठाता आत्मा है - विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है । उनके कथनानुसार "आत्मा परम सद्वस्तु है तथा चेतना एक ऐसी सद्वस्तु है, जो आत्मा अर्थात् सत्ता में अंतर्निहित है । आत्मा सत् चित् एवं आनंद स्वरूप है । चेतना चित् है एवं चित्शक्ति भी है[4] ।"

मानव शरीर में चेतना चार भागों में विभक्त है - कंठ से हृदय तक, हृदय में, हृदय से नाभि तक, नाभि से नीचे । "मानसिक चेतना, आत्मा की

1• Sri Aurobindo - The Life Divine, p.8

2• श्री• अरविंद के पत्र (हिन्दी अनुवाद) भाग - 1, पृ•71-72

3• कठोपनिषद् - 1-3-3 तथा 4

4• श्री• अरविंद के पत्र (हिन्दी अनुवाद) भाग - 1, पृ•263

वह चेतना है, जिसका ऊपरी स्तर अतिचेतन मन है और नीचे का अवचेतन मन[1] अतिचेतन मन अर्थात् "अतिमानस" स्वयं आत्मा है तथा अवचेतन मन अचेतन सा प्रतीत होता है। आज का मानव अवचेतन मन तथा मन के प्रति सचेत है, अब अतिचेतन मन के अवतरण की प्रतीक्षा कर रहा है।

इस प्रकार श्री• अरविंद की शरीर, प्राण एवं मन संबंधी पूर्वोक्त धारणाओं के मूल स्रोत किसी अंश तक "बृहदारण्यककोपनिषद्" में खोजे जा सकते हैं, किन्तु इन मान्यताओं पर प्रमुख प्रभाव पाश्चात्य मनोविज्ञान का है। पाश्चात्य विद्वान फ्रायड के चेतन, अवचेतन और अचेतन मन के रूप, इन धारणाओं के मूल में निहित हैं, किन्तु व्याख्या की मौलिकता के कारण तथा साधना और योगानुभूति सापेक्ष होने के कारण, श्री• अरविंद के कथन अद्वितीय हैं, भले ही सर्वसाधारण केलिये रहस्यात्मक हों।

4•3•3• जगत्

अरविंद दर्शन के अनुसार जगत् ब्रह्म की अभिव्यक्ति है, अतः इतना ही सत्य है जितना ब्रह्म। अरविंद का कथन है कि "ब्रह्म जितना सत्य है, उतनी ही सत्य है, उसकी अभिव्यक्ति, क्योंकि जैसे सुवर्ण से बना पात्र, उससे भिन्न नहीं हो सकता, उसके गुण उस पात्र में विद्यमान रहते हैं, वैसे ही जगत् के उपादान कारण, अधिष्ठान और आधार ब्रह्म तथा जगत् में अभेद है[2]।"

1• श्री• अरविंद के पत्र (हिन्दी अनुवाद) भाग-1, पृ•253

2• **More over, it is a dream existing in a Reality and the stuff of which it is mode is that reality, for Brahman must be the material of the world as well as its base and continent. If the gold of which the vessel is made is real, how shall we suppose that the vessel itself is a mirage ! The Life Divine, p.32**

अरविंद मत में जगत् सच्चिदानंद ब्रह्म का प्रच्छन्न रूप है । ब्रह्म के चार तत्वों से जगत् की सृष्टि हुई है - "सत्ता (सत्), चेतनशक्ति (चित्), आनंद और अतिमन ।[1]" ये चारों तत्व जगत् में सर्वत्र व्याप्त हैं, किन्तु आवृत हैं । शक्ति और सत्ता का एकत्व, जो सभी प्राणियों और पदार्थों में समरूप से विद्यमान है[2] ।" श्री· अरविंद के शब्दों में - ब्रह्म, जगत् में इसलिये है कि जीवन के तत्वों में वह अपने आप को प्रकट करे तथा जीवन में ब्रह्म की स्थिति इसलिये है कि जीवन, ब्रह्म को अपने भीतर खोज निकाले[3] ।"

गीता में अनेक स्थलों पर ब्रह्म को "सच्चिदानंद" कहा है । अत: ब्रह्म तत्व में "सत्" और "चित्" तत्वों के साथ "आनंद" तत्व भी अंतर्भुक्त है । गीता के अनुसार इन्हीं तीन तत्वों से जगत् का निर्माण हुआ है । गीता अरविंद दर्शन संमत चौथे तत्व "अतिमन" की चर्चा कहीं नहीं करती । अत: इस रूप में इस नवीन तत्व की परिकल्पना श्री· अरविंद की अपनी है ।

---

1. We have distinguished a forefold principle of divine Being creative of the universe Existe:nce, conscious force, Bliss and supermind. The Life Divine, p.202

2. All things here are the one and indivisible---- for in truth it is always one and equal in all things and creatures and the division is only a phenomenon of the surface. The synthesis of yoga, p.108

3. Brahman is in this world to represent. Itself in the values of life. Life exists in Brahman in order to discover Brahman in itself.

The Life Divine, p.36-37

श्री· अरविंद चाहते हैं - इसी जगत् और जीवन का सत् अर्थात् आनंद की स्थिति में दिव्य रूपांतर । यही अतिमानसिक स्थिति है। यहाँ श्री· अरविंद गीता की मान्यता को और आगे ले गये हैं । उनके अनुसार जगत् की महत्ता उतनी ही है, जितनी इसके रचयिता भगवान की, क्योंकि जगत् भगवान की ही अभिव्यक्ति है । अतः श्री· अरविंद जगत् के परमानंदमयी अतिमानसिक स्थिति में परिवर्तित हो जाने के सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं । उन्होंने उपनिषद्* मत के अनुरूप जगत् को सत्य स्वीकार किया तथा इसके ब्रह्म रूप में रूपांतरित हो जाने की संभावना को दृढ़ता पूर्वक वर्णित किया तथा "ब्रह्म सत्यं, जगत् मिथ्या" माननेवाले "मायावादियों" के मत का खंडन भी प्रस्तुत किया है । श्री· अरविंद ने कहा - "यह जगत् जैसा हमें अनुभूत होता है, वैसा ही है[1] ।" ब्रह्म को सत्य और जगत् को मिथ्या कहना सम्यक् नहीं है । ब्रह्म भी सत्य है और जगत् भी सत्य है । "जगत् इस अर्थ में मिथ्या नहीं कि इसका किसी प्रकार का अस्तित्व नहीं । क्योंकि, यह केवल आत्मा का स्वप्न हो तो भी स्वप्न रूप मे आत्मा में इसका अस्तित्व है, अंतिम रूप में मिथ्या होने पर भी, वर्तमान में यथार्थ है । फिर भी जगत् माया है, क्योंकि वह अनंत सत् का मूल स्वरूप नहीं है, अपितु आत्मचेतन सत्ता की एक दृष्टि मात्र है[2] ।" श्री· अरविंद के अनुसार सूक्ष्म जगत् को देखनेवाले सूक्ष्म उपकरण अर्थात् अंतर्दृष्टि आदि वे सूक्ष्म इंद्रियाँ हैं, जिन्हें साधना द्वारा उद्घाटित किया जा सकता है श्री· अरविंद की दृढ धारणा है कि जीवन और जगत् का दिव्य रूपांतर सिद्ध होने के पश्चात् सूक्ष्म इंद्रियाँ स्वतः उद्घाटित होंगी ।

---

1. This is the world, as we experience it.
   The Life Divine, p.78

2. World is not unreal in the sense that it has so sort of existence, for even if it were only a dream of the self, still it would exist in it as a dream, real to it in the present even while ultimately unreal --- still world is Maya because it is not the essential truth of infinite existence, but only a creation of self-conscious being.
   The Life Divine, p.95

4·8·4· अतिमानस

अतिमानस श्री· अरविंद की नितांत मौलिक कल्पना है । उनके अपने शब्दों में - "सुपरमाईंड" अर्थात् अतिमानस और "सुपरामैंटल" अर्थात् अतिमानसिक - शब्द सबसे पहले मैं ने ही प्रयुक्त किये थे[1]।" तथा "इस विचार का ज्ञान मुझे वेद या उपनिषद् से नहीं प्राप्त हुआ और मुझे ज्ञात नहीं कि इस प्रकार का कोई विचार उनमें है भी । अतिमानस विषय ज्ञान मुझे सीधा अपने अनुभव से प्राप्त हुआ, किसी दूसरे द्वारा प्राप्त किये गये ज्ञान से नहीं । इसे पुष्ट करनेवाले उपनिषद् और वेद के कतिपय मंत्र केवल पीछे से मेरे देखने में आये[2]।" श्री· अरविंद ने विज्ञानमय पुरुष अर्थात् जीवात्मा को ही अतिमानस कहा है और मानव जीवन का लक्ष्य, अतिमानसिक चेतना को मन, प्राण एवं शरीर पर्यंत उतार लाना, निर्देशित किया है ।

श्री· अरविंद के विकासवाद तथा अतिमानवतावाद और डारविन तथा नीत्शे के सिद्धांतों में यही अंतर है, जो भौतिकतावाद एवं अध्यात्मवाद में हो सकता है । भौतिकवादी केवल भौतिक जगत् की चर्चा करता है तथा भौतिक उन्नति का मार्ग खोजता है । अध्यात्मवादी इससे ऊपर उठकर आत्मोन्नति की राह पर अग्रसर होता है । डारविन का विकासवाद जड, वनस्पति, पशु तथा मानव शरीर अर्थात् जगत् की भौतिक

---

1. The Words supermind and supramental were first used by me.

   Sri Aurobindo on Himself and on the Mother, p.170

2. I did not I learn the idea from veda or upanishad and I do not know if there is anything of the kind there what I received about the supermind was a direct, not a derived knowledge given to me; it was only afterwards that I found certain confirmatory revelations in the upanishad and veda.

   Sri Aurobindo on Himself and on the Mother, p.173

वस्तुओं के विकास तक ही सीमित है । श्री० अरविंद शरीर के भीतर निवास करनेवाली अंतरात्मा के विकास की चर्चा करते हैं, जिसकी अगली तथा अंतिम स्थिति होगी अतिमानस ।

डारविन के "योग्यतमावशेष"[1] के सिद्धांत से भी, जिसके अनुसार अधिक योग्य, कम योग्य का नाश करके आगे बढ़ता है । श्री० अरविंद का विकास सिद्धांत कुछ भिन्न है । श्री० अरविंद जीवन और जगत् की केवल प्रगति ही नहीं चाहते, अपितु वे इन्हें दिव्य चेतना में रूपांतरित कर देना चाहते हैं । धरती पर स्वर्ग उतर आने तथा उसपर भगवान् रूप अतिमानव का राज्य स्थापन होने की भावना, एक ऐसी अलौकिक भावना है, जिसकी इस रूप में परिकल्पना आज तक और किसी ने नहीं की थी ।

4.8.5. मोक्ष

श्री० अरविंद वैयक्तिक मोक्ष के बदले सामूहिक मोक्ष पर ज्यादा बल देते थे । उनकी यह दृढ धारणा है कि समूचे समाज को पतितावस्था में छोड़कर दो चार व्यक्तियों के मोक्ष पा लेने से मानव-समाज का कोई लाभ नहीं है । अत: उन्होंने वैयक्तिक मोक्ष का खंडन कर उन बाह्य और आन्तरिक परिस्थितियों के नवीन संगठन पर बल दिया है जिनके द्वारा मनुष्य का सामूहिक उन्नयन हो सके तथा इसी स्वर्गोपम धरती पर एक देव जाति का विकास हो सके ।"[2]

---

1. **survival of the fittest - Darvin**

2. **The Desting of ' The Individual Aurobindo collected in 'The Life Divine' Pondicherry, 1955,pp.49-50**

4·9· अरविंद दर्शन के मूल सिद्धांत लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में

ब्रह्म, जगत्, जीवात्मा, अतिमानस, मोक्ष आदि की दृष्टि से पन्तजी की लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में अभिव्यक्त दार्शनिक विचारों को समझा जा सकता है ।

4·9·1· ब्रह्म

अरविंद दर्शन के अनुसार ईश्वर स्वयं निष्क्रिय है, विश्वमाता के रूप में प्रकृति उसे क्रियावान बनाती है । इसलिये अरविंद दर्शन में प्रकृति को बहुत अधिक महत्व दिया गया है । पन्तजी ने प्रकृति को ब्रह्म की आदिशक्ति कहा है -

"आदि शक्ति सी, नित नव, स्वयं प्रकाशित,"[1]

अरविंद दर्शन के अनुसार पन्तजी भविष्यदर्शीदृष्टि से धरती पर विश्वमाता का अवतरण देख रहे हैं -

"मा, इन युग मूल्यों को अतिक्रम कर मन
देख रहा मानव भविष्य ध्यानस्थित, -
उतर रहा स्वर्णिम प्रकाश रस निर्झर
जिसमें तुम चित् किरणों में रेखांकित ।"[2]

इस प्रकार पन्तजी ने प्रकृति को ब्रह्म की पराशक्ति कहा है । इस रूप में वह सकल सृष्टि में व्याप्त है -

---

1· लोकायतन - पन्त, पृ·8

2· वही, पृ·23

"पराशक्ति तुम, निखिल भुवन में व्यापक,"[1]

परा रूप में यह शक्ति असीम, शाश्वत और पूर्ण है तथा अपरा रूप में यही असीम, क्षणिक और अपूर्ण है। सृष्टि निरन्तर अपूर्णता से पूर्णता की ओर अग्रसर हो रही है -

"तम प्रकाश, जड चेतन को उपकृत कर
मुझे पूर्णता में होना निज विकसित,
सीमा में निःसीम, क्षणिक में शाश्वत,
भू रज में कर भगवत् स्वर्ग प्रतिष्ठित[2]।"

अपूर्ण मानव का पूर्णता की ओर अभियान अरविंद-दर्शन का मूल अभिमत है। पूर्णता से अपूर्णता की ओर अवरोहण में आनंद तथा विज्ञान अर्थात् अतिमन, मन, प्राण और अन्न सोपान हैं तथा अवरोहण क्रम इसके सर्वथा विपरीत है। श्री॰ अरविंद ने इन सभी सोपानों को ब्रह्म की अभिव्यक्ति कहा है और पन्तजी ने भी -

"अन्न ही ब्रह्म, जिसमें भव उद्भव स्थिति लय,
प्राण ही ब्रह्म, जो महत् अन्न का आश्रय!
मन ब्रह्म - उभय ही अन्न प्राण का आलय,
विज्ञान ब्रह्म, जो इन सब का महदाशय[3]।"

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ॰28
2. वही, पृ॰28
3. वही, पृ॰243

ब्रह्म सत्, चित् और आनंद स्वरूप है और जगत् उसकी अभिव्यक्ति है -

"एक सत् चित् आनंद प्रकाश
निखिल अग जग जीवन में व्यक्त ।"[1]

इस प्रकार विभिन्न सोपानों से अवरोहित होता हुआ, निराकार ब्रह्म ही जीवन में साकार हुआ है -

"बहु सोपानों में विचर उतर
साकार हुआ मैं जीवन में ।"[2]

एक ब्रह्म का अनेक रूप धारण करना तथा ब्रह्म की आनंद स्वरूपता की सृष्टि के कण-कण में रस रूप में परिव्याप्ति, वेद उपनिषद् में वर्णित है । श्री॰ अरविंद ने भी इसे स्वीकार किया है और कवि पन्तजी ने भी आनंद रूप मैं हूं अपूर्ण,

"मैं स्वत: एक से बहु बनकर
इंद्रिय मांसल भू जीवन में
रस मूर्त-सत्य शिव से सुन्दर ।"[3]

इस प्रकार का वर्णन परम्परागत है ।

पन्तजी ने सत्यकाम में अन्न, प्राण, मन और विज्ञानमय स्थितियों के संचरण का उल्लेख करते हुए दार्शनिक मुक्ति की स्थापना की है ।

1· लोकायतन - पन्त, पृ॰63

2· वही, पृ॰629

3· वही, पृ॰628

"अन्न प्राण मन के भुवनों के प्रति विरक्त हो
आत्मा के आलोक शृंग पर आरोहण कर,
दीप शलभ से लीन हो गये भस्म काम मन ।[1]"

x x x

नई धेनुयें रंभा रही थीं ध्यान-भूमि में,
मूर्त हो रहे दीपित भावों में उनके स्वर,
दुग्ध धार पोषित करती इंद्रिय-वत्सों को ![2]"

"सत्यकाम" में पन्तजी प्रारंभ में ब्रह्म के स्वरूप का उपनिषद् सम्मत रूपांकन प्रस्तुत करते हैं और तब उस सिद्धान्त के अनुभव सम्मत व्यवहारीकरण की योजना केलिये पक्षियों द्वारा उपदेश की व्यवस्था करते हैं । ब्रह्म के स्वरूप-निर्धारण केलिये पहले प्रश्न और फिर उत्तर शैली में समाधान उपनिषद् की प्रमुख विशेषता है । "सत्यकाम" की प्रश्न शैली में जिज्ञासा यहाँ उद्धृत है -

"रवि को गिरता देख पंख-हत अग्निविहग सा
धूम्र-क्षितिज में-सोचा करता विस्मय-हत मन,
कौन किये धरती को धारण ? किस पर अटका
वन प्रदेश ? ये वृक्ष, विहग, पशु किन देवों के
प्रतिनिधि ? - कैसे नेत्र देखते, श्रुतियाँ सुनाती ?[3]"

पन्त जी ने इस परम्परागत चिन्तन के अतिरिक्त "सत्यकाम" में अरविंद दर्शन के परिप्रेक्ष्य में छान्दोग्य के चतुष्पाद ब्रह्म की नई व्याख्या भी की है, इस दृष्टि से यह आधुनिक तत्व विश्लेषण का

1· सत्यकाम - पन्त, पृ·82

2· वही, पृ·84

3· वही, पृ· 5

काव्य सिद्ध होता है । छान्दोग्य में अद्वैत वेदान्त की दृष्टि से संसार और संसार बन्धन का अत्यन्ताभाव विचारणीय विषय है । दैहिक स्तर पर विचार करते हुए प्राण, मन, आत्मा का निरूपण तथा समष्टि स्तर पर सेवा, त्याग, तप, सत्य और विनय का महत्त्व प्रतिपादित करना उपनिषद् का लक्ष्य रहा है । प्राण संकट और प्राण रक्षा के प्रश्न पर मानवतावादी दृष्टि से विचार किया गया है । सत्यकाम द्वारा गोवंश की वृद्धि का संकल्प, सेवा, त्याग, तप और सहिष्णुता का परिचायक है । वृषभ, अग्नि, हंस और मद्गु के प्रतीकों से उपनिषद् ऋषि ने जैविक और आध्यात्मिक स्तर पर चेतना के क्रमारोहण को स्पष्ट किया है । पदार्थ, मानस, अधिमानस, अतिमानस और सच्चिदानंद के क्रम से ही चेतना का ऊर्ध्वीकरण होता है । इन्हें अन्नमय प्राणमय आदि पाँच कोशों के समानान्तर माना जा सकता है । यही मुक्ति की प्रक्रिया है । चेतना से संपर्कित होने के कारण ही जगत् सुन्दर है, ग्राह्य है । शंकर के आत्यन्तिक निषेध का खण्डन करते हुए अरविंद ने चेतना के दिव्यीकरण का वैज्ञानिक पक्ष प्रस्तुत किया है ।

ब्रह्म के संबंध में श्री· अरविंद की मौलिक स्थापना है कि जिस प्रकार ब्रह्म में जगत् अभिव्यक्त हुआ है, उसी प्रकार अब जगत् में ब्रह्म अभिव्यक्त होगा अर्थात् आज का संपूर्ण मानव अर्थात् अतिमानव के रूप में धरती पर जीवन व्यतीत करेगा । "लोकायतन" के अन्त में पन्तजी ने श्री· अरविंद की इसी स्थापना को अभिव्यक्त किया है -

"प्रथम बार अब जगत ब्रह्म में
ब्रह्म जगत में हुआ प्रतिष्ठित ।"[1]

1· लोकायतन - पन्त, पृ·680

"रस सूर्योदय"[1] कविता में पन्तजी ने ब्रह्म की शक्ति के अवरोहण, जड चेतन सृष्टि की रचना और विकास का रहस्य थोडे मे शब्दों में कह दिया है । एक पंक्ति में पन्तजी ने ब्रह्म को स्थाणु विशेषण दिया है । यह स्थिरता ब्रह्म की प्रथमावस्था है । द्वितीयावस्था में ईश्वर रूप से मन, प्राण और इन्द्रियाँ आदि जन्म ग्रहण करती है । इस प्रकार समस्त जड चेतन सृष्टि में ईश्वर रस रूप में समा जाता है । जीवन और जगत् में वही रस शुद्ध और उज्वल प्रेम के रूप में समा जाता है । जीवन और जगत में वही रस शुद्ध और उज्ज्वल प्रेम के रूप में, संपूर्ण चराचर को एक सूत्र में बाँधे हुए हैं -

"अग जग ईश्वर का निवास
स्मित प्रेम-तत्व ही ईश्वर,
स्थाणु-ब्रह्म में इंद्रिय-अंकुर
फूट रहे रस-उर्वर[2] ।"

पन्तजी ने ब्रह्म के मूर्तरूप को बार बार प्रेम की ही संज्ञा दी है -

"प्रेम है ईश्वर, यह निःसीम प्रेम है !
सत्यं ब्रह्मन्, ज्ञानं ब्रह्मन्,
शक्ति स्वरूप
अनंत ब्रह्मन् -
पूर्ण प्रेम ही ब्रह्म, सत्य, शिव,
शुद्ध ज्ञान, मांगल्य शक्ति है[3] ।"

---

1. किरणवीणा - पन्त, पृ.25
2. वही, पृ.25
3. वही, पृ.54

इन पंक्तियों में ब्रह्म के अनेक रूपों के वर्णन के साथ, पन्तजी ने ब्रह्म की शक्ति की भी चर्चा की है । अरविंद दर्शन में शक्तिमयी माँ भगवती को बहुत अधिक महत्व दिया गया है क्योंकि वही निष्क्रिय ब्रह्म को क्रियावान बनाती है । पन्तजी ने शक्ति को उमा नाम से संबोधित करते हुए निवेदन किया है -

"उमा
जगन्माता तुम, श्री तुम,
विश्व प्रेममयी,
भूजन को सित प्रेम दृष्टि दो
पूर्ण, अखंड, समग्र दृष्टि दो ![1]"

श्री अरविंद की मान्यताओं के अनुसार माँ भगवती की कृपा के बिना मानव पूर्णता और समग्रता की ओर अग्रसर नहीं हो सकता । पन्तजी ने एक जगह कहा है कि सृष्टि ब्रह्म की सृजनेच्छा का परिणाम है । सृजन और संहार दोनों ही ब्रह्म के कार्य हैं तथा सृष्टि के क्रमिक विकास में एक दूसरे के पूरक हैं -

"मैं वसंत की आत्मा, जिसके अमृत स्पर्श से
सृष्टि-बीज अंकुरित पल्लवित होता प्रतिपल !
मैं शोभा आनंद प्रेम की मंगल आत्मा,
पतझर मेरी अंग समुपस्थिति, क्रम नियमों से परिचालित ![2]"

---

1. किरणवीणा - पन्त, पृ.55
2. वही, पृ.210-211

ब्रह्म अपनी अद्वितीय एकाकी अवस्था में निष्क्रिय है उसे क्रियावान् एवं सार्थक बनाती है उसकी अपनी दिव्यशक्ति अत: यही दिव्य-शक्ति अर्थात् विश्वप्रकृति सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और लय के मूल में विद्यमान है -

"निष्क्रिय साक्षी बन
क्या हाय, करेगा आत्मन् ?
अद्वितीय, एकाकी,
अपने में स्थित, निर्जन [1] ।"

4.9.2. जगत्

अरविंद दर्शन के अनुसार जगत् ब्रह्म की अभिव्यक्ति है, अत: उतना ही सत्य है जितना ब्रह्म । जगत् के जड और चेतन, शाश्वत और नश्वर सभी रूप एक सत्य ब्रह्म की अभिव्यक्ति है । पन्त जी का अभिमत भी यही है -

"चेतन ही जड, जड ही चेतन, जीवन,
बूझ न पाती सूक्ष्म तत्व तार्किक मति,
मन ही बाहर स्थिति, स्थिति ही भीतर मन,
ह्रास विकासमयी गुणों की गति, परिणति [2] ।"

अंतर और बाह्य जगत की ह्रास विकासमयी स्थितियों का ज्ञान, श्री अरविंद की स्थिति में, श्रद्धा के मार्ग से प्राप्त किया जा सकता है ।

---

1. पौफटने से पहले - पन्त, पृ. 14
2. लोकायतन -पन्त, पृ. 11

इस ज्ञान की उपलब्धि के पश्चात् जगत् के कण कण में परम चैतन्य की उपस्थिति का अनुभव होने लगता है। पन्तजी ने उस मानव जीवन को धिक्कारा है, जो इस उपस्थिति का अनुभव नहीं कर सकता -

"धिक् जीवन, प्रभु की बहुमुखता का
बन न जो रह सका मुग्ध सहचर,
धिक् वह हृदय, प्रणय रस तन्मय हो
देख न सका जगत ही में ईश्वर [1]।"

"किरणवीणा" में भी पन्तजी ने श्री० शंकराचार्य के मायावादी दर्शन का खंडन किया है -

"सर्प रज्जु भ्रम में फँसकर हा,
(माया मिली न राम!)
शून्य में लटका छूँछा
ब्रह्मवाद का
ज्योति-अंध मन [2]।"

"गीत-अगीत" में भी पन्तजी शंकर दर्शन के "जगन्मिथ्या" की उपेक्षाकर भू जीवन के सत्य की प्रतिष्ठा करते हैं -

"ओ विरक्त मन
इन्द्रियचारी बन!
इन्द्रिय-पथ से ही सुलभ

1· लोकायतन - पन्त, पृ·567
2· वही, पृ·58

ईश्वर-दर्शन

तू मन इन्द्रिय विहारी बन ।

xx xx xx

नाम-रूप का संसार

ईश्वर ही साकार ।

इन्द्रिय ही मन्दिर-द्वार

मुक्त कर अभिसार ।"[1]

श्री अरविंद की भाँति पन्तजी ने भी जगत् में आत्मा के जीवन की उपस्थिति को निश्चित माना है । उनकी मान्यता है कि वैज्ञानिक एवं भौतिक उन्नति तो मात्र साधन है, साध्य है आध्यात्मिक परिणति

"साध्य नहीं विज्ञान, मात्र साधन,

बोध साध्य का जन हित आवश्यक,

मानव आत्मा के जीवन के हित

निर्मित यह जग, - प्रकृति नहीं बाधक ![2]"

पन्तजी ने श्री अरविंद के जगत् के आध्यात्मिक परिणतिवाले सिद्धान्त को ग्रहण किया है -

"भव का आध्यात्मिक विधान निश्चित ।[3]"

मध्ययुगीन पलायनवादी एवं मायावादी दर्शनों का खंडन करते हुए पन्तजी ने कहा है कि जगत में आध्यात्मिक विधान का स्थान वीतराग

---

1. गीत - अगीत - पन्त, पृ.164
2. लोकायतन - पन्त, पृ.601
3. वही, पृ.601

वैरागियों अथवा मुक्ति के इच्छुक ज्ञानियों द्वारा नहीं होगा । यह कार्य सिद्ध होगा जगत् जीवन और उसके स्रष्टा के प्रेमियों द्वारा -

"निश्चय वे ही प्रभु के प्रेमी
जो जीवन में उसका आनन
देखते, - उसे मंगल मूर्तित
करते, रचते जन भू प्रांगण[1] ।"

पन्तजी ने श्री अरविंद की इस स्थापना को भी स्वीकार किया है कि जगत् और जीवन के वास्तविक रूपान्तर केलिये केवल आंतरिक जगत् को ही अपितु बहिर्जगत् के जगत् के रूप-परिवर्तन की भी आवश्यकता है -

"आध्यात्मिक सत्यों के बल पर
संभव न धरा का रूपांतर
जब तक न बहिर्जग की आकृति
बदले मानव मंगल हित नर[2] ।"

श्री अरविंद ने शंकराचार्य के "ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या" सिद्धान्त का खंडन किया है । "जगन्मिथ्या" जैसी मध्ययुगीन मान्यताओं का खंडन करते हुए पन्तजी ने भी कहा है -

"वे मध्ययुगों के अर्धसत्य
जड से चेतन को कर विभक्त
जो गैरिक द्वाभा तम ओढे
जीवन प्रति मन करते विरक्त !
क्षण सत्य मृगाओं में खोये,
ज्ञानांध, बुद्धि मरु में भटके,
जग में ईश्वर को देख न पा,
वे मुक्ति शून्य नभ में लटके[3] ।"

4.9.3. जीवात्मा

अरविंद दर्शन की व्याख्या के अनुसार ब्रह्म और जीवात्मा अभिन्न भी है और भिन्न भी। अभिन्नावस्था में जीवात्मा ब्रह्म के ही समान अजन्मा और अनादि है। आत्मा, शरीर, प्राण और मन से भिन्न, इन सब का अधिष्ठाता है। उपनिषद् ने आत्मा को शरीर रूपी रथ का स्वामी माना है। पन्त ने निम्न पंक्तियों में यही भाव व्यक्त किया है

"यह आत्मा अमर रथी, नर तन जीवन रथ,
सारथि सद्बुद्धि, मनस् प्रग्रह, भू असिपथ।"[1]

आत्मा स्वयं ही मन, प्राण और शरीर का आवरण निर्मित करती है और पुन: इन आवरणों के क्रमिक विकास में संलग्न रहती है

"मन प्राण देह का सृजन यंत्र कर निर्मित
जीवन विकास क्रम में आत्मा अंत: स्थित[2]।"

विकास की अंतिम परिणति में आत्मा अपने आवरण को भी अपनी दिव्यज्योति में रूपांतरित कर देगी। श्री अरविंद के इस अमर संदेश को पन्तजी ने इस प्रकार अभिव्यक्त करने का सफल प्रयत्न किया है -

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.239
2. वही, पृ.232

"लघु व्यक्ति-चेतना कोष बद्ध भू मानव
अपने को लाँघ करे विकास क्रम संभव !
हो विश्व मनस् से व्यक्ति मनस् संचालित,
आत्मा से जीवन, जीवन से मन शासित !"[1]

जीवात्मा को ही दिव्यपुरुष अथवा ईश्वर कहा गया है । उसी के प्रकाश से संपूर्ण सृष्टि प्रकाशवान् है । जीवात्मा का अंश ही अंगुष्ठमात्र रूप ग्रहण कर देह, प्राण और मन का शासन करता है -

"अंगुष्ठ मात्र, निर्धूम ज्योतिवत् वह स्थित
उस शुभ्र पुरुष से देह प्राण मन शासित !
वह अक्षर, भूत भविष्य मद्य का ईश्वर,
जिसके प्रकाश से दीपित बाहर भीतर ।"[2]

इस प्रकार पन्तजी की जीवात्मा संबंधी मान्यतायें उपनिषदों की शब्दावली से प्रभावित है । विशेषतया जीवात्मा के शरीर, प्राण और मन रूपी आवरणों का विवरण अरविंद दर्शन के अधिक अनुकूल है । सत्य आत्मा है और आवरण उसी के विविध रूप और गुण हैं -

"सत्य एक ही, विविध रूप गुण नाम ।"[3]

"आत्मचेतन"[4] कविता में कवि जीवात्मा को ब्रह्म का अंश और जगत् को ब्रह्म की अभिव्यक्ति मानता हुआ, इस विस्तार को त्रिमुखी कहता है

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.232
2. वही, पृ.239
3. वही, पृ.36
4. पतझर एक भावक्रांति - पन्त, पृ.30

"अब अपनापन ही अपनापन
में, तुम या जग
विलग नहीं थे हुए एक क्षण,
सदा एक ही रहे प्राणमन ।
ऊर्ध्व, गहन, व्यापक -
यह प्रज्ञा का त्रिकोण भर ।"[1]

अरविंद-दर्शन के अनुरूप पंतजी ने अंतरात्मा को जीवात्मा का अंश कहा है -

"तुम असीम के अंश,
अंश क्षण-बिंदु तुम्हारा
भूमा ही की सार्थकता में
सार्थक अग-जग सारा ।"[2]

4.9.4. अतिमानस

अतिमानस श्री. अरविंद की नितांत मौलिक परिकल्पना है । यह कोरी कल्पना ही नहीं, उनका निजी अनुभव है । पूर्ण योग की साधना द्वारा अतिमानसिक स्तर को अधिकृतकर, पुनः उन्होंने इस ऊर्ध्व चेतना के धरती पर अवतरण के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है । श्री अरविंद की मौलिकता उस विधान के निरूपण में है, जिसके द्वारा यह परम चेतन शक्ति संपूर्ण जीवन और जगत् को ईश्वरीय दिव्यता में पुनः गढ देगी ।

---

1. पतझर एक भाव-क्रांति, पन्त, पृ.30
2. वही, पृ.16

पन्तजी ने अरविंद साहित्य के अध्ययन से अतिमानसिक चेतना तत्व को ग्रहण और स्वीकार किया और पुन: अपने काव्य में नवचेतना, दिव्यचेतना तथा ऊर्ध्वचेतना आदि नामों से इसे अभिहित किया । "लोकायतन" में पन्तजी ने दिव्यचेतना की पृष्ठभूमि पर नवमानवता के अवतरण की गाथा सजाने का प्रयत्न किया है -

"शतियों के मृत संस्कारों से मर्दित
पृष्ठ वंश हो मानव का नव चेतन[1] ।"

"किरणवीणा" में दिव्यचेतना "एक तृण किरण" के रूप में अपना परिचय देती है । दिव्य चेतना का कार्य है - नव मानव का निर्माण तथा धरती की स्वर्ग में परिणति -

"नहीं, मुझे उर्वर भू रज से
नया मनुज गढना अब,
उसमें फूंक
स्वर्ग की साँस
अगोचर[2] ।"

कवि को विश्वास है कि नव मानव अपनी दिव्य चेतना से हृदय के नये क्षेत्रों का उद्घाटन करेगा -

"नया मनुज
किरणों के कर से
खोले नया हृदय वातायन[3] ।"

1· लोकायतन - पन्त, पृ·7

2· किरणवीणा- पन्त, पृ·1

3· वही, पृ·1

अतिमानव देवता तुल्य होगा, पंतजी ने श्री अरविंद की इस मान्यता को स्वीकार करते हुए कहा है -

"नयी देव श्रेणी को
जन्म दे गया, लो मैं
नव मूल्यों में नये प्राण भर[1] ।"

कवि विश्वप्रकृति की चेतनशक्ति के अवतरण का दृश्य उपस्थित करता है और मानव के उज्ज्वल भविष्य के प्रति विश्वास व्यक्त करते हुए कहता है -

"मा, इन युग मूल्यों को अतिक्रमकर मन
देख रहा मानव भविष्य ध्यान स्थित, -
उतर रहा स्वर्णिम प्रकाश रस निर्झर
जिसमें तुम चित् किरणों में रेखांकित[2] ।"

कवि पुनः मानव के भीतर स्थित चेतना के नव विकास की भी चर्चा करता है -

"नई चेतना निखर रही उर मणि से
शत सुरधनुओं की ज्वाला से मंडित,
बदल रहा भव वस्तु ज्ञान विकसित हो,
भाव-बोध, इंद्रिय, मन, प्राण प्रहर्षित[3] ।"

---

1. किरणवीणा - पन्त, पृ.10
2. लोकायतन - पन्त, पृ.23
3. वही, पृ.24

ऊपर से भागवत् कृपा का अवतरण और नीचे से उस कृपा को ग्रहण करने केलिये मानव की तैयारी, इस दुहरे प्रयास का संकेत पन्तजी ने अरविंद - दर्शन से ग्रहण किया है । अरविंद दर्शन से प्रभावित कवि पन्त ने "लोकायतन" में आज के मानव केलिये संदेश देते हुए कहा है -

"मनुज को अर्जित करनी आज,
धरा पर ईश्वरत्व की शक्ति,
लोक - अंतर्मन का निर्माण
कर सके जो, संस्कृत हो व्यक्ति[1] !"

और साथ ही यह अभिलाषा भी प्रकट की है कि -

"प्रकृति विजित वह, बने आत्मविजयी
सृष्टि कोश उपकृत हो नव नर,
सका विकास, प्रतीक्षा में जड-चित् -
ईश्वर का नर में हो रूपांतर[2] ।"

यही अतिमानसिक रूपांतर है । अतिमानव के जन्म की ऐसी ही भविष्यवाणी श्री अरविंद ने की है । लोकायतन में ऊर्ध्व विकास के हितार्थ मानव और विश्व प्रकृति दोनों स्तरों पर चल रहे राजनीतिक, सांस्कृतिक, कलात्मक प्रयत्नों की विस्तृत व्याख्या उपस्थित करने के पश्चात् अन्त में पन्तजी ने यह विश्वास प्रकट किया है कि -

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.412
2. वही, पृ.561

"जन्म ले चुका अब नव मानव
जड चित् को कर रस संयोजित,
धरा स्वर्ग कल्पना न रह अब
जन जीवन में होता मूर्तित ।"[1]

पन्तजी ने "किरणवीणा" में श्री अरविंद की अतिमानसिक अनुभूति को भी वर्णित करने का प्र यास किया है । अतिमानव देवतुल्य होगा, पन्तजी ने श्री अरविंद की इस मान्यता को स्वीकार करते हुए कहा

"नयी देवश्रेणी को
जन्म दे गया, लो, मैं
नव मूल्यों में नये प्राण भर ।"[2]

मानव के गुह्य अंतर में दिव्य अतिमानसिक शक्ति का प्रकाश विद्यमान है । ऊपर से दिव्य ज्योति का अवतरण होने पर, मानव का अंतरबाह्य दिव्य हो जायेगा -

"एक सूर्य अब अस्त हुआ
मानव आत्मा में -
बिखर रह चैतसिक धूम
बन घन तारांबर
अरुणोदय होने को उर में
एक ज्योति झुक रही
क्षितिज से
मानव भू पर ।"[3]

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.680
2. किरणवीणा - पन्त, पृ.10
3. वही, पृ.10

जिस प्रकार पशु से मानव विकसित हुआ, उसी प्रकार मानव से देवता विकसित होगा और यह नव मानव धरती पर ईश्वरीय जीवन व्यतीत करेगा -

"देव मनुज पशु
नया मनुज बन जीएँगे जब,
तब होगा चरितार्थ
धरा पर जीवन ईश्वर ।"[1]

श्री॰ अरविंद की मान्यताओं के आधार पर ही पन्त जी कह रहे हैं कि जिस प्रकार पौधे के जन्म से पूर्व धरती को तैयार करना पड़ता है, उसी प्रकार नव मानव के जन्म केलिये भी आज के मानव मन रूपी आधार को तैयार करना होगा -

"जन्म ले रहा नया मनुज
स्वप्नों के उर के भीतर,
अभी वस्तु-आधार न प्रस्तुत
उतर सके जन-भू पर !"[2]

श्री अरविंद से प्रभावित पन्तजी का मत यही है कि मध्ययुगों में आत्मा का दिव्य चैतन्य मन और तन की परिधि में बन्दी बना रहा, किन्तु आधुनिक युग में इस स्थिति में परिवर्तन हो रहा है । चेतना, तन, मन का अतिक्रम कर अतिमन की ओर बढ रही है -

---

1· किरणवीणा - पन्त, पृ·11

2· वही, पृ·77

"पंजर भी तन के तृण का !
बन्दी आत्मा मन !!
परम्परा ?
यह उसका
मृत्य युगी रूपांतर,
अतिक्रम कर
सीमा अतीत की
बढ़ता नित नट ![1]"

श्री अरविंद के मतानुसार अंतरात्मा ही विकसित होती हुई, बार बार नया युगांतर उपस्थित करती है । अंतरात्मा की मूल शक्ति अभी तक मानव के हृदय में बंदी है । भविष्य में वह मानव की संपूर्ण चेतना में समा जायेगी । निम्न पंक्तियों में पन्तजी इसी शक्ति का आवाहन कर रहे हैं -

"इसीलिये,
चाहता प्रीति की शुभ्र पीठ बन
हृदय ज्योति का करो,
देह-रज कर आवाहन ![2]"

यह दिव्य चेतन शक्ति ब्रह्मरंध्र के मार्ग से जहाँ सहस्रदल कमल खिला रहता है - मानव के अंतर में प्रवेश करती है -

"अंतर पथ से उतर -
जहाँ उत्फुल्ल
चेतना का ज्योतिर्मय
श्री सहस्रदल ।[3]"

---

1. पौ फटने से पहले - पन्त, पृ.121
2. वही, पृ.84
3. वही, पृ.15

ब्रह्म:ग्निखंड में ब्रह्म के द्वितीयपाद का उपदेश अग्नि देता है । वहाँ अग्नि चेतना के दूसरे स्तर मन का प्रतीक है जिसमें अनजानी तृष्णायें और सूक्ष्म वासनायें विद्यमान हैं । वृषभ यदि पदार्थ की चेतना है तो अग्नि सृजन की चेतना कही जा सकती है । चेतना के प्रकाश में अस्मिता का नाश इसका लक्ष्य है । पदार्थ चेतना के स्पर्श से गतिशील होता है, पन्तजी ने इसे "दिव्यवृषभ स्पर्श" कहा है पर मन की दमित कामनायें उस चेतना को पंकिल करती हैं । पन्तजी इसीलिये, इस खण्ड में सामाजिक-सांस्कृतिक प्रगति की चर्चा करते हैं और व्यक्ति-मानस से बढ़कर जनमानस के निर्माण पर बल देते हैं । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध के व्यापार को यहाँ सार्थक माना गया है । इन्हीं के संतुलित उपयोग से सीमित मन या अधिमानस अतिमानस में लय हो जाता है -

"ईश्वर के इस जग में आकर मुझको अपनी
इच्छाओं को भी तो ईश्वर ही की इच्छा
मान, उन्हें जीवन मंगल केलिये निरंतर
सदुपयोग में लाना है, - इस सीमित मन के
पाप पुण्य सदसत् के मूल्यों से ऊपर उठ -
कृत्रिम जो, खंडित-जीवन स्थितियों से प्रेरित ।"[1]

4.9.5. मोक्ष

श्री अरविंद के अनुसार पन्तजी ने भी वैयक्तिक मोक्ष के बदले सामूहिक मोक्ष की स्थापना की है । पन्तजी ने "लोकायतन" में अपना यह आग्रह इस प्रकार स्थापित किया है -

---

1. सत्यकाम - पन्त, पृ.138

"वैयक्तिक मुक्ति निरर्थक,
वह आंशिक, आत्मिक स्तर पर,
सामूहिक गरिमा में ही
मूर्तित जग जीवन, ईश्वर !"[1]

"लोकायतन" में एक रोचक प्रसंग इन्द्र के साथ संबद्ध है । कवि की दृष्टि में इन्द्र वैयक्तिक मोक्ष के विरोधी और सामूहिक मोक्ष के प्रबल पक्षधर है । पन्तजी ने मनुष्य के सिद्धि पथ में अप्सरा-विघ्न एवं अन्य विघ्नों को डालकर बाधक बननेवाले इन्द्र के व्यक्तित्व में नितान्त नवीन अर्थवत्ता भर दी है । इनकी दृष्टि में इन्द्र दूसरों की सिद्धि से ईर्ष्या रखनेवाले अथवा अपनी गद्दी के छिन जाने के भय से दूसरों की यात्रा बिगाडनेवाली विद्वेषी इन्द्र नहीं है । जब किसी व्यक्ति ने शेष समाज को कष्ट-कटकोंमें छोडकर केवल अपनी मुक्ति केलिये प्रयास किया है तब इन्द्र ने वैसे स्वार्थी साधक के पथ में विघ्न उपस्थित किया है । अपनी धारणा स्पष्ट करते हुए इन्द्र ने "वंशी" मे कहा है -

"यह सत्य नहीं, ओ साधक,
मैं नहीं मनुज विद्वेषी
या धरा स्वर्ग हित बाधक !
x xx x
भू-जन मति-मंद, असत् को
सत् कहते नहीं अघाते ।"[2]

इस प्रकार "लोकायतन" के इन्द्र ने वैयक्तिक मोक्ष के शुष्क उपासकों का खुलकर खण्डन किया है ।

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.180
2. वही, पृ.207

"गीत-अगीत" में भी पन्तजी इसी आशय पर बल देकर माँ सरस्वती से सुखसमृद्धि या यश की कामना नहीं करते वरन् भू जीवन की करुण दशा को देखकर लोकसेवा का वरदान माँगते हैं -

"मुझे देवि, तुम मात्र
लोकसेवा का वर दो !
परित्राण कर सकूँ
दैन्य-जर्जर भू-जन का-
उन्हें हृदय आसन दे,
करुणा सहृदयता दे ।"[1]

4·10· लोकायतन और परवर्ती काव्यों पर अरविंद-दर्शन के विशिष्ट सिद्धान्तों का प्रभाव

4·10·1· विकास सिद्धांत

यह अरविंद दर्शन का मूल प्रमुख सिद्धांत है । श्री अरविंद ने स्वयं कहा है - संसार में जीवन का एक शक्तिशाली नियम है, मानव विकास का एक बड़ा सिद्धांत है[2] । इस सिद्धान्त के निर्माण में श्री अरविंद ने अपनी मौलिक दृष्टि के साथ साथ भारतीय और पाश्चात्य मान्यताओं को भी स्वीकार किया है । रूपान्तर, अवरोहण-आरोहण और अवतार सिद्धांत इसी सिद्धांत में अंतर्लीन है ।

1· गीत - अगीत - पन्त, पृ·113-114

2· There is a mighty law of life, a great principal of human evolution.
The Ideal of the Karmayogin, p.3

इस सिद्धांत का सार यह है कि परम चेतना क्रमश: अनेक आवरण ओढती हुई जड रूप धारण करती है और पुन: अवगुंठनों को खोलती हुई, परमसत्ता की ओर विकसित होती जाती है । परमचेतना को श्री अरविंद ने दिव्य चेतना, अतिमानसिक चेतना तथा कवि पन्त ने ऊर्ध्वचेतना, नवचेतना, स्वर्ण चेतना आदि नामों से अभिहित किया है ।

"लोकायतन" का आध्यात्मिक विकास क्रम का विस्तृत वर्णन श्री· अरविंद के विकास संबंधी कथनों से प्रभावित है । कवि मानव को, बुद्धि के स्तर से ऊपर उठकर, विकास क्रम से उस स्तर को अधिकृत करने का संकेत देता है जहाँ निराकार ब्रह्म साकार रूप धारण कर धरती पर उतर आयेगा -

"खोलो बुद्धि कपाट
झरती ज्योतिर्धार,
जग विकास-क्रम क्षेत्र
निराकार साकार ।[1]"

पन्तजी की मान्यता है कि महात्मा गाँधी एवं योगीश्वर अरविंद जैसे युग पुरुषों का अवतरण आध्यात्मिक विकास को गति देने के हितार्थ होता है । पन्तजी का कथन है कि इन महापुरुषों के जन्म से पूर्व विश्व में पाशविक युद्धवृत्ति का साम्राज्यवाद का बोलबाला था । अत:

"शतियाँ दशक, दशक वत्सर बन
धनीभूत होते थे प्रतिक्षण,
स्तंभित था मानव विकास क्रम,
भू पर चलता पशु संघर्षण ।[2]"

1· लोकायतन - पन्त, पृ·427

2· वही, पृ·110

इसीलिये मन की शक्ति से महान चित्‌शक्ति से काम करने का दिव्य संदेश भारत ने जगत्‌ को दिया -

"मन के मूल्यों ही के बल पर
मनुज विकास नहीं संभावित,
भारत भू के हित विशिष्ट चित्‌ -
कर्म जगत्‌ पथ में निर्धारित[1] ।"

पन्तजी की मान्यता है कि भारत को यह संदेश महात्मा गांधी एवं योगीश्वर अरविंद जैसे युगपुरुषों से प्राप्त हुआ है । वे भविष्यद्रष्टा जानते थे -

"जन रक्तपात, बर्बर रण
होंगे तब तक न समापन
जब तक विकास शिखरों पर
भू मन न करेगा रोहण[2] ।"

ऊपर के कथनों में यद्यपि पन्तजी ने महात्मा गांधी को भी साथ रखा है तथापि यह स्पष्ट है कि मानव मन के और ऊपर के स्तरों के विकास का संकेत उन्होंने श्री॰ अरविंद से ही प्राप्त किया है ।

"नई आस्था[3]" नामक लंबी वर्णनात्मक कविता में कवि ने डार्विन के भौतिक विकासवाद और श्री अरविंद के आध्यात्मिक विकासवाद का

1· लोकायतन - पन्त, पृ·110

2· वही, पृ·178

3· किरणवीणा - पंत, पृ·69

सुन्दर समन्वय बडी रोचक और व्यंजनात्मक भाषा में प्रस्तुत किया । डार्विन के पादरी मित्र केवल आध्यात्मिक उन्नति को ही धर्म मानते थे । उन्हें भय था कि केवल भौतिक विकास के साधनों में संलग्न डार्विन मृत्यु के पश्चात् अवश्य नरक का भागी होगा । पादरी के मनमें स्वर्ग और नरक के संबंध में परम्परागत कल्पना थी । डार्विन की मृत्यु के पश्चात् एक दिन पादरी स्वप्न में डार्विन को सातवें अंतिम घोर नरक ढूंढने का यत्न करता है । किन्तु उस नरक को ही डार्विन की उपस्थिति के कारण स्वर्ग में परिणत देख, वह आश्चर्य चकित रह जाता है औरतब -

"पूछा अति आश्चर्य चकित
करुणार्द्र पोप ने -
"कौन स्थान यह ? स्वर्ग लोक क्या ?
बोला नम्र स्वयं सेवक,
"जी, यही नया वह स्वर्ग लोक,
जिसके स्रष्टा
पतितों के सेवक प्रिय डार्विन है ।[1]"

इस कवितामें पन्तजी ने भौतिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मि उन्नति का भी महत्व इस प्रकार स्थापित किया है -

"वह जैविक ही नहीं
विश्व मन की आध्यात्मिक
पूर्ण प्रगति का भी द्योतक है[2] ।"

---

1. किरणवीणा - पन्त, पृ. 175-176

2. वही, पृ. 178

4·10·2· रूपान्तर सिद्धांत

श्री· अरविंद ने एक विशिष्ट अर्थ में रूपान्तर शब्द का प्रयोग किया है। उनके शब्दों में - तन, मन, प्राण से ऊपर प्रकट एवं अमिश्रित रूप से अवस्थित है।[1] मन, प्राण और तन पर्याप्त नीचे उतार लाना है। इस दिव्यचेतना के अवतरण से मन, प्राण, तन दिव्यचेतना में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार मानव की संपूर्ण चेतना का दिव्य परिवर्तन श्री· अरविंद कथित रूपांतर है। मानव में मन, प्राण और जड तीनों तत्वों का समन्वय होते हुए भी मानव चेतना इन आरंभिक तत्वों से ऊर्ध्वस्तरीय है। श्री· अरविंद की स्थापना है कि भविष्य में मानवीय चेतना अतिमानवीय चेतना में रूपांतरित होगी और वह चेतना अपनी दिव्यता से मन, प्राण और जड़ का भी दिव्य रूपान्तर करेगी तब जगत् और जीवन अपने संपूर्ण रूप में दिव्य हो जायेगा। इस प्रकार निगम (वेद) तथा "आगम" शास्त्रों से संकेत लेकर जिस नवीन साधना पद्धति का निर्देश श्री· अरविंद ने किया है, उसका लक्ष्य संपूर्ण मानव चेतना का दिव्य रूपान्तर है। दिव्य मानव, देवता होगा और देवता का निवास स्थान स्वर्ग। धरती से स्वर्ग की ओर जाने की अपेक्षा, स्वर्ग को धरती पर उतार लाने की यह संभावना, आज के मानव केलिये एक महान् संदेश है।[2]"

इसी आशय को पन्तजी ने लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में स्पष्ट किया है। लोकायतन में आज के मानव मन की जडता को दिव्यता में रूपांतरित होने का संदेश दिया है -

---

1· '.... **Unveiled and unmixed above mind, life and body'.**

Sri Aurobindo on Himslef and on The Mother, p.169

2· आधुनिक हिन्दी काव्य पर अरविंद दर्शन का प्रभाव - डॉ·कृष्णा शर्मा पृ·95

[illegible] भू [illegible]
[illegible] नव [illegible] र[1] ।

[illegible] मानवत्व [illegible] ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं
"ईश्वर [illegible] दो मानवी [illegible]
[illegible] प्राणों का जीवन
[illegible] सहज [illegible]
[illegible] र[2] [illegible] ।

[illegible] सृष्टि के कण कण में [illegible] कल्पना [illegible] चुपचाप जड़ चेतन का [illegible] [illegible] है

[illegible] कण कण में-
[illegible] गोपन में[3]

वह स्वर अखंड और अनादि है, किन्तु सृष्टि में वह ऐसा रूप [illegible] है, जिससे क्रमशः जन्म और नाश होता रहता है -

"[illegible] जीवन-शून्य, अखंड, परात्पर,
जीवन का न विनाश क्रमिक रूपांतर[4] ।"

पृ॰202

यहाँ पन्तजी ने जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म प्रक्रिया को ही रूपान्तर की संज्ञा दे दी है। वास्तव में रूपान्तर से श्री अरविंद का अभिप्राय चेतना के प्राणिक-मानसिक और अतिमानसिक दिव्य रूपान्तर से है। चेतना के इस महान् रूपान्तरों के बीच असंख्य जन्म और मृत्यु समाहित है। सृजन और प्रलय के इस क्रमिक विकास की अंतिम परिणति दिव्य रूपान्तर निश्चित है।

"भव प्रतिपल सृजन प्रलय संतुलित निरन्तर,
शाश्वत, विकास पथ में, - निश्चित रूपान्तर।[1]"

पन्तजी जगत् और जीवन के पूर्ण रूपान्तर के प्रति आश्वस्त हैं -

"भ्रम छँट गया, कवि, अब अंतर का,
खुलता दृग सम्मुख प्रकाश अंबर,
तुम्हीं सत्य, कवि, - धरा चेतना का
करना होगा सर्वाशिष रूपान्तर[2]।"

"सत्यकाम" की अनेक उक्तियाँ समन्वयवाद को व्यक्त करनेवाली है ब्रह्म मनुज के हृदय में स्थिर और चराचर सृष्टि में व्याप्त है। इसे प्रत्यक्ष इन्द्रियों के द्वारा कभी नहीं जाना जा सकता। वह केवल विश्वचेतना में, विश्वप्रकृति में ही मिल सकता है। इसलिये मानव - जीवन की समस्याओं का एकमात्र उपचार भौतिक और आध्यात्मिक मार्गों का समन्वय है -

"भौतिक आध्यात्मिक पथ अपने में दोनों ही
एकांगी, निःसार, अपूर्ण, व्यर्थ हैं निश्चय !

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.235
2. वही, पृ.522

विश्व समन्वय ही उसको भू - वैषम्यों का
एक मात्र उपचार प्रतीत हुआ श्रेयस्कर ।"[1]

पन्तजी "सत्यकाम" में स्वस्थ भोग के साथ दैहिक संवेदनों का रूपान्तरणकर दिव्य जीवन प्राप्ति की संभावनाओं के समर्थक हैं । इस काव्य में पन्त ने इस सिद्धि की पुष्टि निम्न शब्दों में की है -

"निखिल सृष्टि के बीज इन्द्रियाँ ही तो बोतीं
उर्वर रज को सींच स्वस्थ प्राणों के रस से !
xx xx xx
अंतर्मन का बोध बहिर्जीवन यथार्थ को
मानवीय परिणति करने में सक्षम होगा ।"[2]
xx xx xx
ऊर्ध्वचेतना सत्य, बाह्य जड द्रव्य उभय ही
महत् वास्तविकता भू - मानव के जीवन की
जन भू के कल्याण केलिये दोनों ही को
शनै: समन्वित करना होगा - सत्य महत् से
बने महत्तर, शिव शिवतर, सुंदर सुंदरतर ।"[3]
xx xx xx
निराकार साकार हो सके भव-दर्पण में,
रति-तृष्णा सौंदर्य प्रेममय तृप्ति बन सके,
तन्मय सुख ला सके निकट आनंद ब्रह्म के !"[4]

1· सत्यकाम - पन्त, पृ·180
2· वही, पृ·65
3· वही, पृ·65
4· वही, पृ·66-67

पन्तजी ने श्री• अरविंद के समान पाश्चात्य, भौतिकवादी और अध्यात्मवादी दोनों प्रकार के दर्शनों के समन्वय को स्वीकृति दी है -

"सत्य परे नित ज्योति-तमस् से
प्रीति पाश में बाँधे वह जड चेतन !
एकांगी भौतिकता
आध्यात्मिकता दोनों[1] ।"

"गीत-अगीत" में प्राय: सभी रचनायें कवि की आशावादी समन्वयात्मक दृष्टि, मानव संस्कृति और चेतना के प्रति आस्था की अभिव्यक्ति है। इन कृतियों का मूल स्वर लौकिक जीवन के माध्यम से अलौकिक जीवन प्राप्त करना है । इस जगत् की संपूर्ण समस्याओं का समाधान कवि को अरविंद, मार्क्स और गाँधी दर्शन की चेतनाकी त्रिवेणी में दिखाई देता है -

"यह नव भारत !
तीनों श्री अरविंद, मार्क्स,
गाँधी के दर्शन से
वह परिचित संयोजित कर
xx x xx
स्थूल सूक्ष्म, छाया प्रकाश से
उसे मंजोकर[2] ।"

भौतिक रथ पर
बिठा मुक्त चैतन्य पुरुष को
वह समग्रत:
नित आगे बढता जायेगा[3] ।"

1• पतझर - एक भाव क्रांति - पन्त, पृ•41
2• गीत-अगीत - पन्त, पृ•95-96
3• वही, पृ•96

लौकिक और अलौकिक जीवन का समन्वय ही अरविंद दर्शन का मूलमंत्र है । यही भावना -

"ईश्वरमय रे सकल चराचर
व्यक्ति, विश्व पूर्ण परात्पर,
ईश्वर भक्त वही जो
भू जीवन को अपनाता[1] ।"

यहाँ कवि ने अलौकिक जीवन की अपेक्षा लौकिक जीवन को ईश्वरप्राप्ति का मुख्य मार्ग बताया है । भू जीवन को स्वर्णिम जीवन में बदलने का संकल्प सदा उनके मन में संजोये रहा है ।

अरविंद दर्शन में जगत् सत्य है । इसलिये जड और चेतन एक दूसरे के पूरक है । मौन प्रतीक्षाओं से भरे हुए एक नव जीवन निर्मित करने केलिये कवि जड चेतन और बहिरन्तर का संयोजन चाहते हैं -

"बहिरन्तर को, जड चेतन को
कर संयोजित
मौन प्रतीक्षा रत, नव जीवन
करने निर्मित[2] ।"

पन्तजी ने श्री॰ अरविंद के समान मानव को बाह्य विकास के साथ आंतरिक विकास केलिये भी उद्यत किया है । वे यही कामना करते हैं -

---

1. संक्रांति - पन्त, पृ॰21
2. वही, पृ॰25

"मानव भीतर से विकसित हो
बहिर्जगत् पर पा जय !
×× ×× ××
बहिरन्तर संतुलित विश्व हो
भव विकास का यह पल ।"[1]

आरोहण क्रम में चेतना आज तक जड से प्राण और प्राण से मन तक विकसित हुई है । अब ऐसा ज्ञात हो रहा है, मानों मनोमय मानव के ईश्वरीय स्तर अर्थात् अतिमानस तक विकसित होने की अपेक्षा ईश्वर की मानवीय स्तर में रूपांतरित हो जाये ।

"रुका विकास, प्रतीक्षा में जड चित्
ईश्वर का नर में रूपांतर ।"[2]

ऊर्ध्व चेतना के भू जीवन में संचरण के कारण रूपान्तर दिव्य रूपान्तर का पर्याय बन गया है । एक अन्य स्थल पर कवि ने अपने मंतव्य को और अधिक स्पष्ट किया है -

"सहसा भास हुआ प्रबुद्ध कवि को -
नरक दृश्य का होता रूपांतर ।"[3]

यहाँ रूपान्तर का अर्थ दृश्य परिवर्तन नहीं है क्योंकि कवि को विश्वास है कि मानव का सतत सक्रिय अंतर ईश्वरीय रूप के प्रति जाग्रत होगा तथा -

---

1· किरणवीणा - पन्त, पृ·26
2· लोकायतन - पन्त, पृ·36
3· वही, पृ·590

"अतः सक्रिय मानव का मानस
निज गौरव के प्रति होता जाग्रत,
वह जन भू ईश्वर, - गत पशु नर को
नव मानवता में होता परिणत !"[1]

इस प्रकार पन्तजी के रूपान्तर संबंधी मंतव्य श्री अरविंद के रूपान्तर सिद्धांत से प्रभावित है ।

4·10·3· अवरोहण-आरोहण सिद्धान्त

रूपान्तर सिद्धान्त की भाँति अवरोहण - आरोहण सिद्धान्त भी अरविंद की मौलिकता है । यद्यपि उपनिषद् में चेतना के अन्नमय, प्राणमय, मनोमय एवं विज्ञानमय लोकों में आरोहण तथा तंत्र में कुंडलिनी के आरोहण की चर्चा की गयी है तथापि श्री अरविंद प्रतिपादित चेतना के अवरोहण-आरोहण की पद्धति नितांत उनकी अपनी मान्यता है । उनके मतानुसार दिव्यचेतना अतिमन, मन, प्राण के स्तरों से अवरोहण करती हुई जड रूप ग्रहण करती है और पुनः इन्हीं स्तरों से आरोहण सिद्ध होता है ।

श्री अरविंद ने मानव चेतना के आरोहण के तीन स्तर गिनाये है भौतिक जीवन, आध्यात्मिक जीवन तथा अतिमानसिक जीवन । व्यक्ति मन से ऊपर विश्वमन है उससे ऊपर अतिमन । दार्शनिक भाषा में व्यष्टि ब्रह्म, सम ब्रह्म और ब्रह्म । पन्तजी प्राण को अंतिम शिखर तक आरोहित होने केलिये प्रेरित करते हैं -

---

1· लोकायतन - पन्त, पृ·590

"पार कर विश्व मनस को, प्राण,
करो आरोहण ऊपर ओर।"[1]

इन्द्रिय मन स्वयं जड है किन्तु परम चेतना के प्रकाश से चैतन्य है। जडता में आविर्भूत चेतना जडता का अतिक्रमण कर अन्य स्तरों की ओर बढ़ती है -

"इन्द्रिय मन को अतिक्रम कर
वह हो भू का आरोहण।"[2]

श्री अरविंद के मानव मन के ऊर्ध्वारोहण के विश्वास को पन्त जी "लोकायतन" में बार-बार दुहराया है

"भू मानस आरोहण कर
आलोकित होगा निश्चय!
xx x xx
अंत: शिखरों पर करता
उर ऊर्ध्व-प्राण आरोहण!"[3]

पन्तजी की राय में दिव्यचेतना मानव के अन्तर को प्रकाशित कर देगी और अन्तर की शून्यता सर्वसंपन्नता में परिणत हो जायेगी -

"शून्य को बना
सर्व संपन्न,

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ. 185
2. वही, पृ. 193
3. वही, पृ. 201-203

सृष्टि के क्रम विकास में
यदि नव स्वर-संगति भरते -
क्या विस्मय ?"[1]

"किरणवीणा" की पहली कविता में दिव्यचेतना का एक तृण किरण के रूप में अपना परिचय दिया गया है । दिव्य चेतना का अर्थ है - नव मानव का निर्माण तथा धरती को स्वर्ग में परिणति ---

"नहीं', - मुझे उर्वर भू रज से
नया मनुज गढ़ना अब,
उसमें फूँक
स्वर्ग की साँस
अगोचर[2] ।"

अरविंद दर्शन के अनुसार जड में चेतन विद्यमान है । यही क्रमश: विकसित हो रहा है । मानव के भीतर परम चेतना का स्रोत विद्यमान है उसे ही बाह्य भौतिक जीवन में अभिव्यक्त होता है और पन्तजी के अनुसार -

"भीतर ही रे स्रोत सत्य का, चिदाकाश में,
बाहर के जीवन में करना जिसे प्रतिष्ठित,
जड से चालित चेतन-जीवन-हीन यंत्र भर,
चेतन ही से संचालित जड होता विकसित[3] ।"

1· पौ फटने से पहले - पन्त, पृ·15

2· किरणवीणा - पन्त, पृ·1

3· पतझर एक भाव क्रांति - पन्त, पृ·217

परमचेतना की यह सर्वव्यापकता अरविंद दर्शन की ही विशेषता नहीं, समूचे आध्यात्मिक दर्शन की विशेषता है ।

आरोहण में पुरातन का नाश और नवीन का जन्म होता है । कवि क्रमिक - विकास को अपने अन्तर में भी अनुभव कर रहा है ।

"मेरा तन मन में,
जीवन - मन
युग-आत्मा में तन्मय ।"[1]

इन पंक्तियों में कवि अपने व्यष्टि मन को समष्टि मन तथा समष्टि मन को संपूर्ण युग की आत्मा में समाहित होते देख रहा है ।

4·10·4 अवतार सिद्धान्त

श्री अरविंद ने गीता एवं वैष्णव संप्रदायों की अवतार संबंधी मान्यताओं को स्वीकार किया है । गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं - मैं अजन्मा हूँ, अविनाशी हूँ, सभी भूतों का ईश्वर हूँ, फिर भी अपनी प्रकृति को अधीन करके योग मात्रा से प्रकटहोता हूँ ।[2]" वैष्णव धर्म और दर्शन में भगवान् के अवतार रूप की पूजा अर्चना की विधान है तथा वैष्णव कवियों ने भगवत् के विभिन्न अवतारों की लीलाओं का गुणगान किया है । श्री· अरविंद का कथन है - "हम इस बात को सत्य मानते हैं कि भगवान मानव शरीर में प्रकट हो सकते हैं और हुए हैं[3] ।" "अवतार" की परिभाषा करते हुए

1· पतझर एक भाव क्रांति - पन्त, पृ·110

2· गीता, पृ·416

3· We take it as a fact that the Divine can manifest and is manifested in human body - Sri Aurobindo on Himself and on The Mother, p.356

श्री अरविंद ने लिखा है - जब वह अजन्मा अपने आपको जानते हुए, मानव मन-प्राण-शरीर को धारण कर, मानव जन्म का जामा पहनकर कर्म करता है, तब वह देशकाल में भगवान् के प्रकट होने की पराकाष्ठा है। यही भगवान् का पूर्ण और चिन्मय अवतरण है, इसी को अवतार कहते हैं।[1] "
इस प्रकार श्री अरविंद के मतानुसार इस दिव्य जन्म के दो पहलू हैं - एक मानव रूप में भगवान का जन्म ग्रहण करना और दूसरा भगवान के भाव में मानव का जन्म ग्रहण करना।

महाकाव्य "लोकायतन" के प्रारंभ में भगवान को प्रणाम करने के उद्देश्य से पन्तजी ने राम और सीता का जो स्तुतिगान किया है, वह न आदिकालीन वाल्मीकि, न मध्ययुगीन तुलसी और न आधुनिक युगीन मैथिलीशरण के राम और सीता के अनुरूप है। यहाँ पन्तजी केलिये राम और सीता दिव्य चेतना अवतरण के प्रतीक और विकास क्रम के पथ निर्देशक है। सीता राम को चेतना के आरोहण और मानव के दिव्य रूपान्तर के के रहस्य का ज्ञाता कहती है और इस रहस्य कर्म के संचालन के हेतु व्यष्टि ब्रह्म के अवतार राम को चित् शक्ति सीता अपना सर्वस्व समर्पित करती है -

"हँसी जानकी-राम, तत्व ज्ञाता तुम,
स्वीकृत मुझको यह सर्वस्व समर्पण,
नाम रूप गुण से अतीत स्थित मुझ में
बनो पुनः, प्रिय, नये कल्प के दर्पण।[2] "

पन्त जी ने राम के मुख से श्री अरविंद की इस मान्यता को अभिव्यक्त किया है कि परब्रह्म का अक्षर रूप एवं पराशक्ति ही युगानुरूप अवतार ग्रहण करते हैं -

---

1. अवतार - श्री अरविंद, पृ.10 (हिन्दी अनुवाद)
2. लोकायतन - पन्त, पृ.11

"प्रिये, दाशरथि वैदेही ही क्या हम ?
परब्रह्म मैं, पराशक्ति तुम सुविदित,
सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, सर्वगत, शाश्वत,
बहुरूपों में भी हम एक अखंडित ।"[1]

"किरणवीणा" में कवि पुन: श्री अरविंद के अवतार सिद्धांत का प्रतिपादन कर रहे हैं । इस संग्रह की "पुरुषोत्तम राम" कविता में भगवान राम स्वयं अपने को तथा अन्य सभी अवतारों को परब्रह्म का रूप बताते हुए कहते हैं -

"राम नाम से मुझे जानती भारत जन-भू,
तुम भी चाहो वही कहो - मैं नाम रूप से
परे, कृष्ण, ईसा, पैगम्बर, बुद्ध सभी हूँ ।
परम, सदाशिव, पराशक्ति भी, परब्रह्म भी,
xx xx xx
सृष्टि स्वर्ग सोपान जीव से देव श्रेणि तक ।"[2]

4·10·5· सा‍धना सिद्धान्त

श्री अरविंद की पूर्ण योग साधना में ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों योग मार्गों का समन्वय होते हुए भी इसकी पद्धति नवीन है। इस पद्धति में व्यक्ति स्वातंत्र्य सर्वोपरि है, सभी केलिये एक ही पथ निश्चित नहीं है । अपने अंतर्गुरु के निर्देशानुसार अपना स्वयं निर्धारित करने का विधान इस पद्धति की विशेषता है । पूर्ण योग की साधना का उद्देश्य है,

1· लोकायतन - पन्त, पृ·17
2· किरणवीणा - पन्त, पृ·232

मानव चेतना का विकास और ऊर्ध्वारोहण एवं मानव के मन, प्राण और शरीर का दिव्य रूपांतर । श्री अरविंद का दृढ़ विश्वास है कि "जो भगवान् को चाहता है, उसे भगवान् अवश्य मिलते हैं अर्थात् वह स्वयं भगवान् रूप हो जाता है[1] । मानव का भगवान् रूप में रूपांतर पूर्ण योग का लक्ष्य है । लक्ष्य की प्राप्ति श्री अरविंद जीवन और जगत् में चाहते हैं । उन्होंने कहा है "यह योग संसार से कतरानेवाले सन्यास का मार्ग नहीं, वरन् दिव्य जीवन का योग है[2] । भगवत् प्राप्ति केलिये साधारण जीवन एवं परिवार का त्याग करनेवाले प्राचीन सन्यासियों के मार्ग का खंडन करते हुए श्री अरविंद ने लिखा है - "सच्चा सन्यास परिवार और समाज का केवल भौतिक परित्याग नहीं है, यह उस दिव्य शक्ति के साथ आंतरिक तादात्म्य की स्थिति है, जिस केलिये बीते जीवन और भावी जन्म की कोई सीमायें नहीं, अपितु उसके स्थान पर अजन्मा आत्मा का सनातन अस्तित्व है[3] ।"

अरविंद दर्शन से प्रभावित कवि पन्त मानव को आत्मबोध की निष्क्रिय समरस स्थिति में नहीं देखना चाहते । वे उस स्थिति के जीवन की सक्रियता में उतार लाने के इच्छुक हैं और चाहते हैं कि मानव इस धरती पर आत्मबोधमय जीवन व्यतीत करे । अतः वे ऐसी श्रद्धा के समर्थक नहीं, जो मानव को कोरी और निष्क्रिय आध्यात्मिकता की ओर ले जाये -

"कैसे कह दूँ इडा लुब्ध युग मनु से
श्रद्धा भी वह करे मेरु-नग रोहण,

---

1. श्री अरविंद के पत्र (हिन्दी अनुवाद) श्री अरविंद, भाग, 1 - पृ.32

2. This yoga is not a yoga of world shunning asceticism, but of Divine life.
Sri Aurobindo on Himslef and on The. Mother-Sri Aurobindo, p.150

3. The true renunciation is not the mere physical abandonmen of family and society, it is the inner identification wit the Divine in whom there is no limitation of past life an future birth but instead the enternal existence of the unborn soul.
The Synthesis of Yoga - Sri Aurobindo,p.310

आत्मबोध की निष्क्रिय समरस स्थिति को
जन भू-पथ पर करना सक्रिय विचरण ।"[1]

आत्मबोध की समरस स्थिति को नित्यप्रति के जीवन में उतार लाने की प्रेरणा पन्तजी ने श्री अरविंद से प्राप्त की है । इस लक्ष्य प्राप्ति का साधन श्री अरविंद द्वारा प्रतिपादित पूर्ण योग साधना है । हम देख सकते हैं कि पन्तजी स्वयं अपने जीवन में भी बहुत बडे साधक थे और उनका ऋषितुल्य व्यक्तित्व ही उनकी परवर्ती रचनाओं में प्रतिबिम्बित है । लोकायतन और बाद की रचनाओं में उनका यह योग दर्शन सामाजिक भावना से अधिकाधिक अनुप्रेरित बनता गया है ।

4·11 निष्कर्ष

आधुनिक हिन्दी काव्य मौलिक चिंतकों एवं मनीषियों के दार्शनिक सिद्धांतों से प्रभावित है । सर्वाधिक प्रत्यक्ष प्रभाव हिन्दी के महान कवि श्री सुमित्रानंदन पन्त पर परिलक्षित होता है । उन्होंने सामाजिक दर्शन और आध्यात्मिक दर्शन में समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की है । पन्तजी अनेक दर्शनों से प्रभावित हुए हैं । आरंभिक रचनाओं में छायावादी चिन्तन, गाँधीवादी चिन्तन और मार्क्सवादी चिन्तन का प्राधान्य था । लेकिन लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में अरविंद दर्शन और नवमानवतावादी दर्शन का प्रभाव है ।

लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में पन्तजी को प्रभावित करनेवाली मुख्य विचारधारायें - उपनिषद् दर्शन, शंकर वेदान्त, विवेकानंद दर्शन, गाँधीवादी दर्शन, सर्वात्मवाद और अरविंद दर्शन हैं ।

1· लोकायतन - पन्त, पृ·7

ब्रह्म का विराट स्वरूप, आत्मा, जीव और जगत् का संबंध, सृष्टि-प्रक्रिया आत्मज्ञान, अनुभूति और उपलब्धि हमें उपनिषदों में मिलती है, वही पन्त के काव्य में भी है। शंकर वेदान्त के ब्रह्म, जीव, जगत, माया आदि का जो वर्णन है उनका पूर्ण प्रभाव पन्त के काव्यों में दिखाई पड़ता है। विवेकानंद के अद्वैतवाद की जो विवेचना है उन्हें भी पन्त ने अपनायी है। मातृशक्ति के रूप में ब्रह्म की विवेचना, ईश्वर का मानवीय स्वरूप, मानव-ईश्वर में प्रेम-प्रतिष्ठा, सुख-दुःख की विवेचना आदि विशेषतायें पन्तजी के काव्यों में इधर उधर दिखाई पड़ती हैं।

पन्तजी के काव्य में जो सामाजिक दर्शन संबंधी विचारधारा है उसे गांधीवादी चिन्तन के नाम से अभिहित की जा सकती है। गांधीजी की प्रेरणा से ही पन्तजी में मानव जीवन के प्रति नई आस्था एवं श्रद्धा जागृत हुई। "लोकायतन" का पूर्वार्द्ध गांधीवाद से प्रभावित है। इस महाकाव्य में गांधीजी को एक महान जननायक के रूप में चित्रित किया है। नारी मुक्ति, राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रोत्साहन, जाति-पांति, ऊँच-नीच, छुआछूत, ग्राम्य जीवन आदि गांधीजी की जो विचारधारा है उसे पन्तजी ने अपने काव्यों में स्पष्ट किया है।

पाश्चात्य सर्वात्मवाद से भी पन्तजी प्रभावित है। यह दर्शन भारतीय अद्वैत दर्शन से अत्यधिक मिलता जुलता है। सर्वात्मवाद के अनुसार सब कुछ ईश्वर ही है। ईश्वर जगत हैं और जगत ही ईश्वर है। प्रकृति सौंदर्य कवि की सर्वात्मवादी विचार-धारा का मूल आधार रहा है। कवि ने प्रकृति और परमेश्वर की एकता स्पष्ट की है।

इन सभी दर्शनों में उन्हें एक संतुलित अंतर्दृष्टि का अभाव खटकता था लेकिन उसकी पूर्ति उन्हें श्री अरविंद के जीवन दर्शन में मिली।

लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में अरविंद दर्शन और उसकी मौलिकता को अनश्वर बनाने का प्रयत्न किया है । अरविंद दर्शन मूलत: समन्वयवादी दर्शन है । अरविंद भारतीय साधना पद्धति को उच्चतम स्थान देते थे । अरविंद ने भी अन्य दार्शनिकों की भाँति ब्रह्म, जीव एवं जगत् के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं । इस क्षेत्र में उनकी सब से महत्वपूर्ण देन अतिमानस की खोज, सामूहिक मुक्ति, पृथ्वी और स्वर्ग का समन्वय और दिव्य जीवन का दर्शन या स्थापना है ।

अरविंद दर्शन का मूल है - उपनिषद ज्ञान और विकासवाद का समन्वय । श्री अरविंद के अनुसार ब्रह्म गंभीर आत्मानुभूति से प्राप्त एक अद्वितीयसत्ता है जो अनिर्वचनीय है और असंभव संभावनाओं से युक्त है । श्री अरविंद संपूर्ण मानव जाति के ब्रह्म रूप में रूपांतरित हो जाने की चर्चा करते हैं । यह अरविंद दर्शन की मौलिक देन है ।

श्री॰ अरविंद ने जीव और जीवात्मा शब्दों को एक ही अर्थ में प्रयुक्त किया है । वे जीव को चेतनसत्ता के रूप में ही स्वीकार करते हैं । जो स्थिर है वही ब्रह्म है और जो विकासशील है वही चेतन है । श्री॰ अरविंद ने जीवात्मा को शरीर, प्राण और मन से भिन्न, इन सब का अधिष्ठाता बताया है । अतिचेतन मन अर्थात् अतिमानस स्वयं आत्मा है तथा अवचेतन मन अचेतन सा प्रतीत होता है । आज का मानव अवचेतन मन तथा मन के प्रति सचेत है, अब अतिचेतन मन के अवतरण की प्रतीक्षा कर रहा है ।

अरविंद दर्शन के अनुसार जगत् ब्रह्म की अभिव्यक्ति है अत: उतना ही सत्य है जितना ब्रह्म । जगत् सच्चिदानंद ब्रह्म का प्रच्छन्न रूप है । ब्रह्म के चार तत्वों से जगत् की सृष्टि हुई है - सत्ता, चेतनशक्ति, आनंद और अतिमन । "ब्रह्म सत्यं, जगत् मिथ्या माननेवाले मायावादियों के

मत का खंडन भी प्रस्तुत किया । श्री॰ अरविंद की राय में ब्रह्म भी सत्य है और जगत् भी सत्य है ।

श्री अरविंद की नितांत मौलिक कल्पना है अतिमानस । उन्होंने विज्ञानमय पुरुष अर्थात् जीवात्मा को ही अतिमानस कहा है । वे जीवन और जगत् की केवल प्रगति ही नहीं चाहते अपितु वे इन्हें दिव्य-चेतना में रूपांतरित कर देना चाहते हैं ।

श्री॰ अरविंद के अनुसार वैयक्तिक मोक्ष के बदले सामूहिक मोक्ष ही श्रेयस्कर है । उन्होंने वैयक्तिक मोक्ष का खण्डन कर उन बाह्य और आन्तरिक परिस्थितियों के नवीन संगठन पर बल दिया है जिनके द्वारा मनुष्य का सामूहिक उन्नयन हो सके ।

श्री॰ अरविंद दर्शन के मूल सिद्धांत - विकास - सिद्धांत, रूपान्तर सिद्धांत, अवरोहण-आरोहण सिद्धांत, अवतार-सिद्धांत, मानवसमाज सिद्धांत की चर्चा भी लोकायतन और परवर्ती रचनाओं दिखाई पडती है ।

&&&&&&&&&&&&&

पाँचवाँ अध्याय

लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में सामाजिक और राजनीतिक विचारधारा

पाँचवाँ अध्याय

लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में

5· सामाजिक और राजनीतिक विचारधारा

"साहित्यकार केवल अपनी ज़िन्दगी नहीं जीता, अपने समाज और अपने समय की ज़िन्दगी को भी प्रतिबिम्बित करता है। एक ओर वह समय की मूल ध्वनि को व्यक्त करता है तथा दूसरी ओर अपने समय और परिवेश में से उस तत्व को भी उपलब्ध और अभिव्यक्त करता चलता है जो शाश्वत है।[1]" नेमीचन्द्र जैन के अनुसार कृतिकार अपनी सारी विशिष्टताओं के साथ ही किसी समाज का सदस्य भी होता है सिर्फ साहि ही नहीं। प्राय: उसकी साहित्यकारिता और उसके इस सामाजिक रूप में कोई अनिवार्य विरोध नहीं है[2]।" भारत भूषण अग्रवाल ने "कृतिकार और समाज के संबन्ध को प्रभाव की परस्परता के रूप में देखा है।

1· साहित्य और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया - सं· सच्चिदानंद वात्स्यायन, पृ·84

2· बदलते परिप्रेक्ष्य - नेमीचंद्र जैन, पृ·5।

उनकी दृष्टि में कवि पर निरंतर समाज का प्रभाव पड़ता रहता है और वह स्वयं भी समाज को प्रभावित कर सकता है।[1]"

पन्तजी ऊपर बतायेहुए सभी कथनों के अनुयोज्य कवि थे। वे एकान्तप्रिय होने पर भी अपनी चारों ओर की सामाजिक चेतना के प्रति हमेशा सजग और संवेदनशील रहे। समाज की प्रत्येक धड़कन और प्रत्येक निःश्वास को सुना और महसूस किया और उन विचार-तत्वों से प्रेरणा ग्रहण की। समाज की वास्तविकता से परिचित होने से पूर्व कवि-कल्पना ने जिन भाव-स्वप्नों को संजोया था वे सामाजिक परिवेश में आते ही टूट गये और कल्पना को अपना मार्ग बदलना पडा। काव्य की स्वप्नजडित आत्मा जीवन की कठोर वास्तविकता के उस नग्न रूप से सहम गयी। इसलिये उस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती। समाज में सब कहीं सामाजिक रूढियों, धार्मिक संकीर्णताओं, राजनैतिक पराधीनता और सांस्कृतिक अवनति का साम्राज्य छाया हुआ था। समाज में एक ओर जागरण की भावना अन्दर ही अन्दर पनप रही थी तो दूसरी ओर उसकी अभिव्यक्ति पर बन्धन लगा हुआ था। कवि ने इन सब के प्रति विद्रोह करना चाहा, किन्तु युग-परिस्थितियों ने ऐसा नहीं करने दिया। उन्होंने कल्पित भविष्य के रूप में युगीन सामाजिक चेतना को अपनी कल्पना द्वारा अभिव्यक्त किया। इस रूप में उन्होंने महान कवि कर्तव्य पूरा किया।

कवि ने "लोकायतन" सामाजिक परिकल्पना की अभिव्यक्ति केलिये रचा है। इसमें वर्तमान की समस्त समस्याओं का अंकन करते हुए भावी समाज की विराट झांकी प्रस्तुत की है। समाज और संस्कृति के नव-निर्माण में मानव-संस्कार और युगीन जीवन मूल्यों का प्रमुख हाथ होता है।

---

1. प्रसंगवश - भारतभूषण अग्रवाल, पृ.13, 26

लोकायतन में अभिव्यक्त भावी समाज और संस्कृति संबन्धी परिकल्पना का आधार भी ये दो तत्व बने हैं । कवि यत्र तत्र भावी मानव के स्वरूप की कल्पना करता है, सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक जीवनमूल्यों का विश्लेषण करता है और अन्त में इन मूल्यों से निर्मित समाज की रूपरेखा को प्रस्तुत करता है । अतएव सुविधार्थ यहाँ हम समाज और संस्कृति संबंधी परिकल्पना को मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं -

5·1· भावी मानव ।

5·2· नवीन जीवनमूल्य ।

5·3· भावी समाज और संस्कृति का स्वरूप ।

5·1· भावी मानव

भावी मानव की कल्पना पन्त ने आदर्श मानव के रूप में की है । यह मानव हाड़-मांस का पुतला होते हुए भी वर्तमानयुग की विकृतियों से दूर संस्कार युक्त ऐसा मानव होगा जो अपने गुण और आचरण से पृथ्वी पर ईश्वरीय रूप की प्रतिष्ठा कर सकेगा । मानवीय गुण इसके व्यक्तित्व के विकास का मुख्य आधार बनेंगे । शारीरिक शोभा और मानसिक चेतना इसके स्वाभाविक सौंदर्य का अंग बनेगी । पन्त के अनुसार यही मानव सच्चे अर्थों में जीवन शिल्पी होगा -

"जीवन शिल्पी मानव के
जनवास बनें दिक् कुसुमित
स्मित सात्विक बहिर्विभव हो,
अंतर ऐश्वर्य अपरिमित ।"[1]

1· लोकायतन - पन्त, पृ·174

जीवन-विकास का क्रम इसी के करों द्वारा संभव हो सकेगा और विश्व के दु:ख हर, सत्य भू को खींचकर यही अज्ञान-निशा को आलोकित करेगा[1]।"

भावी मानव के इस कल्पित रूप के दर्शन लोकायतन में स्थान स्थान पर होते हैं। वंशी, हरि, अतुल, मेरी आदि पात्रों के व्यक्तित्व में कवि ने इसी आदर्श मानव को उभारने का प्रयत्न किया है। कवि की प्रतीक्षा है कि सृष्टि में एक बार आंशिक विनाश की स्थिति अवश्य आयेगी। इस विनाश के बाद ही मानव अपनी पूर्णता को प्राप्त कर सकेगा। विनाश के बाद जन्म लेनेवाले मानव के स्वरूप और गुणों को अभिव्यक्त करनेवाली कुछ पंक्तियाँ हैं -

"ले चुका जन्म था नव मानव,
आते अश्रुत लोरी के स्वर,
पलने में उसको विश्व प्रकृति
थी झुला रही गा गा नि:स्वर[2]।"
xx x xx
सौंदर्य ज्योति आनंद प्रीति,
हो सके सृष्टि पट में सार्थक,
तुम में धर रूप कृतार्थ हुआ
आत्मा का रूप हीन पावक[3]।"

1· लोकायतन - पन्त, पृ·236
2· वही, पृ·675-676
3· वही, पृ·676

मानव द्वारा प्रतिष्ठित जीवन के सुख वैभव की चर्चा भी की गयी है -

"झरते श्रृंगों से मुक्त वेग
आनंद प्रीति रस के निर्झर,
दृग मूँद लिये उसने उनमें
भावी भू जीवन शोभा भर।"[1]

इस प्रकार "लोकायतन" में भावी मानव के गुणों के विश्लेषण के साथ साथ उसको जन्म देनेवाली विनाशक तथा जन्म के बाद की स्थिति का चित्रण करने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। कुछ आलोचक इस मानव के कल्पित रूप को असंभव और कपोल-कल्पना की संज्ञा देते हैं। परन्तु पन्तजी के अनुसार युग रूपान्तर के बाद कुछ भी असंभव नहीं। उन्होंने जिस मानव की कल्पना की है वह सृष्टि में जन्म लेगा या नहीं, यह वे नहीं जानते। वे तो सिर्फ वर्तमान मानव को एक नया दिशा बोध देना चाहते हैं। उसी के अनुसार उन्होंने अपने महाकाव्य में एक आदर्श मानव की कल्पना प्रस्तुत की है जो इस लोक के आदर्शों पर ही आधारित है।

"पतझर एक भाव क्रांति" में भावी मानव का चित्र प्रस्तुत करते हुए कवि ने कहा है कि वह स्वयं अपने से शासित होगा और किसी का शासक नहीं होगा। यह संयमनिरत मानव अवश्य ही दिव्यपुरुष होगा -

"भावी मानव किसे कहोगे ?
जो अपने से शासित,

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.677

जो न किसी का शासक, शोषक, –
मनुज-प्रीति प्रति अर्पित ।"[1]

"शंखध्वनि" में पन्तजी का मानव पक्ष सबल है । मानव का सुख अमित भोगवाद में नहीं और आदर्शों को "कल्पित" कर देने में भी नहीं है । कवि के शब्द में -

"अपना दास जगत का नेता है
वह दुःशांत रंग अभिनेता,
आत्म अंध, बनता युग वेत्ता,
जयी साध्य पर साधन ।"[2]
xx x xx
भोगवाद के प्रति वह अर्पित
आदर्शों को गिनता कल्पित ।
मृग तृष्णा से जीवन कुंठित
उर में कटु स्पर्धा रण ।"[3]

पन्तजी की "आस्था" काव्य में मानव के प्रति अकलंक संवेदना संरक्षित है । उनका संदेश है कि भारहीन उन्मुक्त हृदय से मानव ईश्वर के निष्कलुष विश्व में निर्भय होकर विचरें । मनुष्य-मनुष्य के बीच संशय और स्पर्धा का भाव कल्याणकारी नहीं है -

---

1. पतझर एक भावक्रांति - पन्त, पृ॰160
2. शंखध्वनि - पन्त, पृ॰73
3. वही, पृ॰72

"भला लाभ ? नर स्वर्ग विचुंबी
सौध में रहे
और नरक यातना सहे
कटु स्पर्धा दंशित ।"[1]

विगत के खंडहर से अब नया भविष्य झांकता है । विश्व सभ्यता जातिवर्ग में विभक्त थी । धर्म, नीति, बुद्धि और दर्शन के मूल्य खंडित हो गये थे । लेकिन आज विगत युग की यह विडम्बनायें नष्ट हो रही हैं । जन-भू के आंगन पर नया प्रभाव उतर आता है । सब कहीं नये मानव का स्वागत होता है -

"मनुज हृदय में अन्तरिक्ष का
नव वातायन
युग युग से अवरुद्ध
खुल रहा श्री ज्योतिर्मय,
दूर दूर से चलते
अगणित चरण अपरिचित
पास आ रहे प्रतिक्षण
वृहदाकार मनुज बन !"[2]

कवि को मानव पर दृढ विश्वास है । वह युग यथार्थ के क्रमविकास को आत्मसातकर आगे बढ़ता है -

"युग यथार्थ के
क्रम विकास को आत्मसात् कर !

1· आस्था - पन्त, पृ·31
2· वही, पृ·207

मानव पर विश्वास मुझे
ईश्वर पर आस्था ।[1]"

कवि आत्मज्ञानी महापुरुषों से प्रार्थना करता है कि वे संसार के सम्मुख आवें और मानव को मानव बनने की शक्ति और सिद्धि दें -

"आत्मज्ञान के ओ दाताओ
सम्मुख आओ,
मानव को मानव बनने की
शक्ति, सिद्धि दो ।[2]"

आजकल मानव जडवत्, निष्क्रिय रहना चाहता है । लोगों के परिश्रम से भूमि स्वर्ग बनती है और भूमि के ह्रास से नरक बनता है । अब मानव का मन ही मानव को खाता है -

"निखिल विश्व ही आज अनाथालय,
सुलभ मनुज को जहाँ न सुख साधन,
अकथनीय जन भू विकास की स्थिति
मानव भक्षी अभी मनुज का मन ।[3]"

धरा पंक में लघु मानव कृमियों के समान काम, द्वेष और कुत्सा से रेंग रहे हैं । मानव को पूर्ण मानव बनने केलिये भू प्रांगण को रस शुद्ध बनाना है -

---

1· आस्था - पन्त, पृ·227

2· वही, पृ·33

3· लोकायतन = पन्त, पृ·488

"मानव बन सकता न पूर्ण मानव
जब तक हो रस शुद्ध न भू प्रांगण,
ज्ञान त्याग तप,-विकसित प्रेम बिना
रिक्त, अनुर्वर, क्षुण्ण विमुक्ति साधन[1] ।"

भू पर मानव सब समान है । वह भगवान के चित्कणों का अंश है -

"मानव मानव सब समान भू पर
ओर छोर करने भू के दीपित,
मानव भगवत् पावक का चित्कण,
निर्णय लेना जन भू हो संस्कृत !
भेद नहीं कुछ मानव मानव में
वह मांस तन, एक हृदय स्पंदन,
मनुजों में नित मनुज एक चिद् घन[2] ।"

मानव को ईश्वर केन्द्रित होकर आगे बढ़ना है । एक दूसरे का अहित न करना चाहिये -

"मनुज एक - यदि एक दूसरे का
अहित न वह चाहे, पथ बाधक बन,
पथ अनंत, सद्गति अनंत मंगल,[3]
ईश्वर केन्द्रित हो जो जन भू मन ।"

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.501
2. वही, पृ.526
3. वही, पृ.577

मानव को आज धरा पर ईश्वरत्व की शक्ति-अर्जित करनी चाहिये । भूमि को स्वर्ग बनाने केलिये अंतर्जग का सत्य संजोना है -

"बृहद् अणुबल हो रचनाशील
सँवारे बहिर्जगत का वेश,
सँजोये अंतर्जग का सत्य
आत्मबल,-भू हो स्वर्ग अशेष ।"[1]

जन के मंगल श्रम से ही जीवन ईश्वर का अर्चन करना है । लोगों के मन की उन्नत आकांक्षा ही ईश्वरपद के पूजन की सामग्री हैं । अस्थिमांस के स्वस्थ देह रूपी मंदिर से ईश्वर दर्शन संभव है -

"निश्छल उर नैवेद्य अनघ निश्चय
सरल दृष्टि ही अपलक नीराजन,
अस्थिमांस की स्वस्थ देह मंदिर,
जन जीवन गरिमा ईश्वर दर्शन ।"[2]

ईश्वर-दर्शन जग जीवन में ही संभव है -

"जग ही में संभव प्रभु दर्शन,
भव-ब्रह्म सत्य, यह निःसंशय
ईश्वर प्रतिनिधि शाश्वत मानव
रज रूप मर्त्य नर से अतिशय ।"[3]

1· लोकायतन - पन्त, पृ·412

2· वही, पृ·434

3· वही, पृ·636

इसी आशय को कवि ने "पतझर एक भावक्रांति" में भी चित्रित किया है -

"जग जीवन से पृथक नहीं
ईश्वर मेरे हित
मुझे ज्ञात,
जगती में होना उसको मूर्तित ।
संभव तभी समग्र रूप में
प्रभु के दर्शन
जब वे तन मन प्राण
हृदय कर जन के धारण -
विश्व रूप में होंगे प्रकट
सृजन-महिमा में,
श्री शोभा मंगल सुख में,
श्रम की गरिमा में [1] ।"

मानव को भू जीवन से बाहर ईश्वर को खोजने की आवश्यकता नहीं । ईश्वर मनुष्य के भीतर ही बसता है । मानव और ईश्वर में कोई भेद नहीं -

"स्वाभाविक जीवन ही रे
आध्यात्मिक जीवन,
कहाँ खोजते प्रभु को
भू जीवन से बाहर ?
ईश्वर ही का तो स्व-भाव
प्रसरित अगजग में
अपने ही में पाता है
मानव को ईश्वर [2] ।"

---

1. पतझर एक भावक्रांति - पन्त, पृ. 186
2. आस्था - पन्त, पृ. 54

मनुष्य दिनरात, साँस-साँस ईश्वरप्राप्ति केलिये प्रार्थना करता है । लेकिन उसे मालूम नहीं ईश्वर उसके हृदय में ही बसता है -

"साँस-साँस प्रार्थना कर रहा
जिस ईश्वर की
वह हम में ही शत-दिवस
सोता-जगता नित[1] ।"

हे बंधु ! मृत्यु से ऊपर उठना हो तो अपनी क्षुद्र प्रकृति और क्षुद्र वृत्ति को छोड दो । ईश्वर मनुष्य के हृदय में वास करता है -

"देह मोह भी छोडो
स्थित रह अन्तरतम में,
हृदय कमल के भीतर ही
ईश्वर का आसन[2] ।"

भविष्य का रूप गढने केलिये हमको उतावली होती है । मनुज जीवन की सहज पूर्णता के ऊपर आज हम अतिमन की पूर्णता स्थापित करते हैं -

"मन की सीमाओं से मुक्त
मनुज जीवन को
(गत स्थितियों की
सीमा से हत) नयी चेतना से
संयुक्त हमें करना है,
जो संचालित करे उसे

---

1. आस्था - पन्त, पृ.57
2. वही, पृ.84

नव विकसित
भू - स्थितियों के जग में[1]।"

मनुष्य देह मिलने केलिये पूर्वजन्म में हमें कई सुकृत करना पड़ता है। ऐसे मिले मनुज देह की सार्थकता केलिये ईश्वर - भजन अनिवार्य है -

"पारकर चौरासी पशु योनि
कहीं मिलती तब मनुष्य देह,
भजन हरि का न किया तो व्यर्थ
जन्म नर का, तन भौंर खेह !
जगत् में आता मुट्ठी बाँध
जगत् से जाता हाथ पसार,
यही नर जीवन का इतिहास,
जगत माया का खेल असार[2]!"

5.1.1. मानवतावाद

मानवतावादी दृष्टिकोण पन्तकाव्य का उन्मेष है। सही मानव को पन्त जी ने ईश्वर समान घोषित किया है। "समाधिता" में मनुष्य को नरवेशी ईश्वर माना है -

"आत्मा का प्रतिनिधि हो
जग का जीवन बाहर,
विचरे धरती पर
संस्कृत नरवेशी ईश्वर[3]!"

---

1. आस्था - पन्त, पृ.209
2. लोकायतन - पन्त, पृ.321
3. समाधिता - पन्त, पृ.118

"लोकायतन" में कवि मानवता की सृष्टि में सर्वात्मना संलग्न है -

"सोचती, नरक योनी से, अंध
मनुज का हो कैसे उद्धार,
धरा पर रच नव जीवन स्वर्ग
मर्त्य उतरे तम सागर पार[1]।"

आज मनुष्य आत्मविजयी होकर प्रकृति पर अपना आधिपत्य स्थापित करता है। कवि का विश्वास है कि ईश्वर का नर के रूप में रूपान्तर हो गया है। ऐसे नवमानव की मानवता आज धरा का पर्याय बन गयी है -

"मानवता अब निखिल विश्व बोधक,
मानवता पर्याय धरा का नव,
राष्ट्रों, तंत्रों, धर्मों का निश्चय
सार-सत्य मंगल-प्रिय नव मानव[2]।"

"पुरुषोत्तम राम" में कवि स्वयं अपने जीवन की स्मृतियों के साथ सच्ची मानवता की खोज करते हैं -

"मनुष्यत्व की भास्वत गरिमा से दिङ्मण्डित।
आत्मा की रोटी प्रतीक तन मन जीवन की-
अभय आज देता भारत भू के देशों को
युग के उद्वेलित समुद्र में ज्योति-स्तंभ बन[3]!"

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.360
2. वही, पृ.561
3. पुरुषोत्तम राम - पन्त, पृ.40

मानव का मोक्ष, भू जीवन को कुंठित कर आत्मा की ओर उन्मुख हो रहने में नहीं है । गत युगों में हम ऐसा करने को बाध्य हो रहे थे । पर अब यदि हमें बदलना है तो उसकेलिये कटिबद्ध होना चाहिए ।

'यही मानवतावाद का यथार्थ आदर्श है, —
'आत्मानं सततं रक्षेत,-प्रसिद्ध उक्ति है,
जग प्रति विमुख, आत्म उन्मुख रहने ही में हित ।।
अंधों में काने राजा की नीति इसलिये
हमें अनिच्छापूर्वक सहनी, अंधे युग में ! —
जिसे बदलने जो कटिबद्ध हमें अब रहना ! "[1]

"पतझर एक भावक्रांति" में सच्चे मानववादी कवि का चित्रण हुआ है । कवि प्रतिक्षण विश्व-संस्कृति की विराटमूर्ति गढता है जिसमें भावी का अनिंद्य आनन प्रतिबिंबित हो सके -

"मैं भू-जीवन का कवि,
मानस-उर-शोभा से
गढता मूर्ति विराट
विश्व संस्कृति की प्रतिक्षण, —
संयोजित कर
भाव-विभाव वैचित्र्य तुम्हारा
बिम्बित हो जिसमें
अनिन्द्य भावी का आनन ![2] "

1· पुरुषोत्तम राम - पन्त, पृ·45

2· पतझर एक भावक्रांति - पन्त, पृ·37

महात्माओं ने बताया है कि मनुष्य, संसार में देने से बड़ा होता है, लेने से नहीं। मुक्ति भी इसी तरीके से प्राप्त होती है। नर को अपने से बाहर जाकर जीना है। मानवता का संरक्षण तभी संभव है -

"यदि केवल लेना ही जग में,
देना तनिक न जन-भू पग में,
स्वार्थ-समर हो तब पग पग में, —
अपने को अतिक्रम कर जीना
नव वरेण्य को सदा सुहाता !
xx x xx
औरों के हित भी रहता जो
वही मुक्ति निज-पर से पाता ![1]"

पन्तजी हमेशा जीवन में नव आलोक की कामना करनेवाले मंगलकांक्षी कवि हैं। वे भूजीवन को नव आलोक से भरने केलिये सदैव आत्मरत है। मानवता की शोभा उनका लक्ष्य है -

"मैं नव किरणें
भू जीवन में बो जाऊँगा,
नये सूर्य शशि उगें क्षितिज में,
ज्योतिपंख गाने गाऊँगा[2]।"

भावी मानवता की रचना के संबन्ध में कवि की राय ऐसी है -

---

1. पतझर एक भावक्रान्ति -पन्त, पृ.46
2. समाधिता - पन्त, पृ.59

"नया स्वर्णयुग
निश्चय ही आयेगा जग में,
मानव निज अन्तर गरिमा से
होगा परिचित !
त्याग, प्रेम, संयम, साहस,
धीरज, विनम्रता
उपादान भावी
मानवता की रचना के[1]।"

5·2· नवीन जीवन मूल्य

जीवन के प्रति बदलते दृष्टिकोण पर आधारित नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना और पुरातन रूढ़ियों के विरोध की कल्पना पन्त के काव्य में युगान्त से प्रारंभ हो गयी थी । लोकायतन की भविष्यत् कल्पना में भी इन नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना का दृढ़ शब्दों में समर्थन किया गया है । कवि के अनुसार भावी युग में वर्तमान जीवन-मूल्यों में रूपान्तर होगा । सामाजिक, आर्थिक, नैतिक-सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में जीवन के मापदण्ड बदलेंगे । प्राचीन दृष्टिकोण, परम्परागत रूढ़िया नैतिक आदर्श, आस्था-विश्वास सभी अपनी सारहीनता के कारण स्वत: लड़खड़ाकर गिर पड़ेंगी । उनके स्थान पर नवीन मूल्यों के स्वर्ण प्ररोह मानस में सोल्लास फूटेंगे । ये जीवनमूल्य मानस की समस्त आकांक्षाओं की पूर्तिकर जीवन के प्रति नवीन दृष्टिकोण देने में समर्थ हो सकेंगे । संस्कार और युग के अनुरूप मानव स्वत: ही इन मूल्यों को स्वीकार कर जीवन की महान उपलब्धि को प्राप्त करेगा ।

1· आस्था - पन्त, पृ·85

"लोकायतन" से "संक्रान्ति" तक की कृतियों में स्थापित जीवन मूल्यों की मुख्य विशेषतायें -

5·2·1· जाति-पाति, वर्गभेद, ऊँच-नीच आदि के स्थान पर समानता ।
5·2·2· नारी
5·2·3· शादी
5·2·4· दहेज प्रथा
5·2·5· परिवार नियोजन
5·2·6· बच्चों के प्रति
5·2·7· शिक्षा
5·2·8· कर्मण्यता की प्रधानता
5·2·9· विश्व-बन्धुत्व
5·2·10· मित्रता
5·2·11· मध्यवर्ग
5·2·12· अतियात्रिकता
5·2·13· जीवन में समन्वयवाद की प्रधानता
5·2·14· प्रेम की विशुद्धि

5·2·1· जाति-पाति, वर्ग-भेद, ऊँच-नीच आदि के स्थान पर समानता

कवि जाति, वर्ग, धर्म के जर्जर बन्धनों से मुक्त एक आदर्श समाज की स्थापना करना चाहता है । इस जग-जीवन की दयनीय दशा प वे सहानुभूति प्रकट करते हैं । आज के लोगों में कोई अंत:संतुलन नहीं है । राग-द्वेष के मेघ सब कहीं उमडते घुमडते हैं । कवि भौतिक संपत्ति को

लोकमंगल केलिये सबको वितरित करना चाहते हैं । उनके अनुसार जन भू के नव संयोजन और नूतन भाव-क्रांति केलिये आज नये नये मनुजों की आवश्यकता है-

"छिन्न भिन्न हों जाति वर्ग,
धर्मों के जर्जर बन्धन
नव स्त्री-पुरुषों का समाज हो
मनुज-हृदय का दर्पण ।[1]"

जाति-पाँति, वर्णों के विष से लोगों को मुक्तकर एक दिग् विस्तृत राष्ट्रीयमानस का निर्माण करना है -

"गत जाति पाँति वर्णों के
विष से विमुक्त कर जन मन,
जड रूढि रीति का तम हर,
युग दीपित कर भू प्रांगण -[2]

कवि की राय में भारतीयों की भलाई केलिये एक सामाजिक क्रांति अनिवार्य है । जाति वर्णों में उलझी मानव-चेतना को राष्ट्र में केन्द्रित करना है -

"सामाजिक क्रांति अपेक्षित
भारत जन के मंगल हित,
हो जाति वर्ण में बिखरी
चेतना राष्ट्र में केन्द्रित ।[3]"

---

1. पतझर एक भाव क्रांति - पन्त, पृ. 150
2. लोकायतन - पन्त, पृ. 171
3. वही, पृ. 172

चातुर्वर्ण्य के प्रति कवि अपना रोष प्रकट करता है। सभी वर्ण के मनुष्य विराट ईश्वर के हर अवयव के समान है -

"वह विराट् फिर परिणत हुआ मनुज समाज में,
कर्मों के अनुरूप हुआ वह वर्ण विभाजित,
सभी वर्ण अवयव समान उस दिग् विराट् के ।
विद्या, शौर्य, विभव, सेवा श्रम के प्रति अर्पित[1] ।"

जाति धर्म वर्णों से बाहर नव युग आत्मा की स्थापना करनी चाहिये -

"मनुज एकता ही नव युग आत्मा
महद् धरा जीवन में हो स्थापित,
जाति धर्म वर्णों से कढ भू मन
लाँघ राष्ट्र सीमा - हो दिग् विस्तृत[2] ।"

जाति-पाँति, रूढि-रीति को भस्मसात करके जनमन को युग भू पर स्थापित करना है -

"जाति पाँति के टूटें जड बंधन
भस्मसात् हो रूढि रीति कर्दम,
पूर्वाग्रहों से हो विमुक्त जन-मन
युग भू पर हो भव मानव संगम[3] ।"

कवि एकता का पक्षपाति है । सभी अंतर्विरोधों को भूलकर भारतीयों को संगठित होना है -

---

1· सत्यकाम - पन्त, पृ·194
2· लोकायतन - पन्त, पृ·575
3· लोकायतन - पन्त, पृ·576

"भव कुंठित अंतर्विरोध
मन के कर मर्दित,
अन्न वस्त्र भाषा के स्तर पर
देश एक स्वर
एक ध्येय वर
बने संगठित[1] ।"

आज की विषमताओं और जाति-पाँति का उन्मूलन करने केलिये बाह्यक्रांति के साथ साथ मनुष्य को आंतरिक क्रांति की आवश्यकता है । आंतरिक क्रांति के बिना बाह्यप्रगति अधूरी है । इसलिये हृदय को सारथी, बुद्धि को अर्जुन मानकर युग-रण में विजय प्राप्त कर एक नवयुग की स्थापना करना मनुष्य-धर्म है । "आंतर-क्रांति" नामक कविता में कवि का मंतव्य ऐसा है -

"भाव क्रांति ही से संभव
नवयुग परिवर्तन,
सारथि हृदय, बुद्धि अर्जुन बन
जीते युग-रण[2] ।"

"समाधिता" में जाति, संप्रदाय, धर्म और रूढि रीतियों के विरुद्ध पन्त का मन्तव्य ऐसा है -

"रूढि रीतियों में युग-युग की
जकडा भू-मन,
कंकालों - से खडे
अंधविश्वास घोर,

---

1. गीतहंस - पन्त, पृ. 173
2. पतझर एक भावक्रांति - पन्त, पृ. 183

जाति, संप्रदायों, धर्मों ने
जन-भू पंजर
जकड लिया !
घन अंधकार का नहीं छोर ![1]"

5.2.2. नारी

सामाजिक अस्तित्व केलिये नारी एक अनिवार्य अंग है । वह अपनी विविध अवस्थाओं में पुरुष को अपार स्नेह, वात्सल्य और सहयोग देती हुई जीवन पथ को अत्यंत आनंदमय एवं सुखपूर्ण बना देती है । कवि ने आधुनिक नारी की भव्यता और कुरूपता का वर्णन किया है ।

कवि का आह्वान है कि आधुनिक नारी को सीता, राधा और सावित्री के मानसिक भावों से ऊपर उठना चाहिये । शील शोभा में भूषित ओ भावी प्रेयसी, भू के आँगन में महिमा मंडित होकर विचरो । तुम्हारी देह-देह में, मन-मन में, आत्मा-आत्मा में तन्मय होकर प्राणों के वैभव से आलिंगित होकर विचरण करो -

"अतिक्रम कर श्री सीता,
राधा, सावित्री को
अग्नि परीक्षा, विरह वेदना,
दास्य भाव के
स्वर्णिम पिंजर के
गुंठन से मुक्त, अनाहत,
नयी प्रीति की बन प्रतीक
तुम उतरो भू पर ![2]"

---

1. समाधिता - पन्त, पृ.115
2. आस्था - पन्त, पृ.69

स्त्री अपने हृदय से जन धरणी पर स्वर्ग बसाती है वह इंद्रिय स्पर्शों से पवित्र बनाती है । उसके प्राणों के छिद्रों से सूक्ष्म वंशी ध्वनि निकलती है । कवि दर्शन के छायाभासों को छिन्न भिन्नकर ईश्वर को जन भू पर विचरण करना और नई चेतना में स्त्री को सौंदर्यमूर्त देखना चाहता है -

"जीवन के स्तर पर
जन भू पर विचरे ईश्वर
दर्शन के छायाभासों को
छिन्न भिन्न कर
नयी चेतना में स्त्री की
सौंदर्य-मूर्त हो[1] ।"

सामूहिक उन्नति केलिये स्त्रियों की मुक्ति कवि चाहता है -

"मां की सन्तानें हम
कोई कैसे भूले
पशु कारा में पडी बंदिनी ।
मुक्त करो मां, सखी
प्रेयसी को भविष्य की
तब सामूहिक योग
स्वत: साधेगी भू-जन[2] ।"

कवि की राय में नारी जहां बंदिनी है वहां स्नेह का स्वर्ग नहीं उतरेगा -

---

1· आस्था - पन्त, पृ·70
2· वही, पृ·191

"नारी को बंदिनी किये
गत पशु नर,
प्रीति-मुक्ति का स्वर्ग
धरा पर दूभर[1]।"

कवि पत्नी को "बद्ध-सरोवर"[2] नहीं मानता। वह निर्मल जल से भरी मुक्त सरिता मानता है। मन से जब स्त्री रुद्ध हो जाती है तब संसार की अवनति होती है। स्त्री की ममता अंधकार में जलती दीपशिखा जैसी है। कवि पत्नी की अपेक्षा प्रिया और प्रेमिका को ज्यादा स्थान देता है[3]।" प्रेमिका आत्म-शोभा का दर्पण है। परिजन पति पुत्रों में सीमित स्त्री की अपेक्षा विश्वयज्ञ की ज्वाला में अर्पित स्वतंत्र स्त्री को कवि श्रेष्ठ मानता है -

"असती वह,
जो परिजन पति पुत्रों में सीमित,
सती वही
जो विश्व यज्ञ ज्वाला को अर्पित[4]।"

नारी के प्रेम को कवि सुकृत मानता है -

"स्त्री का प्यार मिले
जन्मों के पुण्य चाहिये,
भव जीवन को
प्रेम सिन्धु में डूब चाहिये[5]।"

---

1. आस्था - पन्त, पृ. 97
2. गीतहंस - पन्त, पृ. 12
3. वही, पृ. 12
4. वही, पृ. 13
5. शंखध्वनि - पन्त, पृ. 175

स्त्री को कवि मलयानिल के समान रोमांचित करनेवाली मानता है। पुरुष का आकुल अंतस्तल स्त्री के साँसों की सौरभ से छू जाता है। आगे कवि का कहना है कि

"सुन्दर स्त्री भी है जग में, मन पुलकित रहता,
घेरे रहती स्मृति छायायें उर को अनुक्षण,
तुम सृजन हर्ष के पंख खोल गाती चुपके
भावी के श्री सुख स्वप्नों से भर जाता मन[1]।"

कवि की कामना है कि नारी भोग का साधन न बनकर अपनी हृदय निधि संपूर्ण विश्व के सृजन पल को अर्पित करे। इसी प्रकार की विचार भूमि को लेकर "गीतहंस" के एक गीत में कवि ने व्यक्त किया है -

"मैं फिर से तुमको हर ले जाऊँगा वन में,
वन के निश्छल मुक्त निसर्ग-निभृत प्रांगण में[2]।"

यहाँ पर कृत्रिम भावनाओं, मिथ्या विश्वासों में लिपटी आधुनिक नारी को कवि पुनः अतीतकालीन परिवेश में प्रकृति के मुक्त लीला प्रांगण में ले जाना चाहता है। आज के नारी सौंदर्य को सात्त्विक और पवित्र होना है। प्रीति की सुधा-धार में नहाई हुई नारी सरल और निश्छल बने, तभी वह मानव के हृदय का सच्चा प्रतिनिधित्व कर सकेगी और इस पृथ्वी के पथ को पवित्र कर सकेगी। क्योंकि वह सखी, प्रेयसी अथवा माँ कोई भी हो, सब से पहले शाश्वत मन की शोभा का प्रतीक है। उसके हार्दिक गुणों में ईश्वर का दर्शन होना चाहिये -

---

1. शंखध्वनि - पन्त, पृ.108
2. गीतहंस - पन्त, पृ.42

"सखी, प्रिये, मा, तुम सर्वोपरि शोभा शाश्वत,
तुम में मैं भू पर ईश्वर का करता स्वागत ।
सरल बनो, निश्छल, प्रियतमे,
प्रतीक्षा-रत जन,
मनुज हृदय प्रतिनिधि बन
करो धरा - पथ पावन [1] ।"

कवि नारी का यशोगान करता है । स्त्री का तन गृह में होने पर भी उसका मन सामाजिकता में है । उसके हृदय में दूसरों के प्रति प्रीति की अपेक्षा करुणा है । उस ममतामयी के पदतल स्पर्शों से पृथ्वी भी पुलकित हो जाती है । उसके मन के स्पर्शों से मरणोन्मुख दुनिया भी जीवित हो जाती है -

पद तल स्पर्शों से उसके
भूतल हो पुलकित -
मन के स्पर्शों से
मरणोन्मुख जग नव जीवित [2] ।"

कवि स्त्री को जीवित करुणा और भू पथ पर प्रीति सुधा बाँटनेवाली समझता है -

"जीवित करुणा
अंतः सुषमा में सी भूर्तित,
प्रीति-सुधा भू-पथ पर इच्छित
करतीं वितरित -
लाज उषा, शोभा में गुंठित [3] ।"

1· गीतहंस - पन्त, पृ·177

2· समाधिता - पन्त, पृ·60

3· पतझर एक भाव क्रांति,- पन्त, पृ·142

कवि युग-युगों से बन्दिनी नारी को मुक्त कराना चाहता है वह मानव की जननी है और निखिल सृष्टि उसके ही आश्रित है । वह अपने सहजशील संयम से संस्कृति का निर्माण करेगी । उसके कारण पशुकर्म भी मनुज कर्म में बदल जायेगा । मातृहृदय के सामने नर की आक्रामक बुद्धि विचलित हो जाती है । नारी को बंदिनी बनाने का अर्थ यह है कि मनुष्य में अब भी पशुता का वास हो भू जन को सामूहिक योग मिलने केलिये कवि नारी को मुक्त करना चाहता है -

"माँ की सन्तानें हम,
कोई कैसे भूले
अपनी माँ को
पशु काश में पड़ी बंदिनी ।
मुक्त करो माँ, सखी,
प्रेयसी को भविष्य की,
तब सामूहिक योग
स्वत: साधेगी भू-जन[1] ।"

कवि का विश्वास है कि जहाँ नारी स्वतंत्र नहीं वहाँ के लोग सभ्य नहीं होंगे -

"सभ्य न हो सकता समाज वह
जिसमें नारी मुक्त न हो !
कर्दम से ऊपर
अपनी ही सुन्दरता में
निखरी सरोज सी[2] ।"

1· आस्था - पन्त, पृ·19।

2· समाधिता - पन्त, पृ·15।

इसी आशय की एक कविता उनके "गीत-अगीत" में मिलती है। कवि अंतर्राष्ट्रीय महिलावर्ष का स्वागत करता है। नारी युग युग के पाशों से बद्ध है। उसके सामने नित्य अनेक समस्यायें आती हैं। सामाजिक जीवन में वह हमेशा दूसरों की सहायता करती है। नारी संस्कृति की दीपशिखा और जन्म से चिर सहृदय है। जनजीवन की भलाई केलिये वह जीवित रहती है। घर की चहारदीवारी को लांघकर उसे स्वतंत्र विचरण करने का अवसर देना चाहिये। युग-युग से बन्दिनी वह पुरुष के भावों को आत्मसात्कर आगे बढ़ती है। स्त्री के बिना जग का जीवन ही अधूरा रहता है। कवि मानव गरिमा का मुख्य सोपान स्त्री-युग को मानता है -

"युग-युग की बन्दिनी
जगत गति से हो परिचित
स्त्री नर के भावों के
विनिमय से उर शिक्षित।
उसके बिना अधूरा ही था
जग का जीवन,
मानव गरिमा स्त्री-युग के संग
करे पदार्पण।"[1]

कवि की राय में नारी को स्वतंत्र होकर विचरण करने का अवसर देना है -

"मुक्त प्राण विचरे नारी
जन-भू प्रांगण पर,

---

1. गीत - अगीत - पन्त, पृ.4।

भावी संतति वाहक वह
जाग्रत हो अंतर[1] ।"

"शंखध्वनि" में आधुनिक नारी पर लिखी गयी एक कविता है । आज स्त्री घर आंगन की देहरी लांघकर सभी क्षेत्रों में नेतृत्व ग्रहण कर आगे बढती है । वह इंजनीयर, डाक्टर, प्रशासक, प्राध्यापक पर्वतारोही, सैनिक, कुशल यान चालक, युग-प्रबुद्ध, शिक्षिका, समाज निर्माता, नेता, मंत्री आदि कई रूप में पुरुष वर्ग से होड लेती है और समकक्षी बनती है । लेकिन पुरानी स्त्रियों की अंतश्चेतन गरिमा आज की नारियों में नहीं -

"निखिल सभ्यता बनी प्रसाधन युग रमणी की,
पर अंत: सौंदर्य खो गया - प्रमुख विभूषण,
भोग्य तल्प वह मात्र न श्रद्धापात्र प्रीति की
हृदय-सत्य ही साध्य-सभ्यता संस्कृति साधन[2] ।"

कवि स्त्री के बाहरी सौंदर्य का पुजारी है । स्त्री के आंतरिक सौंदर्य पर उसे कोई विश्वास नहीं -

"स्त्री श्री-सुंदरता की प्रतीक
उसका अजेय उर आकर्षण
स्त्री के प्रिय अंगों से लिपटा
रहता विस्तृत-सा जन-यौवन ।
स्त्री भले रूप की हो प्रतिनिधि,
पर मन से सुन्दर ही सुन्दर,
गूलर फल सा सौंदर्य बाह्य
स्थायी न हृदय में करता घर[3] ।"

1· पतझर एक भाव क्रांति - पन्त, पृ·24।
2· शंखध्वनि - पन्त, पृ·43
3· समाधिता - पन्त, पृ·74

आधुनिक युवतियों को कवि धरती की श्रीशोभा की प्रतिनिधि मानता है । लेकिन युवतियाँ अपने रूपबोध में खोकर रहती हैं । यह दयनीय स्थिति देखकर कवि याद दिलाता है -

"शील, मन: संस्कारों ही का
मूल्य महत्तर,
अंत:संस्कृत हो तुम को
संस्कृत करना नर ।"[1]

नारियों को स्वयं संस्कृत होना है और पुरुषों को भी संस्कृत कराना है । इसलिये स्त्रियों को स्वस्थ आत्मविकास होना चाहिये । उसके मन में अपने गृह की भलाई का सोचविचार सदा होना है क्योंकि भावी जग में गृहिणी ईश्वर की प्रतिनिधि बनेगी -

"जीवन को व्यक्तित्व नया
देना दिग् भास्वर,
भावी जग में तुम
ईश्वर की प्रतिनिधि सुन्दर ।"[2]

कवि संतुलित भोग के पक्षपाती है । वह भू जीवन का संयमित भोग चाहता है । वह शुभेच्छुक है कि स्त्री कभी अपवित्र नहीं होती क्योंकि वह सब चराचर की माँ है -

---

1. समाधिता - पन्त, पृ.123
2. वही, पृ.123

"यह सामूहिक ब्रह्मचर्य होगा वास्तव में,
लोग संयमित-भोग करेंगे भू-जीवन का !
स्त्री न कभी होती अपवित्र चराचर की मा,
अनघ-विद्ध स्त्री की पवित्रता सृष्टि-चक्र में[1] ।"

स्त्री के प्रति जो नर कटु काम-द्वेष रखता है उसे प्रकृति मुक्ति का परमोल्लास कभी मिलता नहीं । जब स्त्री निर्भय होकर धरा पर विचरण करेगी तब जन-भू जीवन संस्कृत हो जायेगा और मानव निश्चय ही मानव बन जायेगा -

"कितना संस्कृत हो जायेगा जन-भू जीवन
स्त्री जब विचर सकेगी निर्भय, मुक्त धरा पर,
मानव तब निश्चय ही मानव बन जायेगा !
x x   x x   x x
शील संयमित, आत्म-संतुलित होगी स्वयमपि
स्त्री तब नयी परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर[2] ।"

लोकायतन में भी ऐसा एक प्रसंग है । जब स्त्री स्वतंत्र और निर्भय होकर दुनिया पर विचरेगी तब पृथ्वी स्वर्ग बन जायेगी -

"देख रूप वैभव कहता कवि मन
नारी तुम भू शोभा हो अक्षय,
भू पर अभय फिरेगी जब शोभा
स्वर्ग उतर आयेगा तब निश्चय[3] ।"

---

1. सत्यकाम - पन्त, पृ.91
2. वही, पृ.92
3. लोकायतन - पन्त, पृ.45।

इसी प्रकार स्त्री स्वातंत्र्य के पक्षपाती कवि का और एक मुख भी है । स्त्रियों को स्वातंत्र्य देने की आवश्यकता नहीं । अगर स्त्रियों को स्वतंत्रता दें तो धर्मबल क्षीण हो जाता है -

"नहीं नारी स्वतंत्रता योग्य
धर्मबल होता उससे क्षीण,
पिता माता का घर वह छोड़
रहे पति सुत के सतत अधीन ।"[1]

"गीत-अगीत" की एक कविता में कवि के मन में नारी के प्रति जो श्रद्धालु रूप है वह एकदम बदलता दिखाई देता है । पुराने समय की स्त्री रूप और शील की साकार मूर्ति थी । लेकिन आज की नारी शील को त्यागकर रूप की ओर अग्रसर हो रही है । आज स्त्री का हृदय असंतोष व कुंठाओं से जर्जर है और अति कामतृष्णा से उसका श्रीहीन शरीर शोषित है । प्रसाधनों से अपने रूप को मोहित करने की कोशिश में उसकी सुन्दरता कागज के फूलों के समान नीरस बन गयी है । एक समय नारी घर आंगन की शोभा थी । लेकिन अब विधि की मारी छायामात्र रह गयी । स्वतंत्रता की आंधी में स्त्री के चरण भटक गये हैं -

"स्त्री-स्वतंत्रता की आंधी में
भटक गये पग,
सूझ न पाता भावोद्वेलित
अन्तर को मग !
स्वतंत्रता का स्वस्थ भोग
वह करे निरन्तर,

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.316

उसे शील की रक्षा करनी
धीर चरण धर ।"[1]

एक स्त्री जब विधवा हो जाती है तब उसका जीवन एकदम कष्टपूर्ण बन जाता है । कवि की सहानुभूति ऐसी है -

"कठिन भू पर विधवा का धर्म
x x x
देह-सुख शूलों की खर सेज
क्षणिक इंद्रियाँ नरक दु:ख द्वार,
उसे रखनी निज कुल की लाज,
वही दाहक अंगार शृंगार ।"[2]

5.2.3. शादी

लोकायतन स्वस्थ सामाजिक जीवन केलिये प्रशिक्षित करने की अनिवार्यता पर बल देता है । भारत में प्राचीनकाल में स्वयंवर की प्रथा थी, स्त्री को अपने लिये पति वरण का अधिकार था । पंत का यह काव्य इस प्रथा को अधिक व्यापक और संस्कृत बनाता है । ताकि युवक-युवतियों को एक दूसरे को पहिचानने केलिये उचित रागात्मक शिक्षण और उन्नयन का अवसर मिल सके । जब युवती किसी युवक को चुन ले तो उसका यह चयन स्थायी होने के साथ ही उसके तथा समाज एवं विश्व केलिये मंगलमय हो ।

---

1. गीत-अगीत - पन्त, पृ.39
2. लोकायतन - पन्त, पृ.317

कवि की राय में शादी में दो निश्छल हृदयों का परिपूर्ण समर्पण होता है। हाथ पकड़कर स्त्री पुरुष अपने हृदय समर्पित कर देते हैं। बिना व्याह के भी दो मन समर्पित कर सकते हैं। वे जीवन के रथ-चक्रों से बंधकर सदा एक साथ रह सकते हैं। एक दूसरे पर न्योछावरकर प्रेम का पथ सहज रूप से पारकर मार्ग के सभी कंटकों को सहकर जीवनानुभवों को रस में परिणत करना चाहिये -

"प्रेम अग्नि की
परिक्रमाकर, कुचलमार्ग के
खर कुश कंटक
धूप ताप सह,
जीवन अनुभव में
रस परिणत।"[1]

शादी केलिये पैसे का अपव्यय कवि की दृष्टि में अहंकार का घोर प्रदर्शन है -

"व्याह शादियों में
करते वे घोर अपव्यय,
ऋण के बल पर
अहंकार का घोर प्रदर्शन।"[2]

---

1. आस्था - पन्त, पृ.238
2. वही, पृ.237

उन्मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति पर "लोकायतन" में पूर्वकाव्य की अपेक्षा विशेष बल दिया गया है । इस संदर्भ में रीति-रिवाजों (विवाह बन्धन) में बंधे, रज-तनतक सीमित प्रेम की कटु आलोचना कवि ने की है । उसे अनुचित, पशु-तुल्य मानव-वासना की संज्ञा दी है ।

"तन-तृप्ति स्वर्ग हो पशु का, मानव का मन
सौंदर्य तृप्ति के स्वर्ग खोजता नूतन !
xx xx xx
स्त्री रज तन से लिपटा छाया सा नर मन -
वह प्रेम नहीं, तृष्णा भुजंग का बंधन ।"[1]

इसके स्थान पर प्रतिष्ठित पवित्र प्रेम की व्याख्या भी पन्त ने स्थान स्थान पर की है । पवित्र-प्रेम कटु काम द्वेष से मुक्त, शोभा तंत्री आनंद करों से झंकृत, मन को माधुर्य रस में डुबो देनेवाला अन्तः प्रकाश है[2] । उसे आध्यात्मिक चेतना की संज्ञा दी जा सकती है

"वह प्रेम तत्व ! बहु एक, बुद्धि मन कल्पित,
सीमा असीम, शाश्वत अनित्य तन्मय नित[3] ।"

भावी समाज में इसी प्रेम को स्थान मिलेगा । तन की देहरी पर बलिदान होनेवाले क्रूर प्रेम को यहाँ स्थान नहीं मिल पायेगा[4] ।

1· लोकायतन - पन्त, पृ·222
2· वही, पृ·223
3· वही, पृ·231
4· वही, पृ·291

स्त्री पुरुष दोनों को प्रेमाभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता होगी[1]।" वे मन की बात एक दूसरे पर प्रकट करने केलिये स्वच्छंद होंगे। परिणाम स्वरूप समाज में नित नये स्नेह संबंध स्थापित होंगे और नारी पुरुष दोनों एक दूसरे के जीवन सत्य से अवगत हो सकेंगे -

"छिपायें वे न मर्म की बात
प्रेम ही प्रकृति, पुरुष स्त्री एक,
सत्य जीवन का होता ज्ञान[2]।"

इस प्रकार के स्वच्छंद प्रेमार्पण को ही समाज में पाणिग्रहण की संज्ञा दी जायेगी। इस आधार पर जन्म लेनेवाली सन्तान वैध होगी और वह किसी विशेष अंश या गोत्र से संबोधित न होकर "मानवकुल" से संबंधित होगी -

"सत् प्रेमार्पण ही पाणिग्रहण,
मानवकुल ही शिशुकुल पावन,
संस्कृत अंतर ही जन संपद,
भू आँगन सब का घर आँगन[3]।"

इस प्रकार कवि ने भारतीय विवाह पद्धति का आधार उन्मुक्त और स्वाभाविक प्रेम को बताया है जो बहुत कुछ पाश्चात्य देशों से प्रभावित है। विधिवत् जो पाणिग्रहण होता है उस पर कवि को आस्था नहीं। शिशु को दो जनों की प्रणय संतति मानता है। कवि की राय में -

---

1. लोकायतन - पंत, पृ.225
2. वही, पृ.290
3. वही, पृ.658

"जाति गोत्र-गत वैवाहिक प्रजनन
विगत सांस्कृतिक मूल्य भले स्वीकृत,
काम जनन मेरे मत में जारज
प्रीति प्रसव ही लोक मूल्य संस्कृत[1] ।"

कवि विवाह बंधन को सामाजिक स्वीकृति और भू विकास क्रम केलिये आवश्यक भी मानता है[2] । लेकिन उसे शुभ्र प्रीति की परिणति मानने को तैयार नहीं । वह भोगलालसा की अनुमतिमात्र है -

"भोग लालसा की अनुमति भर वह,
युग्म कक्ष में बद्ध भावना गति,
अंध काम आवेगों से प्रेरित
कृमियों सी रेंगती मनुज संतति[3] ।"

स्त्री-पुरुष की शुभ्र प्रीति से ही भावत्गुण अभिव्यंजित होता है

"नर नारी की शुभ्र प्रीति ही में
भावत् गुण हो सकते अभिव्यंजित,
प्रीति नींव पर ही श्री शोभा का
सौध सांस्कृतिक हो सकता निर्मित[4] ।"

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.505
2. वही, पृ.505
3. वही, पृ.505
4. वही, पृ.506

कवि राम-संस्कृति का अभिनंदन करता है । रामायणकाल में पति-पत्नी के बीच में जो संबंध था, उस की कवि प्रशंसा करता है । वह कुटुम्ब को प्रीति की इकाई मानता है । स्त्री पुरुष के आपसी संबंध में कुछ शिथिलता या मुक्ति आये तो दोनों का सर्वनाश हो जायेगा -

"शुभ्र राम संस्कृति के पथ से ही
संभव स्त्री नर का जीवन मंगल,
हो सतीत्व की स्फटिक मूर्ति नारी,
गृह खूँटे से बँधा स्नेह अंचल !
प्रीति इकाई हो कुटुम्ब-स्त्री नर
ग्रंथिबद्ध ही मुक्त, नहीं संशय,
लाँघ.बुद्धि के पुलिन भाव-धारा
कर्दम में धस जायेगी निश्चय[1] ।"

कवि सभी प्रान्तों की वधुओं की साजसज्जा का वर्णन करता है दक्षिण भारत की वधु के संबन्ध में कवि की राय ऐसी है -

"नृत्य भंगि निपुणा दक्षिण वामा
गीत - कंठ में जलधि-तरल लय-स्वर,
धीर, अकुंठित, पट संस्कृति विरहित,
सरल हृदय, जीवन पथ की सहचर[2] ।"

1· लोकायतन - पन्त, पृ·500

2· वही, पृ·450

5·2·4· दहेज प्रथा

दहेज प्रथा के विरुद्ध कवि अपना अचूक व्यंग्य एक कविता में स्पष्ट करता है । आज समाज में आइ·ए·एस·, इंजीनियर, डाक्टर, प्रोफसर और अडवोकेट का मूल्य निश्चित हो गया है । दहेज प्रथा आज एक पुरानी कथा है लेकिन वह माँ-बाप की व्यथा है । पढ़ी लिखी युवती पिता केलिये एक बोझ है । माता लड़की के बारे में सोचकर गुमसुम हो गयी और पिता की सुधबुध खो गयी । सब की पीडा अवर्णनीय है । अन्त में दुःख सहते सहते युवती डूब मरी । कन्या की मृत्यु माता-पिता सब केलिये तत्काल दुःख का कारण बन गयी । लेकिन उसकी मृत्यु का परिणाम सुखकारी है । क्योंकि माता पिता दहेज प्रथा से बच गये । कन्या की मृत्यु रूढिबद्ध समाज में कोई परिवर्तन न लायी । अर्थात् इस प्रकार हज़ारों लडकियाँ भी आत्महत्या करें तो भी दहेज प्रथा में कोई परिवर्तन नहीं होगा -

"कन्या मरण
तत्काल दुःख
परिणाम सुख
चरितार्थ कर गयी
हाँ, सखियों को आर्तकर गयी !
किन्तु जूँ भी नहीं रेंगी
रीति बधिर कानों में
रत्ती फर्क नहीं पड़ा
तिलक के कानों में [1]"

1· गीत-अगीत - पन्त, पृ·168

5.2.5. परिवार नियोजन

भारत की दिन ब दिन बढनेवाली जनसंख्या को देखकर कवि मन शंकित हो जाता है । परिवार नियोजन जैसे आज के सामाजिक प्रश्नों पर भी पन्तजी ने विचार किया है । परिवार नियोजन से धरणी का मुख सुन्दर हो जाता है । लोगों का मन शिक्षित और संस्कृत हो जाता है -

"कृमियों सी बढ़ जन संतति
भू भार बढाती प्रतिक्षण,
संपन्न धरा संभव तब
जब हो परिवार नियोजन[1] ।"

पन्तजी छोटे कुटुम्ब के पक्षपाती थे । "लोकायतन" में हरि के माध्यम से परिवार नियोजन के संबंध में कवि की राय ऐसी है -

"सिखाता संतति निग्रह मंत्र,
नियोजित यदि न मनुज परिवार
न संभवपूर्ण काम जन तंत्र ।
अशिक्षित, निर्धन, रुग्ण, अपाग
बढ़ाते व्यर्थ करुण भू-भार,
नरक क्यों बने न जन-भू स्वर्ग
नहीं जब प्रजनन पर अधिकार[2] ।"

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.174
2. वही, पृ.270

गर्भपात के वैधीकरण के प्रति भी कवि ने अपना विरोध प्रकट किया है । जब सरकार ने भ्रूणहत्या को नियमानुसार स्वीकृति दे दी तब कवि ने अपना आत्मरोष ऐसा स्पष्ट किया है -

"पशु स्तर पर ही अभी
सभ्यता भू पर जीवित
जो कि भ्रूण हत्या को करती
धिक् विधि-स्वीकृति[1] ।"

"गीत-अगीत" में भी ऐसी एक कविता है । सन्ततियों के बढ़ने से भूमि का भार बढ़ जायेगा । इसलिये उस भार को कम करना हमारा कर्तव्य है । लोगों को पाशविकता से मुक्त होना चाहिये -

"सन्तति निग्रह करो,
न बोझ बढे जन-भू पर,
पशुओं - से मत बनो,
न भू जीवन-पथ दुष्कर[2] ।"

कवि के विचार में अपनी इच्छा का परिवार नियोजन अच्छा है । आत्मसंयम का इन्द्रियनिग्रहपूर्ण जीवन को कवि उत्तम मानता है -

"ओ भारतजन
थोडे बच्चे अच्छे,
संभव जिससे पालन
पोषण शिक्षण !

1· समाधिता - पन्त, पृ·117
2· गीत-अगीत - पन्त, पृ·75

स्वेच्छा का परिवार नियोजन,
बल का जिस में हो न प्रदर्शन,
सर्वोपरि संयम, निरोध का
बाह्य प्रयोग दूसरा साधन ![1]"

5·2·6· बच्चों के प्रति

मानव शिशुओं का पालन पोषण उचित ढंग से नहीं करते । बच्चों को खिलौना या अबोध समझकर अपनी इच्छा के अनुरूप ढालते हैं । यदि शिशु विरोध करता तो उसे फटकारें और मार देते हैं । शिशुशिक्षा केलिये सूक्ष्मकल्पना चाहिये । शिशुओं को बाहर से कुछ भी नहीं सिखाना है वह बोधकेन्द्र है उसे अभिव्यक्ति की कमी है । उसे बाहर से कुछ भी संजोने की ज़रूरत नहीं । उसे ठीक समय पर भोजन देकर संरक्षा देनी है -

"आत्म-बीज का सहज
पूर्ण अंकुर है शिशु भी;
आलबाल भर बनना
उसके संरक्षक को !
जिससे भगवत् इच्छा
उसमें व्यक्त हो सके,
विश्व परिस्थितियों से
जीवन खींच सके वह ![2]"

1· संक्राति - पन्त, पृ·95
2· आस्था - पन्त, पृ·213

बच्चे कवि केलिये बहुत प्यारे हैं। कवि की राय में शिशुओं के नादान मुख देखने से मानव का दुःख दूर हो जाता है -

"आओ, देखें शिशुओं का मुख,
लूटें प्रिय वन-फूलों का सुख,
सन्तुलित चित्त जब हो मानव
तब दूर करे वह जग का दुःख!"[1]

बच्चे पृथ्वी पर ईश्वर के पवित्र प्रतिनिधि हैं। बच्चों केलिये नव धरा-स्वर्ग का निर्माण करना चाहिये। उन विकासप्रिय मृदु चरणों में काँटे नहीं गड़ें। उनकेलिये एक विशेष प्रबुद्ध शिक्षा-पद्धति की आवश्यकता है -

"इन केलिये गढ़ो
प्रबुद्ध शिक्षा पद्धति नव,
समझ सकें वे अपने को,
जग को, जीवन को!
ईश्वर के प्रति बँधे
अटूट स्वर्णिम आस्था में! —
जिससे वे निश्छल
पवित्र प्रतिनिधि पृथ्वी पर!"[2]

---

1. समाधिता - पन्त - पृ. 130
2. आस्था - पन्त, पृ. 95

बच्चों की आँखों के सामने प्रकाश के नये क्षितिज खुल जाते हैं। उनकी नयी उषायें नव जीवन रचने की नयी प्रेरणायें देती हैं। बच्चे राग-द्वेष से मुक्त शांति, आनंद और प्रेम सबको बिखेर देते हैं -

"राग-द्वेष से मुक्त -
शांति, आनंद प्रेम
परिवेश में घिरे
वे सौंदर्य बखेरें जग में
मनुज हृदय का ![1]"

5.2.7. शिक्षा

कवि की राय में भारत में अब शिक्षित नहीं है। अपने अपने विषयों के प्रकांड पंडित विद्वान बहुत हैं। लेकिन वे युग प्रबुद्ध नहीं हैं अर्थात् काल और विश्व जीवन पर उन्हें जानकारी नहीं। आज की शिक्षा नवयुवकों को विविध विषयों की सूचनायें मात्र देती है। युवकों में रचनात्मकता का नितांत अभाव है। शिक्षा को सच्चरित्रता का पर्याय मानें तो आज धोखा खाना पडेगा। वर्तमान शिक्षा से युवकों में कृत्रिमता का जन्म होता है। आज के शिक्षित अपने समाज की सेवा करने लायक भी नहीं। इसलिये कवि शिक्षा पद्धति में क्रांति या परिवर्तन चाहता है -

"इसीलिये नव यौवन
असंतुष्ट, दिग् भ्रांत
अतृप्त अशिष्ट आज है !
सर्वप्रथम
शिक्षा में क्रांति हमें लानी है[2]।"

1. आस्था - पन्त, पृ.96
2. वही, पृ.195

आज सब लोग साक्षर बनने के इच्छुक हैं -

"घर द्वार बेंचकर भी जन
आतुर, बनने को साक्षर,
नगरों की मौन चुनौती
स्वीकृत करता भू - अंतर !
बौद्धिकता के मित तम में
खोया अब सभ्य धरा मन,
संस्कृत बनना ही शिक्षित,
सात्त्विक विनम्र हों भू जन [1] ।"

सारे विश्व में युवकों की पीढी विद्रोही है । आज के युवक हिप्पी बनकर अनैतिक प्रौढ स्वार्थ में रत रहते हैं । वैभव संपन्न राष्ट्रों की यह स्थिति देखकर कवि का मन कराहता है -

"हिप्पी बनने युवक,
अनैतिक-प्रौढ स्वार्थ रत,
बहु वैभव संपन्न राष्ट्र
करते प्रयोग अब
अपनियमों पर -
सामूहिक संभोग कर्म पर [2] ।"

युवकों को आधुनिक शिक्षा ने पथभ्रष्ट कर दिया । प्राप्त शिक्षा से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं । भूमि की यथार्थ स्थिति से अनभिज्ञ होना इस का फल है। यथार्थ मानव की सृष्टि में शिक्षा काम नहीं आती -

---

1· लोकायतन - पन्त, पृ·174

2· समाधिता - पन्त, पृ·165

"जो शिक्षा धरती की जीवन-वास्तवता से
संबंधित ही न हो, न जन-भू की संस्कृति से,
जिसे प्राप्त कर युवक न अपना घर संजो सकें
औ" न देशसेवा कर पायें - किसे लाभ
उस रिक्त ज्ञान से ?
जो बाह्यारोपित अनुकृति भर ![1]"

5·2·6· कर्मण्यता की प्रधानता

समाज की भलाई केलिये लोगों को कर्मोन्मुख बनना चाहिये । कर्म के प्रति अनासक्त होकर अपने भाग्य को कोसना मनुष्य की मूर्खता है । पन्तजी के अनुसार असल में भाग्य पूर्वनिर्धारित वस्तु नहीं है, व्यक्ति स्वयं उसका निर्माण करता है । अत: ऊहापोह न करके ईश्वरीय आस्था रखने से सामाजिक जीवन की उन्नति होती है । अध्यात्मवाद के बीच में भी वे कर्मवाद की याद दिलाते हैं -

"ऊहापोह करो मत,
छूछा रीता चिन्तन,
जीवन ईश्वर पर आस्था रख
करो समर्पण ।[2]"

गीत-अगीत की और एक कविता में लोगों की अकर्मण्यता देखकर कवि आह्वान करता है -

---

1· पुरुषोत्तम राम - पन्त, पृ·47
2· गीत-अगीत - पन्त, पृ·72

"यह मन का पतझर है,
ओ भू के वनवासी !
छोड़ो निष्क्रिय आलस,
छोड़ो ग्लानि, उदासी ।"[1]

कवि वैमनस्य में उलझे मानव को सृजनकर्म की ओर अग्रसर होने का आह्वान देता है -

जागो हे भू - जन
छोड़ो निज वैमनस्य को,
रचना-श्रम में रहो निरत,
त्यागो आलस, भय !"[2]

कर्म करने केलिये कवि अगले जन्म में कर्मी बनना चाहता है । द्रष्टा, वक्ता और कवि बनने की अपेक्षा कर्मी ही पन्तजी को प्रिय है -

"भगवन्, जब मैं
पुनर्जन्म लूँ इस पृथ्वी पर
कवि के बदले
मैं कर्मी बन सकूँ जगत् में !
द्रष्टा, वक्ता, कर्मी में
मुझको कर्मी प्रिय !"[3]

---

1. गीत-अगीत - पन्त, पृ. 15
2. गीत-अगीत - पन्त, पृ. 105
3. आस्था - पन्त, पृ. 224

कवि कर्मवादी है । जीवन की भलाई केलिये उनका एक मात्र नारा ही कर्म है -

"कर्म ही ज्ञान,
कर्म ही ध्यान,
कर्म ही
सृष्टि विधान है[1] ।"

कर्मरूपी सेतु को बाँधकर जीवन सागर को पार करना चाहिये । लोक-कर्म रूपी नींव पर सामाजिक भवन का निर्माण करना है । सृजन उपकरण जुटाकर संस्कृति का सौध उठाना श्रेयस्कर है -

"लोक-कर्म नींव पर
सामाजिक भवन बनाओ,
सृजन-उपकरण जुटा
संस्कृति का सौध उठाओ[2] ।"

5·2·9· विश्वबन्धुत्व

मन का भेदभाव विस्मृतकर पक्षियों की तरह गा लें । छाया की तरह मूक हो जावें । किरणों की तरह स्पर्श कर गावें, यही विश्वमैत्री के आनंद का परम साधन है -

---

1· गीत-अगीत - पन्त, पृ·136

2· वही, पृ·137

"आओ, हम तुम भी मिल गायें,
अपने मन के भेद भुलायें,
पृथक रहें हम, एक साथ भी,
प्रेम प्रतीक चराचर ।"[1]

कवि राष्ट्रीसीमा को लाँघकर जाति, धर्म, वर्णों को भूलकर एक होने का संदेश देता है -

"मनुज एकता ही नवयुग आत्मा
महत् धरा जीवन में हो स्थापित,
जाति धर्म वर्णों से कढ भू मन
लाँघे राष्ट्रसीमा-हो दिग् विस्तृत ।"[2]

5.2.10. मित्रता

मित्र बनाना अच्छी बात है । लेकिन मित्रता से लाभ उठायें तो वह सहज मित्रता नहीं । सरल सुहृद को गिराकर लाभ उठाना बडा पाप है । आदर्श मूल्य की रक्षा केलिये हमें अनचाहे कृत संकल्प होना पडता है । कभी दोषी को क्षमा भी कर देना पड़ता है क्योंकि मनुष्य परिस्थिती के पुतले हैं । क्षमा करने से मन को सुख भी मिलता है -

---

1. शंखध्वनि - पन्त, पृ.111
2. लोकायतन - पन्त, पृ.575

"और क्षमा करने में
सुख भी मिलता मन को !
कड़ुवी घूट क्षमा को पी -
मन यही सोचता
छि: पैसे का लोभ
मनुज से क्या न कराता ।"[1]

5.2.11. मध्यवर्ग

कवि ने एक जगह मध्यवर्ग के लोगों का जीता जागता वर्णन किया है । उनका जीवन बहुत ही कष्टपूर्ण है । जीवन की सुख सुविधायें उनके पास नहीं । घर के सभी काम खुद उन्हें करना पड़ता है । रसोई में बरतन सब गन्दे पड़े हैं और छिलके सड़कर बदबू आ रही है । बरतन मलने, झाड़ू लगाने और चूल्हा सुलगाने केलिये महरी भी न आयी । पति को दफ्तर जाना है इसलिये जल्दी खाना बनाना है । नल में पानी नहीं । पति को अभी नहाना है । इस प्रकार एक मध्यवर्गीय गृहणी को हज़ार काम करने हैं । उसे कोई आराम नहीं । सारी चीज़ों का दाम बहुत बढ़ता है । इसलिये लोग नरक-तुल्य जीवन बिताते हैं । ऐसी अवस्था में बैठक में कुछ दोस्त यमदूत के समान आ जाते हैं । घर की लाज रखने केलिये उन्हें चाय और नाश्ता देना पड़ता है । बच्चों के आधिक्य की अपेक्षा नि:सन्तान रहना वे पसन्द करते हैं । कवि अन्त में उनके प्रति अपनी सहानुभूति इस प्रकार व्यक्त करता है -

"अह, मध्यवित्त का जीवन,
जीवन नहीं, मरण ।
मृत्यु ही शरण ।"[2]

---

1. आस्था - पन्त, पृ.223
2. गीत-अगीत - पन्त, पृ.175

5·2·12· अतियांत्रिकता

कवि आधुनिक सामाजिक जीवन में यंत्रों के अनुचित प्राधान्य का विरोध स्पष्ट करता है । आज मानव जगत् को यांत्रिकता अपनी ध्वंसात्मक टापों से रौंद रही है । आज यंत्रों का अट्टहास सब कहीं गूंजता है । उसी अट्टहास से भू जीवन की पीठिका परिवर्तित हो रही है। कल के जड जग में कंप्यूटर ही कंप्यूटर बाकी रहेंगे । वह सिन्धु को आंदोलित करेगा । जटिल, परस्पर गुंफित महत् विश्व जीवन को सुव्यवस्थित करेगा । बहिर्भ्रांत मनुष्य भू पर कृमि जैसा रेंगेगा । आत्मबोध से अभिप्रेरित होकर मनुष्य को यंत्रयुग की झंझा से ऊबकर नये क्षितिजों की निर्मलता में विचरण करना चाहिये । यांत्रिकता के धूमों से उन्मुख विश्व में यंत्रों के ऊपर मनुष्यत्व की स्थापना करनी चाहिये । अगर मनुज अंतर्मुख जीवन-सौंदर्य खोजे तो शान्ति और सुख सब कहीं फैलेंगे । इस प्रकार प्रसंग और क्षिप्र भाषा में यांत्रिकता की अतियों की भर्त्सना करके कवि मानवता को ऊपर प्रतिष्ठित करने की सिफारिश करता है -

"या संभव, नर आत्म बोध से अभिप्रेरित हो
ऊब धूम से ऊब यंत्र युग की झंझा के,
विचरण करे नये क्षितिजों की निर्मलता में
यांत्रिकता के धूमों से उन्मुक्त विश्व में
मनुष्यत्व को यंत्रों के ऊपर स्थापित कर ।"[1]

1· शंखध्वनि - पन्त, पृ·16

कवि ने अणुशक्ति के प्रति अपना विरोध ऐसा प्रकट किया है -

"अणु उद्जन विध्वंस भले ढायें
संभव उनसे नहीं स्वर्ग सर्जन,
अहिंसास्त्र मृत को जीवित करता
मिटा असद्, सद् का कर संवर्धन ।"[1]

"आस्था" की एक कविता में भी कवि ने आधुनिक विनाशकारी अणु अस्त्र के विरुद्ध अपना आक्रोश प्रकट करता है । मनुष्य में कौन सी कमी है कि वह युगों की सम्पदा और संस्कृति का विनाश करने को तुला हुआ है । यह दानवी स्वभाव क्यों ?

"विध्वंसक अणु अस्त्र
बनाने में अब तत्पर,
जिससे जीत जगत्
विनष्ट हो सकता क्षण में ।"[2]

5·2·13· जीवन में समन्वयवाद की प्रधानता

कवि की राय में वर्तमान युग जीवन का पट डार्विन, फ्रायड, लेनिन, गांधी, मार्क्स आदि महात्माओं के आदर्शों के अध्ययन, मनन से बुना है । ये सभी महात्मा जीवन के यथार्थ द्रष्टा हैं । इन लोगों के श्रम, तप और संयम से जगजीवन के मंगलमय क्रमविकास सार्थक हुआ है फिर भी सत्य की एक शक्ति शेष है, वह भू जीवन को निश्चय ही उन्नति क

1· लोकायतन - पन्त, पृ·578

2· आस्था - पन्त, पृ·32

उस सत्य के ज्ञाता विश्व के भविष्य अंतर्द्रष्टा श्री अरविंद है । भावी जीवन के आदर्श और यथार्थ को उन्होंने संयोजित किया । उस दिव्य पुरुष की तुलना में आज के मानव तन से पशु हैं और मन से खंड सत्य के ज्ञाता है ।[1]" भू जीवन में बहिरंतर समन्वय के वे पक्षपाती हैं -

"समग्रता क्या है ?
आध्यात्मिकता भौतिकता
सहज समन्वित हों
भू जीवन में बहिरन्तर,
एकांगीपन के संकट से
बचे सभ्यता !
कर्म-वचन-मन
ईश्वर प्रति हों पूर्ण समर्पित,
इधर उन्नयन,
उधर अवतरण हो प्रकाश का[2] ।"

कवि आध्यात्मिक और भौतिक जीवन में संयोजन श्रेयस्कर मानता है -

"उच्च प्रीति के ही स्वर्णिम युग में
भू मानवता को करना गुम्फित,
आध्यात्मिक सामाजिक संयोजन
भौतिक भू जीवन में कर स्थापित[3] ।"

---

1. आस्था - पन्त, पृ.218-219
2. वही, पृ.219
3. लोकायतन - पन्त, पृ.506

जबतक दुनिया बहिरंतर संस्कृत नहीं होगी तब तक हमारी विश्व-सभ्यता का स्वप्न खंडित रहेगा -

"जब तक हो न
जगत् बहिरंतर संस्कृत
विश्व सभ्यता स्वप्न
रहेगा खंडित !
भौतिक आध्यात्मिक
हों लोक समन्वित,
ज्ञान और विज्ञान -
शक्ति संयोजित[1] ।"

कवि की राय में बहिर्विकास से मानव की प्रगति नहीं होगी

बहिर्विकास न प्रगति-मात्र वर्धन,
अत: शक्ति अपेक्षित भू जन को,
जीत सके जो बाह्य आसुरी तम
स्वर संगति दे मानव जीवन को[2] ।"

मनोविभव के सामने बाह्य विभव तुच्छ है ।

"भौतिक वैभव स्पर्द्धा प्रति उपरत
निर्मित करते अंतर्जीवन पथ,
मनोविभव के सम्मुख बाह्य विभव
लगता जड केंचुल सा विश्री, श्लथ[3] ।"

1· आस्था - पन्त, पृ·108
2· लोकायतन - पन्त, पृ·591
3· वही, पृ·586

आज मनुष्य बाह्य सुखों के प्रति पागल है। लेकिन उसके हृदय का सूर्य नित्य डूबता रहता है -

"बाह्य बोध से पागल युग का मन,
विपुल बहुमुखी ज्ञान न संयोजित,
बहिर्दिशा में उड़ता नर, भीतर
अस्त सूर्य, भ्रंत निशि, युगांत निश्चित।[1]"

अंतर्विकास के बिना जीवन का परमलक्ष्य अधूरा रहता है -

"सामाजिकता के अभाव में ज्यों
वैयक्तिक अंतर्विकास निष्फल
अंत: शिखरों की उपलब्धि बिना
बहिर्भ्रांत जीवन मृग तृष्णा, छल ![2]"

5.2.14. प्रेम की विशुद्धि

कवि हृदयों के प्यार को श्रेष्ठ मानता है। मदिरा के आवेश में जो मन रहता है, वह क्षणिक है -

"बाह्य साधन से गर्भ निरोध
बुद्धि संगत, कुसुमास्त्र अजेय,
शुभ्र नर नारी उर का प्रेम
जयी हो स्मर पर, जीवन ध्येय।[3]"

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.571
2. वही, पृ.509
3. वही, पृ.271

प्रेम ही मानव जीवन का सर्वस्व है -

"प्रेम ही मानव जीवन सार,
प्रेम, हरि करता, सर्व समर्थ,
प्रेम के बिना न जीवन-मूल्य
समझता मन, न सृष्टि का अर्थ[1]।"

सामूहिक जीवन क्रम में जन जन के बीच भेद न हो जाये। सब राम के जन हैं। उनके बीच का सेतु है "प्रेम" -

"प्रेमी जन तुम प्रेम से बंधे, स्वयं प्रेम में,
सब से ही संयुक्त, साथ ही प्रेम-मुक्त भी[2]।"

5·3· भावी समाज एवं संस्कृति का स्वरूप

उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर भावी युग में जिस समाज और संस्कृति की संरचना होगी उसका कल्पित रूप भी "लोकायतन" में अभिव्यक्त है। "उत्तर स्वप्न" शीर्षक अध्याय में इसी कल्पना को वाणी मिली है। उन्होंने सर्वप्रथम ऐसे भावी समाज की कल्पना की जो वर्तमान समाज से अधिक सुन्दर, संस्कृत एवं मानवोचित जीवन की प्रतिष्ठा कर सके, रूढिबद्ध मानव मूल्यों को छोड़कर नवीन चेतना, नवीन जीवन-मूल्यों तथा नवीन मान्यताओं को ग्रहण कर नव संस्कृति का निर्माण कर सके।

1· लोकायतन - पन्त, पृ·27।
2· पुरुषोत्तमराम - पन्त, पृ·57

कवि के अनुसार आर्थिक अणु-रण के बाद ही आदर्श समाज और संस्कृति की संरचना हो पायेगी । वर्तमान युग-संघर्ष और विघटन की स्थिति के बीच उसकी स्थापना होना संभव नहीं । विनाश के बाद संपूर्ण विश्व में नव्य-चेतना का संचार होगा और पृथ्वी पर नव जीवन का आगमन होगा -

"गत ह्रास नाश विघटन का तम
जाने कब लीन हुआ कट छँट,
नवयुग स्वर्णोदय मुसकाता
रेखा मुखरित फिर जग अक्षय वट !
xx xx xx
मानव उर सत्य हुआ विजयी
नव लोक एकता कर स्थापित,
निश्वरी देशों राष्ट्रों से भू
नव विश्व चेतना अनुप्राणित ।"[1]

नवजीवन के बाद प्रकृति के शांत और सुरम्य अंचल में भावी समाज की स्थापना होगी और वहीं से जीवन और जगत में पवित्रता का विस्तार करनेवाली नव्य संस्कृति का उदय होगा -

"संस्कृति थी निकट प्रकृति के अब,
सात्विक, समग्र मानव जीवन,
नव स्वर्ण चेतना में परिणत
बहुजाति पातियों का मिश्रण !
नर नारी गण उन्मुक्त प्राण
युग चेतना श्रम में रहते रत,

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.615

भू शांति पीठ अब, मानवता
जनजीवन मंगल हित दृढ़ व्रत ।"[1]

भावी समाज वर्गहीन समाज होगा । गत जातिवर्ण की श्रृंखला खोलकर राष्ट्रीय सीमा का अतिक्रम कर मानवता के आधार पर इस समाज की स्थापना होगी[2] ।" समस्त मानवजाति मिलकर एक विशाल परिवार का निर्माण करेगी । उसी को समाज की संज्ञा दी जायेगी । इस समाज में रहनेवाले समस्त प्राणियों का जीवन अभाव-रहित और समस्त सुविधाओं से पूर्ण होगा । सभी व्यक्ति प्रतिक्षण जनमंगल श्रम में रत रहेंगे -

"धिक् संस्कृति, जिसमें युवति युवक
कर सकते मुक्त न प्रेमार्पण,
धिक् जग, जिस में न वयस्क अथक
जन मंगल श्रम में रत प्रतिक्षण[3] !"

मानव को अपनी सामाजिकता पर गर्व है ।

"सामाजिकता का गर्व तुम्हें,
गुण में चींटी से निर्गुण न नर !
x x x x x x
हम भी रचते मधु स्वर्ण छत्र,
तुम उसे कहो पुर, मधुप नगर,

1· लोकायतन - पन्त, पृ·632
2· वही, पृ·631
3· वही, पृ·621

वह नव समाज से भी सुगठित
जिसमें रहते मिल नारी नर ।"

समाज के पश्चात् कवि ने युग-संस्कृति पर दृष्टिपात किया । उन्होंने बढ़ते हुए सांस्कृतिक विघटन को देखकर ऐसे भावी सांस्कृतिक जागरण की कल्पना कर डाली जो वर्तमानयुग की मानव चेतना की आन्तरिक सृजन शक्तियों की सूक्ष्म क्रीडाओं से जन्म लेगा और नवीन मानवतावाद की प्रतिष्ठा कर सकेगा । पन्तजी के अनुसार विश्व जीवन के असन्तोष का कारण यदि किसी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था में सन्निहित होता तो, साम्यवाद के द्वारा वह कभी का तिरोहित हो जाता, किन्तु विश्व में साम्यवाद की स्थापना के पश्चात् भी अशान्ति और असंतोष मानव जीवन को परिक्लान्त बनाये हुए हैं । अतः जब तक मनुष्य का अन्तर्विकास नहीं होता, तब तक बाह्य विकास उसे अगणित भौतिक सुख-सुविधायें देकर भी संतुष्ट नहीं कर सकता । "अतएव इस राजनीति तथा अर्थशास्त्र के युग में मुझे एक स्वस्थ्य सांस्कृतिक जागरण की आवश्यकता और भी अधिक दिखाई देती है । अपने बहिर्मुख {इन्द्रियों के} मन से हम जीवन के जिस पदार्थ में आशा-आकांक्षाओं सुख-दुःख तथा भोग अधिकार का सत्य देखते हैं एवं राजनीतिक आर्थिक प्रणालियों द्वारा उसमें सामूहिक सन्तुलन स्थापित करते हैं, उसी जीवन तत्व में हम अन्तर्मुख {ऊर्ध्व} मन से आनंद, अमरत्व, प्रकाश आदि के रूप में अपने देवत्व के सत्य का अनुभव करते हैं, जिसका सामूहिक वितरण हम किसी प्रकार के सांस्कृतिक आंदोलन द्वारा ही कर सकते हैं - विशेषतः जब धार्मिक व्यवस्थाओं तथा संस्थाओं से हमारे युग की आस्था उठ रही है । इस प्रकार के किसी प्रयत्न के बिना हमारी मान्यताओं का ज्ञान अधूरा ही रह और हम प्रवृत्तियों के पशु-मन को मनुष्यत्व के सौंदर्य गौरव से मंडित नहीं क राजनीतिक लोकतंत्र जहाँ हमारे भोग के संवरण की व्यवस्था तथा रक्षा करता

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.625

सांस्कृतिक विश्व-द्वार हमारे मनुष्यत्व (आत्मा) का पोषण करेगा।[1]" अतएव सांस्कृतिक अभ्युदय के हेतु संसार में एक व्यापक सांस्कृतिक आन्दोलन को जन्म लेना होगा, जो मानव चेतना के राजनैतिक, आर्थिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक संपूर्ण धरातलों में मानवीय संतुलन तथा सामंजस्य स्थापित कर आज के जनवाद को विकसित मानववाद का स्वरूप दे सकेगा। "यह आन्दोलन बाह्य रूप में क्रांति का प्रतीक बनेगा और आन्तरिक रूप में विकास का, फिर क्रान्ति के द्वारा विकास के पथ पर बढ़कर एक ऐसी सांस्कृतिक चेतना में परिणत हो जायेगा, जो मनुष्य के पदार्थ, जीवन, मन के संपूर्ण स्तरों का रूपान्तर कर देगी तथा विश्व जीवन के प्रति उसकी धारणा को बदलकर सामाजिक संबंधों को नवीन अर्थ-गौरव प्रदान कर देगी[2]" और फिर वर्तमान अन्धकार ज्योतिर्मय भविष्य में बदल जायेगा, युद्ध-क्रान्ति रक्तपात के उस पार हंसती-बोलती मानवता नजर आने लगेगी। इस प्रकार सांस्कृतिक आन्दोलन द्वारा मानवतावाद की प्रतिष्ठा हो सकेगी।

कवि की राय में वर्तमान राजनीति, मदान्ध करनेवाली भौतिकता, अध्यात्म के प्रति अनास्था और जड यांत्रिकता आदि हमारे सांस्कृतिक ह्रास के उत्तरदायी तत्व हैं। इन सभी तत्वों से प्रेरित होकर पन्त ने ऐसे सांस्कृतिक अभ्युदय की कल्पना की जिस के द्वारा मानव इन सब से मुक्ति पाकर केवल मनुष्यत्व के बन्धन में बंध सकेगा और इन को सही रूप में ग्रहण कर सकेगा। इसकेलिये काव्य में इसकी अभिव्यक्ति समाधानरूप में मिलती है, जो इस प्रकार है

अ· अध्यात्म और भौतिकता का समन्वय

आ· ज्ञान विज्ञान का समन्वय

इ· ऐतिहासिक सत्य और संघर्ष के आधार पर मनुष्य का सामूहिक विकास

1· शिल्प और दर्शन - पन्त, पृ·78-79

2· वही, पृ·70

ई· बर्हिजीवन और अंतर्जीवन का संगठन

उ· यंत्रों की सामाजिक उपयोगिता में वृद्धि ।

महाकाव्य "लोकायतन" में कवि ने "लोकायतन" नामक एक काल्पनिक सांस्कृतिक केन्द्र की स्थापना कर सांस्कृतिक अभ्युदय के व्यावहारिक रूप को तो बताया ही है, साथ ही अभ्युदय के बाद की सामाजिक स्थिति को भी प्रस्तुत कर दिया है । सांस्कृतिक केन्द्र का मुख्य उद्देश्य यह था -

राजनीतिक आर्थिक अवरोध
किये भू जीवन को म्रियमाण,
मिटा राष्ट्रों का स्पर्धा द्वेष
धरा-मन का करना निर्माण !
केन्द्र रचना का तात्विक अर्थ
देश भर का युगपत् उत्थान,
सूक्ष्म, अंतश्चेतन यह वृत्त
इसी में जन भू का कल्याण ![1]"

कवि ने समाज केलिये भौतिक-आध्यात्मिक समन्वय की कल्पना की है । कवि पहले पूर्व और पाश्चात्य समाज का इस दृष्टि से अध्ययन करता है, किन्तु दोनों ही उसे अपूर्ण एकांगी दृष्टिकोणों से पीड़ित दिखाई देते हैं । जहाँ एक ओर भारत में वह पाता है कि भारत

"बहि: संगठन शून्य वृद्ध भारत
रूढि रीतियों का शोषित पंजर,
अति वैयक्तिक छाया भावों से
पीड़ित-जीवन वर्जन से जर्जर ![2]"

1· लोकायतन - पन्त, पृ·260

2· वही, पृ·556

वहाँ पाश्चात्य देशों में

"एकांगी वैज्ञानिक उन्नति से
असन्तुष्ट थे युग-प्रबुद्ध बुध जन,
देह प्राण मन के भीतर का नर
रस क्षुधार्त था, हृदय शून्य पाहन ।"[1]

इसलिये दोनों में कमियाँ हैं

"विरस आध्यात्मिकता में मग्न
भग्न भारत में जीवन दैन्य,
अचिर भौतिक वैभव में मत्त
ध्वंस पश्चिम में, हिंसा, सैन्य ।
सामन्वित कैसे रस अध्यात्म
धरा जीवन में करे विलास ।"[2]

अतएव कवि ऐसे केन्द्र की स्थापना करना चाहता है,

"भावों के संस्कृत ऋत पावक से
गत वाहन मन को करना विगलित,
बहिर्जगत मद मे मूर्छित जन को
अंतर्जीवन के प्रति कर जीवित ।"[3]

सांस्कृतिक केन्द्र से धरा प्रेम और व्यक्ति-मुक्ति के द्वारा सर्वमुक्ति कवि चाहता है ।

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.554
2. वही, पृ.420
3. वही, पृ.444

"ऊर्ध्व चेतना समदिक् विचरण कर
नव भव मानवता में हो परिणत -
धरा प्रेम था ध्येय केन्द्र जन का
व्यक्ति मुक्ति थी सर्व मुक्ति व्रत रत ![1]"

अणु संहार के बाद जब नवीन मानवता जन्म लेती है तो कवि कल्पना साकार हो उठती है और वहाँ वर्तमान समाज के सभी कदर्य धुल जाते हैं, आध्यात्मिक और भौतिक जीवन का समन्वय होता है

"सांस्कृतिक केन्द्र बहु जन भू पर
ले रहे जन्म थे नित नूतन -
आध्यात्मिक मूल्यों से धीरे
शासित होता भौतिक जीवन ।[2]"

जड यांत्रिकता समाप्त हो जाती है

"अब बहिर्मुखी यांत्रिकता के
जड पदाघात से मर्दित मन
अन्तर्जीवन प्रति जागृत था,
स्मित अंत: स्पंद प्रति चेतन ![3]"

ज्ञान और विज्ञान के समन्वय की ओर कवि ध्यान आकर्षित करता हुआ लिखता है

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.544
2. वही, पृ.651
3. वही, पृ.651

समन्वित हो जड चेतन शक्ति
ज्ञान सारथि हो, रथ विज्ञान
प्रगति हो जीवन की सर्वाङ्ग
ऐक्य ही में समष्टि कल्याण ![1]"

इस प्रकार सामूहिकता और समन्वय भावी समाज और संस्कृति के प्रमुख आधार होंगे । समाज में सब कहीं नवीन सांस्कृतिक चेतना का आविर्भाव होगा । यह चेतना सर्वत्र व्याप्त होगी और प्रत्येक व्यक्ति यही सोचकर समाज में कार्यरत होगा

"साजन का घर उस पार नहीं
भू जीवन ही उसका प्रांगण
मन मात्र न, बहिर्जगत पट भी
ईश्वर के मुख का हो दर्पण ।[2]"

जग ही में संभव प्रभु दर्शन,
भव-ब्रह्म सत्य,-यह नि:संशय,
ईश्वर प्रतिनिधि शाश्वत मानव
रज रूप मर्त्य नर से अतिशय ![3]"

इस स्थिति में वर्तमानयुग के समस्त अभाव और कल्मष दूर हो जायेंगे और समाज में स्वत: ही मानवता की प्रतिष्ठा हो पायेगी । यही जीवन में उन्नति की पराकाष्ठा होगी ।

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.274
2. वही, पृ.636
3. वही, पृ.636

पन्तजी की सभी कृतियों से भिन्न एक वैदिक कालीन समाज का चित्रण हम "सत्यकाम" में देखते हैं। हिमवन्त की निचली पट्टी शिवालक है, उसमें अर्जुन के वृक्ष बहुतायत में मिलते हैं। पन्तजी ने जबाला के आश्रम को हिमगिरी के तीन शिखरों से परिवृत तलहटी में स्थित माना है। ककुभ शब्द के प्रयोग से वह अर्जुन वृक्षवाले शिखरों से आवृत तथा तीन ओर से घिरा हुआ परिवेश संकेतित करते हैं। ककुभ का अर्थ दिशा भी है, शिखर भी है और अर्जुनवृक्ष भी। छान्दोग्य में तो स्थान आदि से संबंधित कोई संकेत नहीं मिलता, पर पन्त जी ने इन सब की कल्पना में भी वैदिक इतिहास को दृष्टि में रखा है। वह इस स्थान पर दृषद्वती को स्रोत मानकर अपनी कल्पना का ठोस आधार देते हैं। दृषद्वती का अर्थ है पत्थरवाली। शिवालक क्षेत्र में ऐसी नदियाँ बहुत हैं। मूलत: दृषद्वती जिस धारा से निर्मित थी उसे आधुनिक बोली में सिरसोंवाला कहते हैं। सिकन, पलासी तथा निम्बूवाला पहाडी स्रोतों से इसकी जलपूर्ति होती थी। आजकल यह प्रवाह हरियाणा में छछरौली से लगभग 3 मील पूर्व यमुना की पश्चिमी नहर से मिल जाता है। दृषद्वती के पत्थरों पर बैठकर शैशव की स्मृतियों में खो जानेवाले सत्यकाम का चित्रण इस दृष्टि से बडा सटीक बन पडा है -

"दृषद्वती के जल में बैठा शिला खण्ड पर
सोचा करता सृष्टि तत्व पर वह बचपन में।[1]"

पन्तजी ने "सत्यकाम" में काँस, बाँस, कुशखिर, वीरुध शमी, न्यग्रोध, खदिर बिल्व, ध्रुव, शिंशिपा, मदार, अश्वकर्ण, तिलक, किंशुक, पीपल, चम्पक, कमल कुई, देवदारु आदि अनेक वृक्षों का उल्लेख किया है।[2]" पशु-पक्षियों में धेनु, श्वान, मेष, अश्व, वृषभ, मराल, मद्गु, गृद्ध, गज, तितली, मीन, मृग, गरुण, श्येन, धूक, पिक, ऋक्ष, वृक, उल्लू तथा

---

1. सत्यकाम - पन्त, पृ.79
2. वही, पृ.9

तीतर का वर्णन मिलता है । नीम, दारु रोहीतक, विभीतक, शिरीष, शर, कुश, हस्ती, हरिण, मृग, कुक्कुट, श्येन, भ्रमर, मीन का उल्लेख आश्रमों के परिप्रेक्ष्य में प्रायः मिलता है ।

साज सज्जा, अलंकरण तथा आवास के चित्रण भी युगानुरूप हुए हैं । श्वेत ऊन के वस्त्र, चमड़े की कंचुकी, श्वेतपीत पुष्पमाल, स्वर्णस्रवम, कृष्णमृगाजिन, तृणास्तरण, कषाय वस्त्रों के साथ दुग्ध, अपूप, ओदर, खजूर, बिल्व, दधि, घृत, सोम आदि खाद्य पदार्थों का उल्लेख सत्यकाम को वैदिक परिवेश की कृति सिद्ध करने में सहायक होता है । छान्दोग्य उपनिषद् में रैक्व के आख्यान में खच्चरी से जुते हुए रथ, स्वर्णनिष्क तथा दासी प्रथा का उल्लेख मिलता है । उषस्ति चाक्रायण के आख्यान में अकाल, कृषि, उड़द भोजन तथा हस्तिपालन व्यवसाय का उल्लेख है । ग्राम और नगरों के मध्य यंत्रीशाला या आवसथ बनाये जाने का भी उल्लेख है । द्यूतक्रीडा की चर्चा भी मिलती है । पासे को कृत या विभीदक कहा गया है ।

"मुझे त्रिपंचाशः गोटियाँ विभीदक की प्रिय,
कहता था अपने से, तरुण तिमिश डरता सा !"[1]

आहार शुद्धि पर उपनिषद्काल में बड़ा बल दिया गया । छान्दोग्य में आया है कि आहार शुद्धि से सत्व शुद्धि, सत्वशुद्धि से स्वस्थ स्मृति तथा शुद्ध स्मृति से आत्मज्ञान होता है । पन्तजी ने वैदिक परिवेश में खाद्य पदार्थों का उल्लेख किया है -

"दुग्ध, अपूप, करंभ, क्षीर ओदन भोजन में
मिलते उसको मधुर बिल्व, खर्जूर आदि फल,
दधि मंथा-घृत खाद्यद्रव्य पोषक, रुचिवर्धक ।
गोरी तट का स्वादु सोम जीवन आह्लादक -"[2]

1· सत्यकाम - पन्त, पृ·14

2· वही, पृ·38

आश्रम के ब्रह्मचारी कला-विनोदप्रिय हैं। कवि ने इस संदर्भ में प्राचीन भारत के कलात्मक विनोदों की चर्चा की है। रथ और अश्व-दौड, संगीत-गोष्ठी, अक्षक्रीडा, नृत्यवादन आर्यों केलिये मनोरंजन के साधन थे। इस केलिये कवि ने आजिवृत्त (घुड-दौड), पदक्षेप, विभीदक (पासा) तथा नाडी कर्करि, वीणा वादन का उल्लेख किया है। आर्यों की प्रमुख मनोरंजन सामग्री का यह उल्लेख वातावरण की ऐतिहासिक निर्मिति केलिये हुआ है -

"कहता वसु, कल आजिवृत्त में गया देखने
मैं अश्वों की, क्षिप्र रथों की चर्चा दिन को!
कृष्ण कर्ण के श्वेत वर्ण हय ने मरुतों का
वेग छीन, जीता स्पर्धा पण! अद्भुत जव था।"[1]

अग्नि, वायु आदि प्राकृतिक वह्नि, पवन आदि ही है तथा वैदिक ऋषि इन प्राकृतिक पदार्थों को देवता समझकर पूजते थे। पन्तजी भी इसी धारणा के समर्थक है -

"विश्व प्रकृति की शोभा गरिमा से सम्मोहित
श्रद्धानत था मनुज पंचभूतों के सम्मुख।"[2]

इस प्रकार "सत्यकाम" में देश, काल, उद्योग संस्था, व्यवसाय, स्थान, खानपान, वेशभूषा, भावना, अलंकरण तथा सामान्य धार्मिक विश्वासों के चित्रण में भी उन्होंने वेदकालीन समाज के रहन-सहन को ध्यान में रखा है।

---

1. सत्यकाम - पन्त, पृ. 14
2. वही, पृ. 18

यही भावी समाज और संस्कृति की रूपरेखा है जिस में कवि ने समस्त आदर्श तत्वों को समाहित कर दिया है । वर्तमानयुग की संघर्षशील विघटनकारी स्थिति को देखते हुए यह आदर्श रूप स्वप्नवत् लगता है । किन्तु, जैसा कि पन्त के विचार हैं, आज का स्वप्न ही कल का यथार्थ होगा । अतएव इस युग को लाँघकर भावीयुग केलिये नवीन दिशा बोध देना ही यहाँ उनका लक्ष्य रहा है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पन्तजी की कल्पना विशेषकर भविष्यत् कल्पना का स्रोत वर्तमान समाज रहा है । कवि संपूर्ण विश्व की सामाजिक गतिविधियों से प्रेरणा लेता रहा है और काव्याभिव्यक्ति के रूप में उनका काल्पनिक समाधान देता रहा है । नवीन मूल्यों से आवेष्ठित उनकी सामाजिक परिकल्पना में भारतीय समाज का विशेष हाथ रहा है और मानवतावादी कल्पना की प्रतिष्ठा में पाश्चात्य देशों का । पाश्चात्य देशों की बढ़ती हुई स्वार्थभावना, आर्थिक स्पर्धा और युद्ध प्रवृत्ति ने तो जैसे कवि कल्पना को इतना आन्दोलित कर दिया कि वह अपने स्वप्न को शीघ्र ही भारत भूमि में साकार देखना चाहता है - "मैं चाहता हूँ कि पश्चिम के देश जिस प्रकार अपने राष्ट्रीय स्वार्थों तथा आर्थिक स्पर्धाओं के कारण, जिस प्रकार अभी तक विश्व-संहार के यंत्रालय बने हुए हैं, भारत एक नवीन मनुष्यत्व के आदर्श में बंधकर, तथा बहिरन्तर जीवन को नवीन चेतना के सौंदर्य में संगठित कर, महासृजन एवं विश्व-निर्माण का विराट कार्यालय बन जाय, और हमारे साहित्यिक तथा बुद्धिजीवि अभिजातवर्ग की संकीर्ण नैतिकता तथा निम्न वर्ग की दैन्य-पीडा की गाथा गाने एवं मध्यवर्ग के पाठकों केलिये उसका कृत्रिम चित्रण करने में ही अपनी कला की इतिश्री न समझ लें, प्रत्युत युग संघर्ष के भीतर से जन्म ले रही नवीन मानवता तथा सांस्कृतिक चेतना के संस्पर्शों एवं सौंदर्य बोध को भी अपनी कृतियों में अभिव्यक्ति देकर नवयुग के ज्योतिवाहक बन सकें ।"[1]

---

1. शिल्प और दर्शन - पन्त, पृ.78

5.4. राजनीतिक विचार-धारा

आधुनिक युग में सर्वत्र राजनीति का प्रभाव पड़ा है । कोई भी युगचेता कवि अपने समय की राजनीति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता । अज्ञेय के अनुसार "मानव की एक परिभाषा यह भी है कि वह प्रकृत्या एक राजनीतिक है[1] ।" पन्तजी एक युगचेतना कवि है । अतएव उनकी रचनाओं में अपनी राजनीतिक विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है । लोकायतन तथा परवर्ती रचनाओं में भी यत्र-तत्र पन्तजी की राजनीतिक विचार-धारा ने अभिव्यक्ति पायी है ।

लोकायतन में भारत के स्वातंत्र्य संग्राम की कहानी भी बीच में वर्णित है । लोकायतन का एकमात्र जीवित कथापात्र गाँधीजी थे । दक्षिण आफ्रिका में भारतीयों की दीन हालत् देखकर गाँधीजी का मन द्रवित हो गया । वहीं उन्होंने प्रथम बार सत्याग्रह रूपी अस्त्र को उठाया और अन्यायियों पर विजय पायी -

"दया द्रवित था हुआ स्वर्ग उर
दक्षिण आफ्रीका की भू पर
जहाँ प्रवासी भारत सहता
गोरों के उत्पात निरन्तर[2] ।"

गाँधीजी की प्रसिद्ध दाँडीयात्रा और नमक सत्याग्रह का वर्णन ऐसा किया है -

---

1. स्रोत और सेतु - अज्ञेय, पृ.100-101
2. लोकायतन - पन्त, पृ.85

"वह प्रसिद्ध दांडीयात्रा थी
जन के राम गये थे फिर वन,
सिन्धु तीर पर लक्ष्य विश्व का
दांडी ग्राम बना बलि प्रांगण।"[1]

नमक बनाना गांधीजी का ध्येय नहीं था -

"नमक बनाना ध्येय नहीं था,
तीस कोटि भारत जनगण का
वह प्रतीक विद्रोह पर्व था,
दृश्य ऐतिहासिक युग क्षण का।"[2]

लवण कर से भारतीयों को मुक्त करने केलिये गांधीजी ने दृढ निश्चय किया -

"प्राण त्याग दूंगा पथ पर ही
उठा सका मैं यदि न नमक-कर,
लौट न आश्रम में आऊँगा,
जो स्वराज्य ला सका नहीं घर।"[3]

कवि ने गांधीजी की हत्या का ऐसा मर्मभेदी वर्णन किया है -

"इस नारकीय हिंसा के
नाटक का करुण समापन
प्रिय बापू की बलि में हो।
ओ अकथनीय अघटित क्षण !!
प्रार्थना सभा को जाते

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.83
2. वही, पृ.83
3. वही, पृ.84

साकार प्रार्थना - से नत
वे हुए निछावर भू पर
नर-पशु प्रहार से आहत ![1]"

लोकायतन में हरि के माध्यम से कवि बताता है कि स्वतंत्रता प्राप्त हुए अब चौदह साल बीत गये हैं फिर भी अंधकार का साम्राज्य यथावत् बना हुआ है । छुआछूत रूपी दुष्ट नाहर की पकड से मानव तन मन क्षत-विक्षत है । अब लोगों का निर्वाचित शासन चल रहा है । इसलिये लोगों की अपनी संपत्ति, न्याय और मंत्रीगणों का शासन है । फिर भी हमारी सामाजिक व्यवस्था बहुत गिरी हुई है । अब मिलावट के बिना कोई अच्छी चीज़ मिल नहीं सकती । शुद्ध दूध, घी, मक्खन और तेल अब दुष्प्राप्य हैं । दिन ब दिन चीज़ें महँगी हो जाती है -

"अब निज निर्वाचित शासन
निज वित्त न्याय मंत्रीगण,
बढता ही जाता प्रतिदिन
भू पर चारित्रिक विघटन !
अब शुद्ध दुग्ध घी मक्खन
दुष्प्राप्य तेल रज मिश्रित,
महँगी ही मात्र प्रगति पर
हाँ, अनाचार भी निश्चित ![2]"

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.132
2. वही, पृ.158-159

अब साधारण जीवन जीना मुश्किल है । अच्छे गृह, अन्न, वस्त्र, वन, गो-धन आदि सभी सुख सुविधायें मंत्रियों और बड़े पदाधिकारियों तक सीमित हैं। साधारण जनता इन सुखों से वंचित है । स्वाधीन देश का यह जीवन परतंत्र देश के जीवन से भी दुष्कर है -

"कर्दम कदन्न में पलते,
मलते कर जन-साधारण,
परतंत्र देश से दुष्कर
स्वाधीन धरा का जीवन ।[1]"

"लोकायतन" में एक जगह निर्वाचन की हलचल का वर्णन किया है । चुनाव आजकल गुंडों के दंगल बन गया है । सभी सड़कों पर पताका फहरने लगी । मनुष्य रूपी झींगुर यंत्र और नारों से अपने विज्ञापन करने लगे । नेता बनने के आग्रह से नेता लोगों से भिक्षा मांगने लगे । शक्तिमदकामी मनुष्यरूपी भेड़ों पर वे शासन करना चाहते थे । प्रतिपक्षीदल के लोग अपने सभी सिद्धांतों को छोड़कर अत्याचार करने निकले । दूसरे दलों के झंडों को उखाड़कर सांडों के समान परस्पर घूसा मारने लगे । झोंपड़ी और घरों में आग लगा दी । दोनों दलों के लोग मंत्राभिभूत होकर जानवरों के समान परस्पर एकटक ताकने लगे । वे दोनों परस्पर व्यंग्यपूर्ण बातें करने लगे । वे चुनाव को एक होली के समान मानते हैं । आपस में कीचड़ उछालकर, गाली बक-बककर वे वोटों से अपनी झोली भरना चाहते हैं -

"ताकते एकटक पशु-से
मंत्राभिभूत हत जनगण,
हो ओट, वोट दें पत्थर,
कहते कटु, हँस मन ही मन !

1· लोकायतन - पन्त, पृ·159

त्योहार ! फब्तियाँ कस लो,
आई चुनाव की होली,
कीचड़ उछाल, गाली बक,
भर दो वोटों से झोली ।"[1]

"संक्रांति" नामक काव्य में कवि भू जन को अपने भाव सुमनों से श्रद्धांजलि अर्पित करता है । लोगों के निर्वाचन का यह निर्णय सबको स्वीकृत है । वे जन युग का निर्माण करना चाहते हैं । यह निर्वाचन एक महाक्रांति का अवाक् क्षण है और बीते युग का नव पट परिवर्तन भी है । भारत भूमि को देशकाल निःस्तब्ध देख रहे हैं । इस निर्वाचन से जन की क्षमता समझ सकते हैं । चुनाव का निर्णय जनमन की प्रतिज्ञा है । जन उर के व्रणों को देखने केलिये मर्मस्पर्शी सूक्ष्म दृष्टि चाहिये -

"यह निर्णय रे जन मन का पण,
मानवीय उनको प्रिय शासन,
सूक्ष्म दृष्टि चाहिये मर्मस्पृक्
देख सके जो जन उर व्रण को !"[2]

एक कविता में कवि कहते हैं कि निर्वाचन की भेरी दिग् दिगंतों में गूँज उठी । गूँगे भी मुखर हो उठे । सभी जन हानि लाभ के प्रति सचेत हैं और उनके मन में सब कुछ गोपन रहता है । हृदय का आह्लाद आँखों में छिपता नहीं । अब अन्न, वस्त्र, आवास की कोई समस्या नहीं । अब लोगों को अपने बल का परिचय मिला है और वे विजय पाने को तुले हुए हैं । कुछ लोगों केलिये यह जन्म-मरण का निर्णय है । आज लोकतंत्र शासन में उन्हें अपना बल मालूम हो गया है -

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ. 152
2. संक्रांति - पन्त, पृ. 35

"बना मिटा सकते वे निश्चय
शासन को भी, यदि वह निर्दय,
लोकतंत्र में अपने बल का
मिला उन्हें अब बहुमत स्वाद ![1]"

और एक जगह कवि का कहना है कि जनमन का यह निर्णय मंगलप्रद है क्योंकि मध्ययुग के भारत को एक आधुनिक शक्ति मिल गयी है -

"मंगलप्रद हो जन मन निर्णय !
मध्य युगों के भारत को
आधुनिक शक्ति अब बनना निश्चय ![2]"

"शांति ! शांति!" कविता में 1977 के चुनाव से कवि को जो आत्मसन्तोष प्राप्त हुआ उसका वर्णन है । इस चुनाव से कवि ने एक नये युग का आवाहन किया है । भारत के लोग धन्य हो गये हैं । एक रक्तहीन जनक्रांति और एक अहिंसक युग की संक्रांति हुई है । जनता जागकर आज प्रबुद्ध हो गयी है । फिर भी कवि को संदेह है कि राजनीति छल-छंद छोडकर आज शुद्ध हो गयी ? अर्थात् राजनीति में दाव-पेंच हमेशा होते रहते हैं । आज भारतीय जनता शांति केलिये पुकार रही है -

"शांति ! शांति !
यह रक्तहीन जनक्रांति !
अहिंसक युग संक्रांति !
शांति ! शांति ![3]"

---

1. संक्रांति - पन्त, पृ.74
2. वही, पृ.75
3. वही, पृ. 9

भारतीय जनता ने युग प्रबुद्ध होकर एक मनोनुकूल राजनीतिक निर्णय लिया है । यह मानव जगत् केलिये सांस्कृतिक महत्व रखनेवाली एक घटना है । कवि भारतीयों के इस नवोत्थान की कहानी को प्रान्तीय सीमा से उठाकर सारे विश्व में पहुँचा देना चाहता है -

"भारत आत्मा को भेजो
देशों देशों में,
भारत आत्मा को जीवित
युग संदेशों में -
प्रतिष्ठ कर जीवन मूल्यों में,
नव वेशों में ।"[1]

कवि के अनुसार आपात्काल में देश में सब कहीं काला बाज़ार और पत्रों में रात-दिन पाशविक बलात्कार और सामूहिक संहार था । लोगों की चारित्रिक महिमा ही नष्ट हो गयी । साथी या मित्र कहीं भी नहीं रहे । स्वार्थरत संसार में भ्रष्टाचार और दुराचार का नग्न तांडव होने लगा । काला धन, काला मन, काला जीवन और यौवन की विकृतियाँ सब कहीं प्रत्यक्ष होती थीं । खाद्यान्न, जल, हवा सब दूषित ही दूषित थे । सब के देह, मन और प्राण रुग्ण हो गये -

"कहाँ गया चरित्र ?
साथी या मित्र ?
स्वार्थरत संसार,
भ्रष्टाचार, दुराचार !

---

1. संक्रांति - पन्त, पृ.13

काला जीवन, यौवन !

कवि ने भारतीय शासक वर्ग की चर्चा की है । जनता के शासक अपने कर्तव्य से विमुख हो आलसी, सुखभोगी एवं निद्राभोगी हैं । उनमें शक्ति एवं पद का मोह घर किये हुए हैं उसी के स्वप्न देखते हैं । देश में फैले अनाचारों, सन्तापों के प्रति निश्चिन्त होकर कुंभकर्णी नींद में पड़े शासकों का व्यंग्यात्मक एवं वास्तविक चित्र खींचा है -

"कुंभकर्ण से सोये आज हमारे शासक
सुख संपत्ति सुलभ सुविधाओं की शय्या पर
शक्ति मोह, पदमद की स्वप्न भरी निद्रा में
अनाचार सन्तापों की गहरी छाया में ।"[2]

आलसी एवं निद्रा - लोलुप शासकों केलिये कुंभकर्ण का उपमान अत्यंत उचित है । हमारे शासक भी सुख सुविधाओं की शय्या पर गाढी निद्रा में तल्लीन हैं कि उन्हें बाहर प्रजावर्ग के दुःखों की काली छाया का अनुमान तक नहीं है । प्रजा की पुकार उनके कानों में नहीं पहुँच पाती है ।

कवि राजनयिक और आर्थिक साधन से जनमंगल असंभव मानता है । कवि ने राजनीतिक नेताओं को लोगों के उर के व्रण माना है । नेता अपनी कूटनीति से लोगों का शोषण करते हैं -

---

1· गीत अगीत - पन्त, पृ·152

2· किरण वीणा - पन्त, पृ·224

"अधिक सभ्य जन-भू के
नेताओं से जनगण,
प्रकृत मनुज वे, मानवीय
संस्कार ग्रथित मन !
पद मद कामी शासक
मनुज जगत् उर के व्रण,
सभ्य प्रवंचक, कूट नीति से
करते शोषण !"[1]

"आस्था" में कवि ने शासकों की ऐसी निंदा की है -

"भला हृदय परिवर्तन
हो भी कैसे संभव ।
जब यंत्रों के दास
शक्ति पद मद के भूखे
हृदयहीन मुट्ठी भर जन
शासन करते हों
सरल असंख्य जनों को
बहका कृत्रिम जग में !"[2]

जो अपनी कुटिल बुद्धि से जगत् में जटिल परिस्थितियों को जन्म दे सकता है वही बुद्धिमान है । वही महान् शोभी नरेन्द्र बन सकता है -

---

1. गीतहंस - पन्त, पृ.156
2. आस्था - पन्त, पृ.34-35

"कुटिल बुद्धि से
जटिल परिस्थितियों को जो नर
जन्म जगत् में दे सकता
वह बुद्धिमान है ।
वही महान् यश: किरीट
शोभी नरेन्द्र भी ।"[1]

आज राजनीतिक स्तर पर पार्टीबाजी एवं पद हड़पने का लोभ प्रबल होता जा रहा है । प्रत्येक राजनीतिक दल अपने अधिकार की रक्षा तथा शासन पद पाने केलिये परस्पर लड़ रहा है और यह पद मोह एवं पद-मद इतना घृणित रूप धारण कर चुका है कि प्रत्येक दल प्रतिपक्षी पर गोलियों की बौछार करता है और कीचड़ उछालता है । इस बुराई से कांग्रेज़ नेता भी बच नहीं पाये हैं । भारतमाता की हड्डी केलिये कुत्तों से लड़ते कांग्रेज़ नेता का चित्र उपहास्य होता हुआ भी कितना यथार्थ है -

"धिक् यह पद मद, शक्तिमोह ! कांग्रेज़ नेता भी
मुक्त नहीं इससे, - कुत्तों से लड़ते कुत्सित ?
भारत माता की हड्डी हित! ..... ।"[2]

अधिकार के लोभ में लड़ते झपटते कांग्रेस नेताओं केलिये हड्डी के टुकड़ों पर टूटते कुत्तों के समान वर्णन किया है ।
गोहत्या के विरोध में कवि ने अपनी राय प्रकट की है -

---

1. आस्था - पन्त, पृ.35
2. पुरुषोत्तमराम - पन्त, पृ.45

"हम गोहत्या रोक रहे क्यों ? यह चुनाव का
विज्ञापन क्या ? या हम जीती ही गायों को
खाने के अभ्यासी अब ? क्या नहीं दीखते
भारतीय गायों के पंजर ? मांस कहाँ है
उनके तन पर ? कौन खा गया ?[1]

कवि पूछता है कि इस दुनिया में बौद्धिकता से क्या उपयोग है ? साधारण लोग तन मन से दारिद्र्य दैन्य से व्यथित है । कवि की राय में बौद्धिकता आज लोगों की वाग्विलासिता मात्र है । लोगों को भूखे भजन की अपेक्षा रोटी, कपड़ा, मकान की ज़रूरत है -

"आज जनों को अन्न-वस्त्र
आवास चाहिये,
भूखे भजन न होय -
मुक्ति का यह संकट-युग ।"[2]

शंखध्वनि में -"वियतनाम" शीर्षक कविता में वियतनाम में चल रहे साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के प्रति कवि ने अपना उत्साह प्रकट किया है ।

---

1. पुरुषोत्तम राम - पन्त, पृ.43
2. आस्था - पन्त, पृ.34

वियतनाम जनता स्वतंत्रता को प्राणों से भी प्यारा मानती है -

"शूरवीरता के अप्रतिम निदर्शन निश्चय,
पौरुष तेज प्रतीक, धन्य तुम वियतनाम जन ।
निज स्वतंत्रता की वेदी पर हँस हँसकर तुम
करते सब आबालवृद्ध निर्भीक समर्पण ।"[1]

वियतनाम के सत्य युद्ध में अत्याचारी ठहर न सकते । तेजस्विनी स्त्रियों के स्त्रीत्व को नष्टभ्रष्ट कर दिया । इसका दयनीय चित्र कवि ने खींचा है -

"अग्निशिखा सी तेजस्विनी स्त्रियाँ वैरी का
मान भंग करती - विद्युत असि सी कढ बाहर,
सार्थक स्त्रीत्व हुआ उनसे, जन-भू पथ पावन,
चंडी फिर असुरों की बलि लेति भर खप्पर ।"[2]

---

1. शंखध्वनि - पन्त, पृ. 181

2. वही, पृ. 181

"शंखध्वनि" के "लेनिन के प्रति" कविता में कवि के श्रद्धाभाव का प्रकाशन है । एक शती के बाद आज भी कवि को लगता है कि जनगण के दारिद्र्यदुःख, दासता को नष्ट करने केलिये ही लेनिन का अवतार हुए हों । इस कविता में कवि ने यह भी धारणा व्यक्त की है कि लोकक्रांति के दूत लेनिन और गाँधीजी एक ही सत्य के शुभ संस्करण हैं और इसलिये -

"मनुज हृदय को उन्नत करने आये गाँधी
आत्मा का दे सौम्य स्पर्श अंतर्मुख मन को -
तुम से लेकर महद् साध्य, गाँधी से साधन
निखिल विश्व-जीवन संयोजित हो जन-भू पर[1] ।"

"समाधिता" की अंतिम कविता बांगला देश पर है । बांगला देश में पाकिस्तान के क्रूर और हिंस्र दमनचक्र का वर्णन करके कवि ने भारत के हस्तक्षेप और पाकिस्तानी सेना के आत्मसमर्पण का उल्लेख किया है । बांगला देश के युद्ध में जनता की दयनीय दशा ऐसी है -

"रुंड मुंड, नर अस्थि पंजरों से
बाङ्ला भू
अभी पटी है !
गीताएँ, राधाएँ
मुग्धाएँ श्यामाएँ
गर्भवती हैं,
लोक लाज में लिपटी गर्हित
अनचाहे बच्चों की माँ बन ।
पद प्रहार से लुंठित
कामुक सैनिक जन के,
भोग जिन्होंने उन्हें
काट डाले कोमल स्तन,

1· शंखध्वनि - पन्त, पृ·184

बच्चों को ऊपर उछालकर
बेध प्रखर संगीन नोक से ।"[1]

भारत ने प्रतिवेशी की भूमिका निबाही । भारतमाता ने अमृतकुंभ लेकर बांगला की जनता को पुन: जिलाया -

"निर्बल के बल राम भले हों,
निर्बल का संसार नहीं है !
सत्य, वीर भोग्या वसुंधरा ।
भारत का नभ गर्जन भरे
तुमुल ध्वनि वज्रास्त्रों से मंडित ।"[2]

कविता के अन्त में बांगला देश के नवीन मानवीय दायित्व की आख्याकर इस शुभकामना के साथ कविता को समाप्त करता है -

"निखिल विश्व तक विस्तृत हो
उसका मन: क्षितिज,
जीवन ईश्वर के प्रति
पूर्ण समर्पित हो मन ।"[3]

पश्चिमी देशों की उन्नति देखकर कवि गतिरुद्ध-विभक्त भारत के बारे में सोचता है । भारत पर कोई शत्रु आक्रमण करेगा तो स्थिति क्या

---

1. समाधिता - पन्त, पृ.169-170
2. वही, पृ.175
3. वही, पृ.176

हो जायेगी ? हमारा देश हमेशा लोक-मंगल, भू-रचना, शांति, सत्य और ईश्वर केलिये खड़ा रहता है । लेकिन जब युद्ध अनिवार्य होता है तब सहर्ष युद्ध का सामना करना है -

"युद्ध यदि युग-भू पर अनिवार्य
मनुजता हित दे निज बलिदान
अंध भू तम का मुख कर दीप्त
करे भारत जन भू कल्याण[1] ।"

कवि की राय में युद्ध से पृथ्वी का कलंक धो सकेगा और नव युग को नव जीवन शोभा मिलेगा तो अच्छा है -

"युद्ध यदि दुर्निवार युग सत्य-
रक्त वह धोये धरा कलंक
खिले नव जीवन शोभा पद्म
जन्म दे नव युग को भू पंक[2] ।"

दुनिया में सब कहीं अशान्ति फैली थी । सब कहीं असंतोष के बादल घिरे हुए थे । सब के भीतर कटु अतृप्ति और बाहर अशांति फैली हुई थी । विश्व शक्तियों में विरोध बढ़ता ही गया । अस्त्र शस्त्र दंष्ट्रों से सज्जित राष्ट्र दूसरों पर आक्रमण करने को उद्यत था । ऐसे राष्ट्र भू देशों पर आक्रमण कर शांति भंग करते थे -

---

1· लोकायतन - पन्त, पृ· 412
2· वही, पृ·413

"रक्त तृषा, विस्तार-स्पृहा पीड़ित
सर्प-छत्र से उग्र राष्ट्र उगकर
शान्ति भंग करते भू देशों की
छद्म आक्रमण कर प्रतिवेशी पर ।"[1]

भारत को स्वतंत्र हुए कितने साल बीत गये फिर भी कवि के मन पर संदेह होता है कि भारत भू पर कौन स्वतंत्र हुआ ? दीनता से ग्रस्त जन या मध्ययुग की कुत्सित मनोवृत्तियाँ मुक्त हुई ?

"कौन स्वतंत्र हुआ भारत भू पर
सोच रहा था कवि मन में चिन्तित,
दैन्य ग्रस्त जन ? - नहीं, मध्ययुग की
मनोवृत्तियाँ मुक्त हुई कुत्सित ।"[2]

इससे स्पष्ट होता है कि आध्यात्मिक, दार्शनिक और सामाजिक विचारों की दृष्टि से ही नहीं अपितु पन्तजी के राजनीतिक विचारों की दृष्टि से लोकायतन तथा परवर्ती काव्य अत्यंत महत्वपूर्ण हैं । युगद्रष्टा कवि ने यथाप्रसंग अपने युग के राजनीतिक आदेश का चित्रण किया है साथ ही साथ अपने राजनीतिक विचारों को वाणी दी है ।

1· लोकायतन - पन्त, पृ·508

2· वही, पृ·508

5.5 निष्कर्ष

लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में अभिव्यक्त भावी समाज और संस्कृति संबंधी परिकल्पना को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। वे हैं - भावी मानव, नवीन जीवन मूल्य और भावी समाज और संस्कृति।

भावी मानव की कल्पना पन्त ने आदर्श मानव के रूप में की है। वंशी, हरि, श्री, मेरी आदि पात्रों के व्यक्तित्व में कवि ने इसी आदर्श मानव को उभारने का प्रयत्न किया है। मानव को भू जीवन से बाहर ईश्वर को खोजने की आवश्यकता नहीं। ईश्वर मनुष्य के भीतर ही बसता है।

कवि सामाजिक कल्याण केलिये नारी के महत्व अनिवार्य मानता है। उन्होंने सब कहीं आधुनिक नारी की भव्यता और कुरूपता का वर्णन किया है। अंतिम कृतियों में कवि के मन में नारी के प्रति जो श्रद्धालु रूप है वह एकदम बदल गया। उनकी दृष्टिमें आज की नारी शील को त्यागकर रूप की ओर अग्रसर हो रही है।

कवि समन्वयवाद का समर्थक है। वे आध्यात्मिक और भौतिक जीवन में संयोजन चाहते हैं। कवि की दृष्टि में विनाश के बाद संपूर्ण विश्व में नव्य चेतना का संचार होगा और पृथ्वी पर नवजीवन का आगमन होगा। नवजीवन के बाद प्रकृति के अंचल में भावी समाज की स्थापना होगी। भावी समाज वर्गहीन समाज होगा। सभी जाति, वर्ण राष्ट्रीय सीमाओं का लंघन करके मानवता के आधार पर समाज का नव निर्माण होगा।

समाज के पश्चात् कवि ने युग-संस्कृति पर दृष्टिपात किया । बढ़ते हुए सांस्कृतिक विघटन को देखकर उन्होंने एक सांस्कृतिक जागरण की कल्पना की । उनकी राय में वर्तमान राजनीति, मदान्ध करनेवाली भौतिकता, अध्यात्म के प्रति अनास्था और जड यांत्रिकता आदि हमारे सांस्कृति ह्रास के उत्तरदायी तत्व हैं । अपने प्रबन्धकाव्य "लोकायतन" में कवि ने "लोकायतन" नामक एक काल्पनिक सांस्कृतिक केन्द्र की स्थापना कर सांस्कृतिक अभ्युदय के व्यावहारिक रूप तो स्पष्ट किया है, साथ ही अभ्युदय के बाद की सामाजिक स्थिति को भी प्रस्तुत किया है ।

पन्तजी की सभी कृतियों से भिन्न एक वैदिक कालीन समाज का चित्रण "सत्यकाम" में हुआ है ।

लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में यत्रतत्र पन्तजी की राजनीतिक विचार-धारा की अभिव्यक्ति हुई है । "लोकायतन" में गांधीजी की दक्षिण-आफ्रिका यात्रा, दांडीयात्रा, नमक सत्याग्रह आदि स्वातंत्र्यसंग्राम के कई चित्र हैं ।

पन्तजी ने लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में कहीं कहीं राजनीतिक नेताओं और शासकों की कटु आलोचना की है । "लोकायतन" और "संक्रांति" में निर्वाचन की हलचल और कुर्सियों का वर्णन हुआ है । "संक्रांति" में आपातकाल का वर्णन भी है ।

पन्त ने सारे विश्व में घटित होनेवाली नरहत्या और पाशविक वृत्तियों का यथातथ्य वर्णन किया है । "शंखध्वनि" की "वियतनाम" और "समाधिता" की "जय बांग्ला" आदि इस बात का उत्तम उदाहरण है ।

छठा अध्याय

लोकायतन और परवर्ती रचनाओं का शिल्पपक्ष

छठा अध्याय

6. लोकायतन और परवर्ती रचनाओं का शिल्पपक्ष

"शिल्प-विधि रचना की उन प्रमुखताओं का लेखा-जोखा है जिनके आधार पर रचना मूर्त हो सकी है अथवा विशिष्ट भंगिमा के साथ अवतरित हुई है। शिल्पविधि रचना कैसी है यह उत्तर न देकर रचना ऐसी है पर अधिक ज़ोर देती है[1]।" "कवि की अनुभूति और उसकी भावुकता ही सब कुछ नहीं है, उसे तद्रूप अपने पाठकों तक पहुँचाने की भी आवश्यकता होती है, और इस कला की सफलता केलिये उन्हें किसी माध्यम की आवश्यकता होती है, जिसका शास्त्रीय नाम शिल्प है[2]।" शिल्प की सार्थकता तभी संभव होती है जब अमूर्त संवेदना का सफल मूर्तिकरण होता है।

---

1. आधुनिक कविता में शिल्प - डॉ. कैलाश वाजपेयी, पृ. 19
2. आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में शिल्प विधान - डॉ. श्यामनंदन किशोर - पृ. 27।

सभी कलाकारों के संदर्भ में अनुभूति और लक्ष्य मुख्य तत्व है । किसी पूर्व निश्चित रूपरेखा के अनुसार कोई भी सृजनात्मक प्रतिभा रचनाकर्म में प्रवृत्त नहीं होती । काव्य के अवयवों के संस्कार और उनके सामंजस्यपूर्ण आकलन में कवि की कारयित्री प्रतिभा एवं विधायक कल्पना जिन रूपाकारों एवं विन्यासों का अन्तर्भावन करती है उन सबका ग्रहण शिल्प के अन्तर्गत होता है ।[1] "शिल्प, कविता का औपचारिक माध्यम नहीं है, अंतर्वस्तु का प्रतिरूप है, कविता उसीके ज़रिये मूर्त और व्यक्त होती है । वस्तु या विचार जब तीव्र अनुभूति में तरंगित होते हैं तो वे तत्काल सौंदर्य प्रतिरूपों में स्थानान्तरित हो जाते हैं । इसलिये कविता के कथ्य को उसके शिल्प से या शिल्प को कथ्य से जुदा नहीं किया जा सकता ।"[2] शिल्पपक्ष के संबंध में कवि पन्तजी की राय ऐसी है कि "कविता और कला-शिल्प मेरी दृष्टि में फूल और उसके रूप मार्दव की तरह अभिन्न हैं । रूप-मार्दव ? हाँ, किन्तु रंग गंध मधु फल ही फूल का वास्तविक दान है ।"[3] कवि की अभिव्यंजना के विविध उपकरणों का वैशिष्ट्य मूलत: उसकी अनुभूति की प्रकृति के ही आश्रित है । देश विदेश के आलोचनाशास्त्र में काव्य के अभिव्यंजना शिल्प के स्वरूपविधायक निम्नोक्त उपकरण प्राय: स्थिर हो चुके हैं -

6·1 भाषा

6·2· बिम्ब विधान

6·3· प्रतीक विधान

6·4· अप्रस्तुत विधान

6·5· छन्द योजना और

6·6· काव्यरूप

1· काव्यशिल्पके आयाम - सुरेश शर्मा, पृ·163

2· आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प - विधान - डॉ·श्यामनंदन किशोर, पृ·105

3· चिदम्बरा - पन्त, पृ·14

6·1· भाषा

अगोचर बातों या भावनाओं को भी, जहाँ तक हो सकता है, कविता स्थूल गोचर रूप में रखने का प्रयास करती है। इस मूर्ति-विधान केलिये वह भाषा की लक्षणा - शक्ति से काम लेती है।[1] "भाषा स्वयं कवि के संज्ञान, संप्रश्न, अनुभव, प्रतिभा, अभिप्राय और कुशलता का मूर्त रूप है। xxx व्यक्ति का अपना भाषा संस्कार ही अनुभव का संसार है, इसलिये अनुभव-संसार के विस्तार केलिये भाषा संसार का प्रसार अनिवार्य शर्त है[2]।"

नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से प्रयुक्त काव्यभाषा के अध्ययन से कवि के भावजगत् एवं कल्पना जगत् का सच्चा परिचय मिल जाता है। भाव के अनुरूप भाषा में परिवर्तन का आना स्वाभाविक है। आधुनिक हिन्दी काव्य के इतिहास में प्रगतिवाद तक काव्य भाषा बोलचाल से पूर्णतः अलग अपना एक आभिजात रूप रखती थी। प्रगतिवाद से लेकर काव्यभाषा को जनभाषा के निकट लाने का प्रयत्न शुरू हुआ। आधुनिक काव्यभाषा अपनी परम्परागत आभिजात्य को छोड़कर गद्य के बराबर रूप लेने लगी है। हिन्दी की छायावादोत्तर काव्यभाषा के विकास में जो परिवर्तन आ गये हैं उनका थोडा बहुत रूप पन्तजी की कविताओं के विश्लेषण से प्रकट हो जाता है। पन्तजी ने भाषा को भव्य एवं सुन्दर रूप प्रदान किया। "पन्त की भाषा हिन्दी के परिपूर्ण क्षणों की वाणी है। उसमें हिन्दी की समस्त शक्तियों का विकास है। शाब्दिक मितव्यय कवि में प्रारंभ से ही मिलता है, धीरे,धीरे उसकी प्रौढता का विकास होता गया है[3]।"

1· चिन्तामणि - पहला भाग - रामचन्द्रशुक्ल, पृ·140

2· कविता की तीसरी आँख - प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ·13,10

3· सुमित्रानंदन पन्त - डाॅ· नगेन्द्र, पृ·70

पन्तजी ने बोलचाल और काव्यभाषा में अन्तर करते हुए यह स्पष्ट किया है कि "वर्ड्सवर्थ ने भी एक बार पोयटिक डिक्शन की बात कही थी, जिसमें कि उनने कहा था कि कविता की भाषा बोलचाल के निकट होनी चाहिये । लेकिन कविता बोलचाल की भाषा के भीतर ही नहीं रह सकती । इसकेलिये मेरा अपना विश्वास है कि कविता में एक विशेषता होती है, कवि की दृष्टि में एक विशेषता होती है । जिस वस्तु की बात वह कहता है बोलचाल की भाषा उस वस्तु को जिस भाँति पहचानती है कवि-भाषा उस वस्तु को उस दृष्टि से नहीं पहचानती । वह उसको एक दूसरी दृष्टि से देखती है और वही उसकी अन्तरंग दृष्टि है और मर्म को छूनेवाली दृष्टि है[1] ।"

भाषा के विषय में पन्तजी का कथन है - "भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है । यह विश्व के हृत्तंत्री की झंकार है, जिसके स्वर में वह अभिव्यक्ति पाता है[2] ।" वे भाषा को कोई बाह्य वस्तु न मानकर मन एवं आत्मा से संबंधित वस्तु मानते थे । उनका कथन है - "भाषा मनुष्य के हृदय की कुंजी है, ----- भाषा हमारे मन का परिधान या लिबास है[3] ।" उन्होंने अपने महाकाव्य "लोकायतन" में भी इसी प्रकार के मत अनेक स्थलों पर व्यक्त किये हैं, यथा -

"भाषा न शब्द संग्रह भर
राष्ट्रीय आत्मा का दर्पण,[4]"।

---

1. धर्मयुग, पृ.43, जनवरी 1970
2. पल्लव - सुमित्रानंदन पन्त, पृ.26
3. शिल्प और दर्शन - पन्त, पृ.197
4. लोकायतन - पन्त, पृ.164

एक रूसी विद्वान ने पन्त की काव्यभाषा के संबंध में ऐसा कहा है - "काव्यात्मक अभिव्यक्ति को अधिक प्रभावशील बनाने के हेतु बोलचाल के शब्दों के साथ-साथ ही ग्रांथिक-साहित्यिक शब्दों का समांतर रूप से प्रयोग तो पन्त की काव्यभाषा का एक विशेष स्वरूप है। रूसी विद्वान ने आगे ऐसा भी कहा है - पन्तजी की सूक्ष्मता से विकसित काव्यभाषा के उनकी कविता की सरलता एवं अपार्थिवता के मूल में हज़ारों टन शाब्दिक कच्ची धातु के शोधन-परिमार्जनार्थ किये गये महत् प्रयत्न निहित है[1]।"

पन्तजी राष्ट्रीय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकता के निमित्त भाषागत एकता को सबसे पहले अनिवार्य मानते थे -

"हरि कुंजी कहता भाषा को
खुलता जिससे सामूहिक मन,
क्षेत्र वृत्ति से उठकर ही हम
कर सकते जन-राष्ट्र संगठन[2]।"

इस प्रकार एकता की भाषा के रूप में उन्होंने स्वीकार तो किया खड़ीबोली हिन्दी[3] को ही, परन्तु इसके शब्द समूह में अन्य प्रान्तों एवं देशों की भाषाओं के शब्दों के सन्निवेश को अनुचित न मानकर अनिवार्य माना। उनका विचार था कि ऐसा होने पर ही वह सर्व जन-ग्राह्य बन सकेगी एवं सभी वर्ग के लोगों द्वारा अपनायी जा सकेगी -

---

1. सुमित्रानंदन पन्त तथा आधुनिक कविता में परम्परा और नवीनता -
- ई चेलिशेव, पृ. 88

2. लोकायतन - पन्त, पृ. 70

3. वही, पृ. 166

"बहु प्रान्तों की वाणी का
जनमानस हो रस-संगम,
सांस्कृतिक दैन्य की खाई
फिर पटे युगों की दुर्गम[1]।"
xx x xx
चैतन्य रज्जु भाषा की
कर सकती युक्त हृदय-मन
प्रान्तों में बँटे जनों को
फिर बाँध राष्ट्र में नूतन[2]।"

पन्तजी की काव्यभाषा का अध्ययन निम्न लिखित सात रूपों में किया जा सकता है -

6·1·1· ध्वनीय विश्लेषण
6·1·2· शाब्दीय विश्लेषण
6·1·3· मुहावरों का प्रयोग
6·1·4· व्याकरणिक प्रयोग
6·1·5· तुक
6·1·6· संगीत

1· लोकायतन - पन्त, पृ·166
2· वही, पृ·165

6·1·1· ध्वनीय विश्लेषण

ध्वनि सौंदर्य परम्परागत रूप से अनुप्रास के रूप में मिलता है। पन्तजी ने इन का प्रयोग बहुत अधिक किया है।

जिस गति में बंधे बने सूर्य तेजोज्वल[1]।

सभी सभ्य संभ्रान्त नागरिक[2]।

धीर वीर मेरे प्रिय देवर लक्ष्मण[3]।

इस प्रकार पन्तजी की शैली ध्वनीय दृष्टि से बहुत संपन्न है।

6·1·2· शब्दीय विश्लेषण

पन्तजी की राय में "प्रत्येक शब्द एक-एक कविता है, लड़ी और माल द्वीप की तरह कविता भी अपने बनानेवाले शब्दों की कविता को खो खोकर बनती है[4]।" शब्द के पारखी पन्तजी हैं ही। इसीलिये वे चुन-चुनकर शब्दों का प्रयोग करते हैं पन्तजी भाषा के सूक्ष्म भावों, शब्दों की विभिन्न अर्थच्छटाओं के धनी हैं और हिन्दी के सुसमृद्ध शब्द भण्डार का उपयोग बड़े ही कलात्मक ढंग से करते हैं। हिन्दी की साहित्यिक भाषा के विकास को उनकी जो देन है उसका मूल्यांकन

1· लोकायतन - पन्त, पृ·6

2· लोकायतन - पन्त, पृ·54

3· वही, पृ·19

4· पल्लव - पन्त, पृ·29

जितना ऊँचा किया जाये उतना कम ही है[1]।" डा॰ नगेन्द्र ने ठीक ही कहा कि पन्तजी की सेवा सबसे पहले इसी बात में निहित है कि "जिस खड़ीबोली का रूप अस्थिरता के वाग्जाल से निकालकर हरिश्चन्द्र ने स्थिर किया, जिसको द्विवेदीय स्कूल ने परिमार्जित और नियंत्रित किया, और कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने जिसे प्रांजल और मधुर बनाकर काव्योचित रूप दिया, उसकी समस्त शक्तियों को विकसित एवं गूढ निधियों को प्रकाशित करने का श्रेय पंतजी को ही है[2]।"

पन्तजी की कृतियों में प्रयुक्त शब्द-समूह हिन्दी के अन्य कवियों द्वारा प्रयुक्त शब्द समूह के समान ही मिश्रित है। उसमें तत्सम, अर्धतत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशी आदि समस्त वर्गों के शब्दों का सन्निवेश है परन्तु तत्सम शब्दों का अनुपात अन्य समस्त वर्गों के शब्दों की अपेक्षा अधिक है। इस प्रकार के शब्दों के प्रयोग का कारण भी स्पष्ट है। उन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग किया है। विदेशी शब्द, मुख्यतया अरबी, फारसी एवं अंग्रेजी के शब्द प्रयुक्त हुए हैं। अंग्रेजी के शब्द तो कवि के स्वाध्याय के ही अधिक परिचायक हैं। अरबी-फारसी के शब्द ग्यारहवीं शताब्दी से ही इस देश के पश्चिमोत्तर क्षेत्र में प्रचलित हो गये थे तथा यहाँ की जन-भाषा एवं काव्य-भाषा के भी अभिन्न अंग बन चुके थे।

पन्तजी की कविता के प्रसंग में शब्दीय विश्लेषण के बारे में उनकी राय ऐसी है "जिसे हम स्वभाव कहते हैं उसमें एक अंश अभ्यास का भी होता है। प्रारंभ में तो मनुष्य को सभी कामों केलिये चाहे वह कविता हो या कोई और काम, सतर्कता बरतनी पड़ती है। पीछे

---

1. सुमित्रानंदन पन्त तथा आधुनिक हिन्दी कविता में परम्परा तथा नवीनता - वेलिशेल, पृ॰88
2. सुमित्रानंदन पन्त - नगेन्द्र, पृ॰65

वह उसके सहज बोध का एक अंग बन जाती है । मैं ने जब कविता लिखना प्रारंभ की थी, तो शब्द, अर्थ, शिल्प संबंधी आदि सभी नियमों का सूक्ष्म ज्ञान प्राय: कर लिया था । यह बोध धीरे-धीरे प्रयोग में भी आने लगा और मेरे सृजन का सहज अंग बन गया[1] ।"

पन्तजी शब्दों के द्वारा अधिक से अधिक भावाभिव्यक्ति चाहते थे । उन्होंने ध्वनि सौंदर्य केलिये स्वरों के प्रयोग को व्यंजनों से अधिक महत्व दिया है । पन्तजी ने ऐसा कहा है "स्वर प्रसारगामी होते हैं, व्यंजन नादगामी । वीर रस की कविता को छोड़कर सौंदर्य मेरी दृष्टि में व्यंजनों से अधिक स्वरों के ही सार्थक प्रयोग पर निर्भर करता है[2] । पन्तजी ध्वनियों के प्रभाव या उनके अर्थ के संबंध में विशेष रूप से जागरूक रहे हैं । इसीलिये वे अपनी रचनाओं में शब्दों का चयन करने में ध्वनियों के प्रति विशेष सतर्क रहे हैं ।

पन्तजी द्वारा व्यवहृत शब्द-समूह का वर्गीकरण निम्नलिखित पाँच वर्गों में विभक्त किया जा सकता है -

6·1·2·1 संस्कृत के शब्द ।

6·1·2·2· उर्दू एवं फारसी के शब्द ।

6·1·2·3· अंग्रेज़ी के शब्द ।

6·1·2·4· ग्रामीण और आंचलिक शब्द ।

6·1·2·5· नूतन शब्द निर्माण ।

6·1·2·6· बहु प्रयुक्त शब्द ।

1· पन्त की काव्यभाषा शैली - वैज्ञानिक विश्लेषण - कान्ता पन्त, पृ·51

2· पन्त की काव्यभाषा शैली - वैज्ञानिक विश्लेषण - कान्ता पन्त, पृ·52

6·1·2·1· संस्कृत के शब्द

पन्तजी के काव्य की शब्दावली तत्सम-प्रधान है। उनकी भाषा में प्रयुक्त संस्कृत के तत्सम शब्द अधिकांशतः आकार में लघु हैं। यथा - अंत, आनन, आमूल, अंश, ईषत्, इति-अथ, ऋत, ऋक, कनक, गैरिक, गोपन, चिति, चिद्, चेतन, जड, तन, तमस, तिमिर, तडित, तोरण, धरा, धारित, धूमिल, परे, पथ, पावन, पावक, भू, भव, विगलित, विकम्पित, विचरित, शान्ति, शोभा आदि (लोकायतन) तरल, तम, दिगंत, निशा, नीरवता, भाव, लय, विरम, शव, शिखर, सुख, सुषमा, सुविधा, संशय, सागर आदि (पौ फटने के पहले)
संस्कृत पदावलियों का प्रयोग -

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय।[1]

इस प्रकार पन्त की परवर्ती रचनाओं पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि पन्त-काव्य में तत्सम शब्द किसी विशेष स्थल पर ही प्रधान रूप से प्रयुक्त नहीं हुए हैं, प्रत्युत वे संपूर्ण काव्य में बिखरे पड़े हैं। पन्तजी द्वारा संस्कृत की पदावलियों के प्रयोग की प्रशंसा करते हुए डॉ· हरिवंशराय बच्चन ने ऐसा कहा है - उन्होंने कोष खोलकर संस्कृत शब्दों को उधार नहीं लिया है। उन्होंने संस्कृत के विस्मृत शब्दों को भावों से ठोंक-बजाकर लिया है, सुरुचि से सूंघ-सूंघकर लिया है।[2]"

1· गीतहंस - पन्त, पृ·174

2· कवियों में सौम्य सन्त - डॉ· हरिवंशराय बच्चन, पृ·27

6·1·2·2· उर्दू एवं फारसी के शब्द

मार्क्सवाद और साम्यवाद से प्रभावित उनकी रचनाओं में इन शब्दों का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है । हिन्दी को अन्तर्प्रान्तीय भाषा बनाने केलिये पन्त उसमें 50 प्रतिशत संस्कृत और 50 प्रतिशत उर्दू शब्दों को रखना चाहते हैं ।[1] पन्तजी ने प्रचलित उर्दू शब्दों का हिन्दीकरण करके उन्हें अपनी भाषा में स्थान दिया है -

"नाचता आनंद पागल"[2]

6·1·2·3· अंग्रेज़ी के शब्द

पन्तजी अंग्रेज़ी के वर्ड्सवर्थ, कीट्स, शैली और टेनिसन आदि कवियों से प्रभावित हुए हैं और उन्होंने अंग्रेज़ी साहित्य का गहन अध्ययन भी किया है । बहुत सी वाक्यों की रचना पन्त ने अंग्रेज़ी शैली के अनुकरण पर की है । कहीं अंग्रेज़ी मुहावरों और वाक्य-विन्यास तथा पद-विन्यास का पन्तजी ने प्रयोग किया है । कहीं-कहीं पन्तजी ने अंग्रेज़ी शब्दों का हिन्दी अनुवाद कर दिया है । अत: यह स्पष्ट है कि पन्त की भाषा पर भी अंग्रेज़ी भाषा शैली का प्रभाव है । अनेक शब्दों का निर्माण अंग्रेज़ी शब्दों के आधार पर किया है । "प्रभु सुनहली छायाएँ"[3] "क्वारी शोभा बनी रहोगी तुम"[4], "स्वप्नों का वैभव"[5], "नव शोभा का

1· धर्मयुग, पृ·11, जनवरी 1970

2· किरणवीणा - पन्त, पृ·4

3· गीतहंस - पन्त, पृ·1

4· वही, पृ·69

5· वही, पृ·138

स्वर लिपि लिखती[1], "सुनहली छाया बरसा"[2], "मानवता का सूर्योदय"[3] "नया ऐतिहासिक अरुणोदय"[4], आदि ।

पन्तजी अंग्रेज़ी वाक्यों और पदों की भाँति ही अंग्रेज़ी शब्दानुवाद में पटु हैं । अंग्रेज़ी के अनूदित शब्द हिन्दी के अपने शब्द लगते हैं । कुछ शब्दों के उदाहरण - स्वर लिपि[5], रेखांकित[6], अजान[7] आदि ।

6·1·2·4· <u>ग्रामीण और आंचलिक शब्द</u>

खेडे, पुरवे, दूह, हुल्लड, सुथरा, मरघट, हथकन्डे, चूल्हा, चौका, कनकौवे, धक्कम धक्के, रेलवेल, हत्थापाई इत्यादि ग्रामीण शब्दों का प्रयोग पन्त ने "लोकायतन" में किया है ।

सरकाती, भटकाती, कसमकस, गवई, कुचले, विवाई, इनकार, फिरकी, रंभाना, छीमियाँ, काँस, मगरोठी, अतलस, गुलचुम्नी, झुलनी, करिगा, हुडदंग और लहँगा इत्यादि ग्रामीण एवं देशज शब्दों का प्रयोग कविवर पन्त की रचनाओं में खुलकर हुआ है ।

1· किरणवीणा - पन्त, पृ·8
2· वही, पृ· 8
3· वही, पृ·151
4· वही, पृ·156
5· वही, पृ· 8
6· वही, पृ· 8
7· वही, पृ· 8

6·1·2·5· नूतन शब्द निर्माण

पन्तजी शब्दशिल्पी हैं । नूतन शब्द निर्माण में निष्णात हैं । उन्होंने अपनी परवर्ती रचनाओं में काव्यभाषा के छायावादी कलेवर को तोड़कर उसका युगानुरूप पुर्ननिर्माण किया है । उनके शब्दनिर्माण से हिन्दी का शब्द-भण्डार अधिक समृद्ध हो गया है । भावावेग की स्थिति में जब कवि को अपने भावों को अभिव्यक्त करने केलिये अनुकूल शब्द नहीं मिलते तो वे प्रचलित शब्दों में ही भाव तथा ध्वनि के अनुकूल परिवर्तन करके नवीन शब्दों का निर्माण कर लेते हैं । उदाहरण केलिये - शशिहासिनि [चाँदनी], कुंजविहारी [मधुप], धीरारमण [ऋतुपति], तरुवासिनी [कोकिल], मधुबाल [भौंरा], शैवालिनी [सरिता], जलवाह [बादल], वातुल [वायु] आदि कवि के स्वनिर्मित शब्द हैं ।

6·1·2·6· लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में बहुप्रयुक्त शब्द

लोकायतन - परिवादिनी, निरवधि, प्रज्ञामृत, कौडिल्ला, स्वन, विरत, जल्पित, पारगामी, पुलकालिंगन, टिटिहा, परिवृत, कुई, जखिम, लवणपुर, पण, पुनरुज्जीवित, अनुशिष्ट, हालाडोला, दुर्धर, उन्नीत, उपकण्ठ, प्रास्तन, कचियाई, विलक्षण, परावधी, गवाक्ष, फेनोच्छ्वसित, विलोम, चित्कण, सौमनस्य, कष्टपूत आदि ।

पौ फटने से पहले - चूर्णिताक्षी, नीलारोह, निःस्व, स्थाणु, त्रिदिव, प्रवयम्, स्वर्वच्छि ।

शंखध्वनि - संगणक, कंप्यूटर, जीना वजयुद्ध, पारित्रिकी आदि । अप्रचलित शब्द - पुरोहित, चिद्दीपित, उन्नमित आदि ।

समाधिता - सम्दिक्, युगपद्, बहिर्निर्भव, किल्विष, सत्वर, दंशन, मसृण, युगान्त, कारयुत, चेतस, प्रहर्ष आदि नये एवं प्रचलित शब्द इसमें प्रयुक्त हैं। आस्था - भा: स्वर, बहिर्निर्भव, निगम, अप्रतिहत, सत्यानृत, विश्लथ, कृच्छ, क्षिप्रश्येन, निर्निमेष, मृण्मय, प्रतिच्छवित आदि अपेक्षाकृत कुछ नये शब्द हैं।

सत्यकाम - इसकी भाषा अप्रचलित शब्दों से भरी पड़ी है। कुछ उदाहरण हैं - उद्गीथ, मातरिश्व, न्यग्रोध, ऋत, त्वष्टृ, शिरस्क, रिष्ट, अपापविद्ध, कान्तिभृत्, अजाश्व, सवितृ, हव्यवाह, शिंशिपा, अभीप्सा, त्राटक, समित्पाणि, तल्प, चैतसिक, त्रिककुभ, हयध्वनी, परावृज, सूर्योज्वल, क्रोष्टु, अप्रकेत, तृण-शष्प, वीति-होत्र, वैश्वानर, अभिव्याम, अतंद्र, आयतनवान् ।

गीत-अगीत - इस कृति मे स्पष्ट होता है कि पन्तजी का संस्कृत निष्ठ भाषा पर जितना अधिकार है, उतना ही सामान्य बोलचाल की भाषा पर भी है। केतन, धीराजीवि, अंत: प्रभ आदि कुछ अल्पप्रचलित तत्सम भी हैं। "हरजाई"जैसे शब्द पन्तकाव्य में इसी संग्रह में प्रथम और कदाचित् अंतिम बार मिलते हैं। "धिक्" शब्द का बार-बार प्रयोग युग की विषमता के प्रति कवि के आक्रोश को व्यक्त करता है।

6·1·3· मुहावरों का प्रयोग

पन्तजी की रचनाओं में मुहावरों का प्रयोग कम है। कोमल वृत्तियों के कवि होने के कारण पन्तजी मुहावरों के हिमायती नहीं। फिर भी उनकी कविताओं में कुछ मुहावरों का प्रयोग हुआ है -

"लक्ष्मण रेखा सीमा घर आंगन ।"[1]
"साँप छछूँदर के रण ।"[2] आदि

पन्तजी की रचनाओं में मुहावरों की कमी को देखकर डा॰ नगेन्द्र का कहना है - "पंत जी का काव्य-लोक नित्य के व्यावहारिक संसार से ऊँचा होने के कारण उनमें मुहावरेदानी और कहावतबाजी नहीं के बराबर मिलेगी । हाँ, एकाध स्थान पर चमत्कार लाने केलिये आपने उनका प्रयोग किया है और खूब किया है[3] ।"

6·1·4· व्याकरणिक प्रयोग

पन्तजी की कृतियों में प्रयुक्त संज्ञाओं के लिंग पर ध्यान देने से विदित होता है कि उनके लिंग-निर्धारण में सामान्यत: कोई विशिष्ट नियम अथवा सिद्धान्त प्रयोग में नहीं लाया गया है । पन्तजी कृत लिंग विधान को समझने केलिये इस संबंध में उन्हीं के एक अत्यंत महत्वपूर्ण कथन को ध्यान में रखना आवश्यक है, क्योंकि उनका समस्त लिंग-विधान उसी कथन पर आधारित है । उन्हीं के शब्दों में - "मुझे अर्थ के अनुसार ही शब्दों को स्त्रीलिंग-पुल्लिंग मानना अधिक उपयुक्त लगता है[4] ।" अपनी इस धारणा का कारण बताते हुए उन्होंने लिखा है, "जो शब्द केवल अकारांत-इकारांत के अनुसार ही पुल्लिंग अथवा स्त्रीलिंग हो गये हैं और जिनमें लिंग का अर्थ के साथ सामंजस्य नहीं मिलता, उन शब्दों का ठीक-ठीक चित्र ही आँखों के सामने नहीं उतरता और कविता में उनका

1· लोकायतन - पन्त, पृ·16
2· वही, पृ·110
3· सुमित्रानंदन पन्त - डा॰ नगेन्द्र, पृ·68
4· पल्लव - पन्त, पृ·12

प्रयोग करते समय कल्पना कुंठित-सी हो जाती है[1]।" वे केवल ऐसे शब्दों को ही, जिनमें भाव एवं स्वर-सामंजस्य हो, कविता के उपयुक्त मानते हैं - "वास्तव में जो शब्द स्वस्थ तथा परिपूर्ण अंगों में बने हुए होते हैं उनमें भाव तथा स्वर का पूर्ण सामंजस्य मिलता है और कविता में ऐसे ही शब्दों की आवश्यकता भी पड़ती है[2]।"

उन्होंने शब्दों का लिंग निर्धारण उनके स्वभाव और उनकी प्रकृति के आधार पर किया है। उदाहरणार्थ - "प्रभात" शब्द - वह अकारांत शब्द है अतएव इसे पुल्लिंग होना चाहिये। परन्तु "प्रभात" से किसी परुष भाव अथवा दृश्य का तात्पर्य न होकर कोमल एवं मधुर दृश्य से है। अतएव इनका प्रयोग अपने काव्य में सर्वत्र उन्होंने स्त्रीलिंग में ही किया है। इस के संबंध में उन्होंने लिखा है "प्रभात" और "प्रभात" के पर्यायवाची शब्दों का चित्र मेरे सामने स्त्रीलिंग में ही आता है, चेष्टा करने पर भी मैं कविता में उनका प्रयोग पुल्लिंग में नहीं कर सकता क्योंकि ऐसा करने पर उनकेलिये प्रभात का सारा जादू, स्पर्श, श्री, सौरभ, सुकुमारता आदि नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं, उनका चित्र ही नहीं उतरता[3]।"

इसी प्रकार "बूँद", "कंपन" आदि शब्दों को भी उन्होंने उभय लिंगों में प्रयुक्त किया है। जहाँ छोटी सी बूँद है वहाँ उसे स्त्रीलिंग में प्रयुक्त किया है, जहाँ बड़ी है वहाँ पुल्लिंग में है। जहाँ हल्की-सी हृदय की कंपन है वहाँ स्त्रीलिंग तथा जहाँ ज़ोर-ज़ोर से हृदय के

---

1. पल्लव - पन्त, पृ.12
2. वही, पृ.12
3. वही, पृ.13

धड़कने का भाव हो वहाँ पुल्लिंग उन्होंने माना है । अनिल, आलाप, गर्जन, हास, डर, प्राण आदि पुल्लिंग शब्दों का प्रयोग भी स्त्रीलिंग में किया है ।

वचन की दृष्टि से उनके काव्यों में "धन", "आँसू", "सरसों" "आँख" आदि शब्दों का हमेशा उन्होंने बहुवचन में ही प्रयोग किया है ।

पन्तजी की कृतियों में किन्हीं स्थलों पर विशेषणों के विशेष प्रयोग प्राप्त होते हैं । उन्होंने सामान्य विशेषणों में "वि" उपसर्ग जोड़कर उसे विशेष बना दिया है । उदाहरणों केलिये "नीरव" केलिये "विनीरव", "कंपित" केलिये "विकंपित" और "रहित" केलिये "विरहित" आदि शब्दों का प्रयोग किया है ।

काफी स्थानों पर पन्तजी ने नये विशेषण भी बनाये हैं । इसकेलिये उन्होंने सबसे अधिक "इत" प्रत्यय का प्रयोग किया है अलसित, अवसित, मुकुलित, पुनरुज्जीवित [लोकायतन, पृ.89], महिमान्वित [लोकायतन, पृ.99], समुच्छ्वसित [किरणवीणा, पृ.126], मृत्यंजित [पौ फटने से पहले, पृ.51], चिदीपित [शंखध्वनि, पृ.26] आदि "इल" धातु से "स्वप्निल", "स्वर्णिल", "फेनिल" [लोकायतन, पृ.41], "तंद्रा" से "तंद्रिल" [लोकायतन, पृ.41], "पंक" से "पंकिल" [लोकायतन पृ.41], "रोम" से "रोमिल", "उर्मि" से "उर्मिल", "वर्त" से "वर्तुल", "धूम" से "धूमिल" आदि शब्दों को उन्होंने विशेषण बनाकर अपनी रचनाओं में प्रयुक्त किया है । इन विशेषणात्मक समानार्थक शब्दों द्वारा उनके काव्यशिल्प में उत्कर्ष और निखार आया है ।

पन्तजी ने अपनी काव्ययात्रा के आरंभ में जिस भाषा का सहारा लिया था वह विभिन्न ऐंद्रिय अनुभवों के बीच घुली मिली भाषा थी । वह विषयानुकूल अत्यन्त कोमल और संकोच से युक्त रही है । उस कोमलकांत पदावली में शब्द छोटे, संयुक्ताक्षरों से रहित और कठोर ध्वनियों को बचाते हुए चले हैं । जानबूझकर अनुप्रासों का प्रयोग उन्होंने छोड़दिया है । उनकी आरंभिक भाषा का एक सौंदर्य यह भी है कि उन्होंने अनुनासिकों का पर्याप्त प्रयोग किया है । इस प्रकार हम देखते हैं कि सौंदर्यचेतना के युग में उनकी काव्यभाषा भी प्रकृति के समान ही रंगीन, कोमल और सरस है । एक कुतूहलपूर्ण किशोर-कल्पना का सौंदर्य यहाँ दर्शनीय है । "वीणा" से लेकर "गुंजन" तक की काव्य भाषा में पन्त के भाव और कल्पना का सूक्ष्म प्रसार है ।

समाजवादी चेतना के युग में उनकी छायावादी चेतना एक तरफ मन्द हो गयी है । कवि ने उन कृतियों में युगजीवन और ग्राम्यजीवन के वैषम्यपूर्ण कठोर धरातल पर यथार्थ स्वरों में यथार्थ का चित्रण किया है और ग्राम्यविषयों से संबंधित अनेक शब्दों का समावेश करते हुए अपने विचारों को रूपांकित किया है । ऐसे प्रसंगों में भाषा सौंदर्य के परम उपासक कवि ने उसके प्रसन्न, गंभीर एवं परिनिष्ठित अलंकरण की ओर ध्यान नहीं दिया

समयानुकूल उनकी काव्यभाषा में परिवर्तन आ गया है । प्रारंभिक रचनाओं की कोमलकान्तपदावली आध्यात्मिक चेतना के युग में प्रौढ और दार्शनिक बन गयी है । आरंभिक-काल में भाषा में जो बहाव था वह परवर्ती रचनाओं में दर्शित नहीं होता । क्योंकि अध्यात्मवादी चेतना के युग में कवि मानसिक तथा आध्यात्मिक सौंदर्य को प्रकट करने में तत्पर हो गये हैं । इसलिये उनकी भाषा दार्शनिकता से अभिभूत होकर वैचारिक हो गयी और उनकी अर्थ निष्पत्ति में गूढ दार्शनिक क्लिष्टता उत्पन्न हो गयी । इन रचनाओं में भाषा के अधिक बुद्धि-गर्भित हो जाने के कारण

आलंकारिकता का अभाव एवं सूत्रात्मकता की प्रचुरता है । इस चरण की रचनाओं में पन्तजी ने विचार-चित्रों का अंकन किया है ।

इस प्रकार लोकायतन और परवर्ती रचनाओं की भाषा में चिन्तन और अध्ययन की स्पष्ट छाप मिलती है । वैदिक-ऋचाओं और उपनिषद्-वाक्यों के अनुवाद तथा अरविन्द-दर्शन की बातें कहीं-कहीं अनूदित हैं । इसलिये अधिमानस, अतिमानस, संबोधि, उच्चमन, दीप्तमान संबोधि, ऋतुचित् आदि दार्शनिक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग अधिकांश मात्रा में किया गया है । संक्षेप में कह सकते हैं कि इन परवर्ती काव्यों में मानसिक और आध्यात्मिक सौंदर्य को प्रकट करने की व्यग्रता में उनकी भाषा अधिक दार्शनिक, प्रतीकात्मक एवं बौद्धिक हो गयी है ।

6·1·5· तुक

पन्तजी की भाषा संबंधी उपलब्धियों पर विचार करने के उपरान्त पन्त की तुक संबंधी उपलब्धियों पर विचार करना आवश्यक है । क्योंकि तुक, भाषा और छन्द दोनों के बीच की मुख्य कड़ी है । पल्लव, गुंजन, स्वर्णधूलि, स्वर्णकिरण और लोकायतन में कवि तुक का कट्टर समर्थक हैं । किन्तु "कला और बूढा चांद", "गीतहंस" और "किरणवीणा" में तुक अल्पमात्रा में ही दिखाई पड़ता है । अत: पन्त की कविता तुक का प्रश्रय लेकर चलनेवाली तुक से अभिन्न और भिन्न दोनों ही प्रकार की कविता है । उनका तुक राग का हृदय है जहां उसके प्राणों का स्पन्दन विशेष रूप से सुनाई पड़ता है ।[1]"

1· पल्लव - पन्त, पृ·4।

तुक कविता केलिये इसलिये और भी आवश्यक है कि यह राग और संगीत का वाहक है । दूसरे तुक भाव संप्रेषण में सहायक होता है । इन्हीं सब आवश्यकताओं के परिणाम-स्वरूप पन्त ने तुक की वकालत की है और उसे कविता केलिये आवश्यक भी घोषित किया है । पन्त की तुकायोजना की कलात्मकता के विषय में चेलिशेव का कथन है कि पन्तजी की कविता में कलापूर्ण अभिव्यक्ति की दृष्टि से तुक का महत्व विशेष ऊँचा है । उनकी कविता में तुक आशय की स्पष्टतम एवं अपने रूप में विशेषतापूर्ण अभिव्यक्ति में सहायक होते हुए रचना के विविधतापूर्ण उच्चारणात्मक गठन के एक महत्वपूर्ण साधन का काम देती है[1] ।"

6·1·6· संगीत

पन्त के काव्य की सर्वप्रमुख एवं सर्वाधिक मोहक विशेषता है उनकी चित्रण शक्ति । संगीत उनके शब्द-शब्द में बसा हुआ है । यही कारण है कि उनकी प्रत्येक पंक्ति में काव्य, चित्र और संगीत की त्रिवेणी तरंगित रहती है । उनकी राय में "कविता की भाषा का, प्राण राग है । राग ही के पंखों की अबाध उन्मुक्त उड़ान में लयमान होकर कविता सान्त को अनन्त से मिलाती है । राग ध्वनि लोक निवासी शब्दों के हृदय में परस्पर स्नेह और ममता का संबंध स्थापित करता है । संसार के पृथक्-पृथक् पदार्थ पृथक्-पृथक् ध्वनियों के चित्रमात्र है[2] ।" काव्य संगीत के मूल तन्तु स्वर हैं, न कि व्यंजन, जिस प्रकार सितार में राग का रूप प्रकट करने केलिये केवल "स्वर के तार" पर ही कर-संचालन किया जाता है और शेष तार केवल स्वर-पूर्ति केलिये, मुख्य तार को सहायता देने भर

1· सुमित्रानंदन पंत तथा आधुनिक हिन्दी कविता में परम्परा और नवीनता - ई· चेलिशेव, पृ·94

2· पल्लव - पंत, पृ·28

केलिये झंकारित किये जाते, उसी प्रकार कविता में भी भावना का रूप स्वरों के सम्मिश्रण, उनकी यथोचित मैत्री पर ही निर्भर रहता है।"

पन्तजी ने हिन्दी कविता को उसकी लय की पहचान करवायी है। किसी भाषा की प्रकृति की वास्तविक पहचान उसकी लय में होती है और यह कार्य वही व्यक्ति कर सकता है जो उस भाषा की संपूर्ण भाव-मात्रा की संभावना अपनी कल्पना में उतार चुका हो। पन्त ने पुराने छन्दों में नयी गतियों का विधान करके नये प्राण डाले और नये भाव-बोध की भूमिका में उन्हें उतारा।

पन्तजी ने छायावादी काव्य संगीत की संपन्नता केलिये मात्रिक छन्दों को ही उपयुक्त माना है। काव्य संगीत के प्रति उनकी यही धारणा "पल्लव" से "गुंजन" तक स्थिर रही है। "गुंजन" तक की रचनाओं में एक प्रकार की संगीतात्मकता थी। लेकिन ग्राम्या, युगवाणी जैसी रचनाओं के काल में जीवन के याथार्थ्य की कठोरता के कारण वह लयात्मकता नष्ट हो गयी। आध्यात्मवादी युग में कवि ने काव्य के आभ्यंतर-पक्ष की ओर अधिक ध्यान दिया है। आध्यात्मिकता एवं दार्शनिकता की चर्चा में संगीत-तत्व बिलकुल खो चुका है।

लोकायतन और अन्य परवर्ती रचनाओं में बौद्धिक और दार्शनिक सिद्धांत भरे पडे हैं। इन परवर्ती रचनाओं में कवि का उद्देश्य सिद्धांत निरूपण ही था। इसलिये संगीतात्मकता की ओर उन्होंने पूर्ववर्ती रचनाओं के समान ध्यान नहीं दिया। सत्यकाम की ये पंक्तियाँ इसका उदाहरण है -

"और शाश्वत में शाश्वत को, जड चेतन में
चेतन को, सीमा असीम में तब असीम को
सत्य-निकष में आँक-मिला आत्मा का गौरव[2]।"

इन पंक्तियों में पन्तजी की समन्वय भावना दर्शित है लेकिन संगीतात्मकता का अभाव है । परवर्ती रचनाओं में "गीतहंस" और "गीत-अगीत" आदि रचनायें गेयता की दृष्टि से लिखी गयी हैं लेकिन उनमें भी दार्शनिकता, सामाजिकता और राजनीतिकता के बोझ के कारण संगीतात्मकता की कमी है ।

6·2· बिम्ब-विधान

बिम्ब विचारों को चित्रात्मकता प्रदान करके काव्य-सौष्ठव का वर्धन करनेवाले कल्पना के उपकरणों में एक है । आधुनिककाल में अनेक कवियों का बिम्ब केलिये विशेष आग्रह है । उनकी दृष्टि में बिम्ब विधान की सफलता ही काव्य की श्रेष्ठता की परिचायिका है । पाश्चात्य साहित्य समीक्षा में भी बिम्ब की स्वरूप विवेचना की गयी है ।

अंग्रेज़ी आलोचक "काफमेन" के अनुसार बिम्ब पूंजीभूत विचारों की राशि अथवा समुदाय है जिस में शक्ति का संचार होता है ।[1]"

एक अन्य आलोचक फेगल से अपनी पुस्तक "दि इमजेरी आफ कीट्स एण्ड शेली" के अन्तर्गत बिम्ब की संवेदनशीलता तथा अनुभूति का अत्यधिक महत्त्व प्रतिपादित किया है । उनका कथन है कि मनोवैज्ञानिकों तथा अनेक आलोचकों की दृष्टि में काव्य का बिम्ब कवि की ऐंद्रिय अनुभूति की अभिव्यक्ति है, जो दृश्य, श्रवण, घ्राण, स्पर्श और रुचि के माध्यम से प्रकट होती है । वह इन माध्यमों के द्वारा मन को प्रभावित करता है और काव्य में इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि भौतिक संवेदनाओं को

---

1. Image as vertex or cluster of fused ideas is endowed with energy.

"Imaginism"- S.K. Coffman- Ist Edn. P. 132.

स्पष्ट एवं विश्वसनीय रूप में प्रकट कर सके[1]।"

भारतीय समीक्षकों में डॉ॰ नगेन्द्र का कहना है कि "बिम्ब एक प्रकार का चित्र है जो किसी पदार्थ के साथ विभिन्न इन्द्रियों के सन्निकर्ष से प्रमाता के चित्त में उद्बुद्ध हो जाता है। बिम्ब पदार्थ नहीं है वरन् उसकी प्रतिकृति या प्रतिच्छवि है। मूल सृष्टि नहीं, पुन: सृष्टि है। बिम्ब का मूल विषय मूर्त और अमूर्त दोनों प्रकार का हो सकता है अर्थात् पदार्थ का भी बिम्ब हो सकता है और गुण का भी। किन्तु उसका अपना रूप मूर्त ही होता है। अमूर्त बिम्ब नहीं होता, जिन बिम्बों को अमूर्त माना जाता है वे अचाक्षुष होते हैं, अगोचर नहीं होते[2]।"

"बिम्ब काव्य-भाषा की तीसरी आँख है, जो मात्र गोचर ही नहीं, किसी अगोचर-तत्वेतमा स्मरति नूनभवोधपूर्व-रूप को, एक ओर काययित्री और दूसरी ओर भावयित्री भाषा केलिये उपलब्ध करती है। काव्यबिम्ब वस्तुत: वह शब्दचित्र है, जो अंतर्वेग और भावावेश से संचलित (चार्ज्ड) होता है। यहाँ चित्र से तात्पर्य केवल दृश्य से नहीं, बल्कि संपूर्ण ज्ञानेन्द्रियों केलिये प्राप्त संवेदन-रूप से है[3]।"

बिम्ब कविता का अंत:सार और उसका एकमात्र पर्याय है। वह क्षण-भर में दिक्-काल से मुक्ति की सचेतना करता है। वह मूलत:

1· "दि इमेजरी ओफ कीट्स आण्ड शैली - फोगेल
अध्याय एक, पृ·3

2· काव्यबिम्ब - डॉ· नगेन्द्र, पृ·5

3· कविता की तीसरी आँख - प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ·23

इन्द्रियधर्मी माना जाता है । काव्येतर कलाओं में बिम्ब की अनुभूति अनिवार्यत: इन्द्रिय से जुड़ी है, जबकि काव्य में वह अनिवार्यत: मस्तिष्क से जुड़ी है । बिम्ब कविता के सार्थक उपादान हो सकते हैं जहाँ वे कविता की शक्ति बढ़ाते हैं । "बिम्ब वास्तविकता के विभिन्न स्तरों तक पहुंचने का एक नितान्त व्यक्तिगत और आत्मपरक मार्ग है । वह वस्तु की अनुकृति नहीं, उसके समानान्तर एक नयी और अभूतपूर्व कृति है[1] ।"

6.2.1. <u>पन्तजी के काव्य में बिम्ब-विधान</u>

पन्तजी के काव्य में बिम्ब योजना का सफल प्रयोग हुआ है । उनके काव्यों में बिम्ब का निर्माण केवल शिल्पकौशल की दृष्टि से न होकर कवि के गूढ एवं सूक्ष्म विचारों की कल्पना तथा अनुभूति के सहयोग में ऐन्द्रिय, सजीव, संवेदनशील तथा मर्मस्पर्शी बनाकर उनकी बौद्धिकताजन्य नीरसता तथा दुरूहता को दूर करने और उनमें काव्यात्मकता एवं सौंदर्य की सृष्टि करने केलिये हुआ है ।

बिम्ब से कवि की विचारधारा, दृष्टिकोण तथा उसके व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है । पन्तजी की विचारधारा और उनके व्यक्तित्व का प्रकटीकरण उनके काव्यबिम्बों द्वारा सफल रूप में हुआ है । पन्तजी के बिम्ब-विधान को तीन कोटियों में विभक्त किया जा सकता है - ऐन्द्रिय बिम्ब, मानस बिम्ब और इतर बिम्ब ।

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान - डॉ. केदारनाथसिंह, पृ.21

प्रथम ऐन्द्रिय बिम्ब है जिनमें कवि ने ऐसे बिम्बों की योजना की है जो पाठक की किसी न किसी इन्द्रिय को आकर्षित करते हैं। इन बिम्बों में दृश्य, श्रवण, स्पर्श, गंध और रंग आदि संवेदनों से संबंधित बिम्ब आते हैं। इन का संबंध किसी न किसी इन्द्रिय से जुड़ा रहता है। दृश्य और रंग बिम्बों का प्रयोग पन्तजी ने अपनी प्रकृति से संबंधित कविताओं में अधिक किया है। स्पर्श बिम्ब का प्रयोग सौंदर्य और शृंगारिक कविताओं में अधिक हुआ है। वस्तु व अन्य प्रकार के बिम्बों का प्रयोग कवि पन्त ने अपनी मार्क्सवाद और योगी अरविन्द के दर्शन से प्रभावित रचनाओं में मुख्यरूप से किया है। उनकी दार्शनिक रचनाओं में वस्तु व मानस बिम्बों के प्रयोग अधिक हुए हैं। मानस बिम्बों में बौद्धिकता के प्रति अधिक मोह उपलब्ध होता है।

6·2·2· <u>ऐन्द्रिक बिम्ब</u>

ऐन्द्रिक बिम्ब के पाँच भेद हैं - दृश्यबिम्ब, स्पर्शबिम्ब, घ्राणबिम्ब, श्रवणबिम्ब, रस बिम्ब।

6·2·2·1· <u>दृश्य बिम्ब</u>

पन्तजी की रचनाओं में दृश्य बिम्बों का प्रयोग अन्य बिम्बों की अपेक्षा अधिक हुआ है। दृश्यबिम्ब वस्तु के रंग, रूप और उसकी विभिन्न क्रियाओं तथा उसकी चेष्टाओं को चित्रांकित एवं मूर्तिमान करने में पूर्णतः समर्थ होता है। दृश्य बिम्ब हमारे नेत्रों के समक्ष अमूर्त वस्तुओं को एक सजीव, सुन्दर और मूर्त रूप में प्रस्तुत कर देता है। दृश्यबिम्ब विशेष रूप से नेत्रों को आकर्षित करते हैं।

चाक्षुष बिम्बों के साथ वर्ण बोध का घनिष्ठ संबंध है । वर्ण बोध चाक्षुष बिम्बों को कलापूर्ण चित्रात्मक सौंदर्य प्रदान करता है।[1] पन्त ने वैसे ही सभी रंगों के प्रति अपना राग दिखाया है किन्तु श्वेत एवं सुनहले रंगों के प्रति वे विशेष आकृष्ट हैं ।

पन्त काव्य में आये रंगों की लंबी तालिका बनायी जा सकती गेरुआ,[2] धानी,[3] प्याजी,[4] चितकबरा[5] सुनहला, धूलिधूसरित, श्याम, नीला, पीत, हरित, रजत, फेनिल, गौर-श्याम, स्वर्णलोहित, रक्तिम, ताम्र, मरकत, हरित पीत, अरुण पीत, रजतनील, बैंगनी, कपिश, हरिताभ, वासंती, माणिक, फालसई, ललछौंहा, इन्द्रधनुषी, मूंगी, पाटली, पीताभ, चंपई, गेरुवी, उन्नाबी, बासनी, कुसुंभी, केसरी, सूही, सिन्दूरी, सेमई, दुग्ध, धूमधुंआरा आदि रंग उनके काव्य में बार बार प्रयुक्त हुए हैं, जिनके द्वारा उन्होंने अपने चित्रों को एक चतुर-चितेरे के समान भावमय बनाया है । एक चित्र नीचे दिया है -

"स्वर्ण क्रांति, रस स्वर्ग कलश लेकर
स्वर्णिम स्मिति किरणें बरसा भू पर
स्वर्ण द्वार खोलती स्वर्ग शोभा
स्वर्ण अलक से मुख दिखला सुन्दर ।[6]"

---

1. छायावाद का सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन - डॉ. कुमार विमल, पृ.180
2. लोकायतन - पन्त, पृ.73-74
3. वही
4. वही
5. लोकायतन - पन्त, पृ.73,45
6. वही, पृ.448

इसमें यह दिखाया गया है कि सुन्दरपुर के ग्रामवासियों का सामाजिक संगठन अंतश्चेतना से परिचालित है । इस अंतश्चेतनाश्रित प्रत्येक कार्य केलिये स्वर्णिम रंग का प्रयोग किया गया है ।

ऐसे ही पन्त-काव्य में असंख्य वर्णाश्रित बिम्ब प्राप्त होते हैं । "बासंती रंग की साडी सूही अंगिया प्रिय तन पर"[1] "स्वप्नों की सुरधनु संपद् हंसती"[2], "षड्ऋतुयें स्मित संगति में आती", सौरभ सुरधनु ज्योत्स्ना स्मितिका की" धूपछांह सुषमायें बरसाती"[3], "फहराता रुपहली वायुओं सुनहला अंचल तुम्हारा"[4] "तुम्हीं पूर्णिमा, स्वर्ण संतुलन भर जाती हो"[5] "प्रभु से ही था वह स्मित इंगित"[6] आदि पन्तजी की रंग संवेदना के एक से एक सुन्दर उदाहरण हैं । हास, मुस्कान, ज्योति, छाया, आनंद, प्रेरणा, संगति, रस, दीप्ति, प्रसार, सौरभ जैसी अमूर्त वस्तुओं को भी इसी रंग संवेदना से संवलितकर उन्हें ऐन्द्रिय बिम्ब बनाने का स्तुत्य प्रयास किया है ।

कवि ने जनसमाज केलिये घरौंदे से निकलनेवाली चींटियों के दृश्यबिम्ब का नियोजन किया है -

"निकल घरौंदों से चींटी से
पंक्ति बद्ध जन
जीवन के प्रांगण में
मुक्त करें स्मित विचरण ।"[7]

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ. 157
2. वही, पृ. 446
3. वही, पृ. 537
4. पौ फटने से पहले - पन्त, पृ. 4
5. वही, पृ. 38
6. वही, पृ. 83
7. गीतहंस - पन्त, पृ. 212

शारीरिक विकास के मध्य वय: संधि ऐसी स्थिति है जिसमें आत्मप्रेम की भावना का उदय होती है, अपने अहं की ओर उसके संवेग उन्मुख होते हैं । ऐसा एक दृश्य बिम्ब देखिये -

"देखी उसने वय: संधि की जीवित उपमा
दिरूपम एक किशोरी युवती सद्य: स्नाता
मेंडी पोंछती अपने नग्न निरावृत कोमल
चंपक अंगों को तन्मय हो - स्फटिक मूर्ति सी[1] ।"

इस प्रकार वर्णबोध के वैचित्र्य एवं सूक्ष्म संवेदना के परिचायक अनेक बिम्ब पन्तकाव्य में सुलभ हैं जिन पर विचार करने से यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि वर्ण मिश्रित रंग संवेदना की दृष्टि से पन्तजी का रूपहला-सुनहला, हरित-पीत, रजत नील, स्वर्ण रजत, हरित-नील रंगों के प्रति विशेष आग्रह रहा है -

"नील हरित सित रक्त पीत धूमिल पाटल तन,
नया कल्पना-लोक दृगों में खुलता छविमय[2] ।"

6·2·2·2· स्पर्श बिम्ब

जिन बिम्बों का बोध स्पर्शेन्द्रियों के माध्यम से सरलता से संभव होता है उन्हें स्पर्श बिम्ब की संज्ञा दी जाती है । इस बिम्ब से कवि की विचारधारा और दृष्टिकोण को जानने और समझने में सहायता

1· सत्यकाम - पन्त, पृ·98
2· पतझर एक भावक्रांति - पन्त, पृ·22

मिलती है । पन्त की रचनाओं में प्रयुक्त स्पर्श बिम्बों का सीधा संबंध उनकी रागात्मिका वृत्तियों से है । कवि ने कोमल अंगों केलिये मिले कमल के पुष्पों का स्पर्श संवेद्य बिम्ब प्रयुक्त किया है -

"कमल फूल से मिले अंग कोमल,
गाता प्राण शिराओं में शोणित ।
पारिजात चंदन की सी सौरभ
तन से आ मन को करती मोहित[1] ।"

शरीर के अंगों की कोमलता के वर्णन केलिये कवि ने कमल के फूलों का बिम्ब प्रयुक्त किया है ।

"मखमल ज्वाला सी भी फैली,
नीचे मरकत द्रोणी दुस्तर[2] ।"

इस उदाहरण में कवि ने "मरकत द्रोणी" केलिये "मखमल ज्वाला" के स्पर्श बिम्ब का प्रयोग किया है । मरकत द्रोणी के छूने से जैसे स्पर्श-संवेदन होता है वैसे ही मखमल के स्पर्श से भी होता है ।

"सत्यकाम" में वैदिक मिथकीय उक्ति से कवि ने उदात्त भाव योजना कर ऐसा एक स्पर्श बिम्ब खड़ा किया है -

"मुझको वीणा सी ले निज तप पूत अंक में
तापस, छेड़ो तुम स्वर्गिक रागिनी प्रेम की,
द्यावा पृथ्वी बंध जायें आनंद पाश में[3] ।"

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.481
2. वही, पृ.618
3. सत्यकाम - पन्त, पृ.109

शृंगार रसों में मनोविज्ञानवेत्ता इच्छा का योगदान अधिक मानते हैं। भारतीय दृष्टि से यद्यपि कामेच्छा का प्रस्ताव शोभनीय नहीं माना जाता तथापि भाव-सत्य की दृष्टि से पन्तजी ने इस युवती द्वारा कामेच्छापूर्ति का प्रस्ताव करवाकर मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त की रक्षा की है। द्यावा-पृथ्वी के प्रतीक इस निर्लज्ज भाव को पवित्रता प्रदान करते हैं।

6·2·2·3· <u>घ्राण बिम्ब</u>

इस वर्ग के अन्तर्गत उन बिम्बों की गणना की जाती है जिनका बोध घ्राणेन्द्रिय के द्वारा होता है। डॉ· कुमारविमल का मत है - "छायावादी कविता में घ्राणिक बिम्बों का प्रयोग कम हुआ है।[1]" घ्राण बिम्ब में गन्ध के माध्यम से अप्रस्तुत हमारी घ्राण संवेदना को एक हल्का सा आघात देकर जाग्रत कर देता है -

"अक्षय उर सौरभ में
जग को करती मज्जित !
आनंद गंध स्मित।[2]"

6·2·2·4· <u>श्रवण बिम्ब</u>

ध्वनिबिम्ब में किसी ध्वनि के माध्यम से बिम्ब खड़ा किया जाता है। ध्वनिबिम्ब श्रवण संवेद्य को हल्का सा आघात देकर जाग्रत किया

1· छायावाद का सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन - डॉ· कुमार विमल, पृ·186
2· शशि की तरी - पन्त, पृ·85

"इसके रस में आनंद भरा,
इसका सौंदर्य सदैव हरा,
पर दुःख सुख का छाया प्रकाश
परिपक्व हुआ इसका विकास
इसकी मिठास है मधुर प्रेम[1] ।"

6·2·3· मानस बिम्ब

"मानस बिम्ब में वैचारिकता की प्रधानता रहती है । ये बिम्ब वास्तव में मस्तिष्क को चिन्तन केलिये विवश से करते हैं[2] ।" इसमें भावना या विचार बिम्ब प्रधान है । यह अस्पष्ट और धूमिल होता है ।

पन्तजी के भाव-बिम्ब का एक उदाहरण ऐसा है -

"शिव-गौर आनंद कलश से
घनीभूत कोमलता के स्तन
आकर्षित करते अनजाने
खींच बहिर्मुख
मेरा रस तन्मय मन[3] ।"

यहाँ कवि ने कोमल भावनाओं के प्रयोगों का अंकन किया है । ये कोमल भावनायें कवि को ऐसे आकर्षित करती हैं जैसे आनंद के कलश । यह भाव बिम्ब है ।

1· युगान्त - पन्त, पृ·27
2· नया हिन्दी काव्य और विवेचना - डॉ·शम्भुनाथ चतुर्वेदी, पृ·362
3· गीतहंस - पन्त, पृ·78

जाता है । डॉ॰ कुमार विमल ने ध्वनि बिम्ब के विषय में कहा है - "श्रवण बिम्ब ध्वनि कल्पना से उत्थित हैं और नादसौंदर्य की प्रेषणीयता के द्वारा इच्छित प्रभाव पैदा करते हैं ।[1]"

श्रवण बिम्ब का और एक सार्थक उदाहरण है -

"वाणी, शुभ्र नितम्बमयी वीणा पर,
बरसाओ चित्पावक कण स्वर्णिम स्वर ।
मुक्त कल्पना हंस लोक मानस में,
खोले शोभा-पंख-दिगन्त अगोचर ।"[2]

लेकिन डॉ॰ नगेन्द्र ने इसे चाक्षुष अर्थात् दृश्य बिम्ब माना है - "लोकायतन में पन्त का नितम्बमयी वीणा का प्रयोग जो वीणा के चाक्षुष बिम्ब पर आधृत है, एक प्रकार का अपवाद है ।[3]"

6·2·2·5· <u>रस बिम्ब</u>

जिन बिम्बों का बोध रुचि अथवा जिह्वेन्द्रिय के द्वारा होता है उन्हें रस-बिम्बों की कोटि में परिगणित किया जाता है । इस वर्ग के बिम्ब कवि की भावनाओं को सूक्ष्म अभिव्यक्ति प्रदान करने में सफल हुए हैं । समाज के शोषक-शोषित वर्गों की स्थिति के हास विषाद की और उनके सुख-दु:खों को, क्रमश: मधुर और तिक्त गुणों से युक्त रस बिम्बों के द्वारा पन्त के काव्यों में मूर्तरूप प्रदान किया गया है -

---

1· छायावाद का सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन - डॉ॰ कुमार विमल, पृ·185
2· लोकायतन - पन्त, पृ·5
3· काव्य बिम्ब - डॉ॰ नगेन्द्र, पृ·9

6·2·4· गत्वर बिम्ब

गत्वर बिम्ब इस कोटि में आता है । इस में वस्तु की गति और उसके क्रिया-कलापों का अंकन पाया जाता है । इस के संबंध में डॉ· कुमार विमल ने कहा है - "गत्वर बिम्ब - विधान के द्वारा गतियुक्त वस्तुओं, स्थितियों अथवा दृश्यों का अंकन प्रस्तुत किया जाता है । स्थिर वस्तुओं, स्थितियों अथवा दृश्यों के अंकन की अपेक्षा यह कार्य कठिन होता है क्योंकि इसमें कवि को अप्रस्तुतों की ऐसी योजना करनी पड़ती है कि संकेतों से ही गति के गोचर प्रत्यक्षीकरण का आभास मिल सके[1] ।"

पन्तजी ने अपनी रचनाओं में गत्वर बिम्ब के अनेक प्रयोग किये हैं -

"सिर से आँचल खिसका
मृदु वेणी लहराती
जब तुम आती
छाया वीथी से
नत सिर, स्मित मुख
क्षण भर
सन्ध्या आँगन में रुक,
वातावरण बदल सा जाता
तुम्हें घेरकर
चंचल हो उठती समीर
क्वारी सौरभ पी,[2]"

1· छायावादी काव्य का सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन - कुमार विमल, पृ·186
2· किरणवीणा - पन्त, पृ·103

यहाँ कवि ने सुन्दरी के हाव, भाव और उसकी मुद्राओं का गतिमय चित्र खींचकर गत्वर बिम्ब खड़ा किया है ।

"समाकलित बिम्ब" में कवि ने जीवन की पूर्ण अनुभूति को लेकर एक पूर्ण चित्र उतारा है । जीवन की सभी अवस्थाओं का एक साथ चित्र खींचकर समाकलित बिम्ब का प्रयोग किया है ।

"क्रुद्ध रीछ सा लगता जो
अति उद्धत
काले कुत्ते-सा वह
पूँछ हिलाये पद नत !
उसे नम्र,
पालतू बनाओ,
जन संरक्षक,
क्रोध विरोधी करे भी वह
हो व्यर्थ न जग जीवन पथ बाधक
अन्धकार को निष्ठ बनाओ ।"[1]

यहाँ अनुभूति का संपूर्ण शब्दचित्र कवि ने खींचा है । निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि पन्तजी जीवन्त बिम्बों के कवि हैं, खंडित बिम्बों के नहीं । पन्तकाव्य के सभी बिम्ब मोहक लगते हैं । लोकायतन और परवर्ती काव्य बिम्ब-वैविध्य की दृष्टि से समृद्ध है । रमणीय बिम्बों की समृद्धि की दृष्टि से लोकायतन के पूर्वकाव्य अधिक महत्वपूर्ण हैं किन्तु उत्तर-पन्तकाव्य भी बिम्ब की दृष्टि से उपेक्षणीय नहीं ।

---

1. गीतहंस - पन्त, पृ.139

6·3· प्रतीक विधान

प्रतीक शब्द जितना प्राचीन है, उसका चिह्न के अर्थ में प्रयोग उतना ही नवीन है । प्रो· क्षेम ने बताया "प्रतीक का अर्थ हुआ, वह वस्तु जो अपनी मूल वस्तु में पहुँच सके अथवा वह मुख्य चिह्न जो मूल का परिचायक हो ।[1]" प्रतीक वस्तुत: अप्रस्तुत की समस्त आत्मा या धर्म या गुण का समन्वित रूप लेकर आनेवाले प्रस्तुत का नाम है । यह रूपक से भी थोडा भिन्न है । परन्तु प्रतीक तो अप्रस्तुत का प्रस्तुत रूप में अवतार ही है ।[2]"

पन्तजी ने अपने काव्य में प्रतीकों का प्रयोग किया है भावाभिव्यक्ति केलिये । प्रतीकों के प्रयोग से उन्होंने भाव-संप्रेषण की समस्या को हल करने का प्रयास किया है । धीरे-धीरे कवि में प्रौढ़ता और जीवन दर्शन की क्षमता आयी । फलत: तदनुसार, उनकी अभिव्यक्ति में भी नवीनता आयी । नवीन भावों की अभिव्यक्ति नवीन प्रकार के प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से की गयी । छायावादी कवि होने से उस काव्यकला की सभी विशेषतायें उनमें भी प्राप्त होती हैं । छायावादी काव्य का अपना अभिव्यक्ति वैशिष्ट्य था । "रूप सौंदर्य से अधिक भाव सौंदर्य को अभिव्यक्ति देने के कारण उसमें नये प्रतीकों, बिम्बों एवं अप्रस्तुत विधानों का प्राधान्य मिलता है ।[3]"

1· छायावाद के गौरव चिह्न - प्रो· क्षेम, पृ·226

2· हिन्दी कविता में युगान्तर - डा· सुधीन्द्र, पृ·266

3· छायावाद पुनर्मूल्यांकन - पन्त, पृ·101

पन्त जी के प्रतीक विधान को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर सकते हैं -

6·3·1· सांस्कृतिक और मिथकीय प्रतीक
6·3·2· ऐतिहासिक प्रतीक
6·3·3· साहित्यिक प्रतीक
6·3·4· राजनीतिक प्रतीक
6·3·5· रूढ या परम्परागत प्रतीक
6·3·6· अध्यात्म चेतना-प्रतीक

6·3·1· सांस्कृतिक और मिथकीय प्रतीक

कवि ने रामायण पर आधारित प्रतीकों की सृष्टि की है । रामायण के राम, लक्ष्मण, सीता, ऊर्मिला तथा रावण, हनुमान आदि पात्रों को कवि ने प्रतीकात्मक रूप में प्रयुक्त किया है । पन्तजी ने प्रतीकों द्वारा आधुनिक सामाजिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया है । साथ ही साथ मानवीय मूल्यों और सामाजिक आदर्शों का स्पष्टीकरण भी किया है । कवि इन अतीत संस्कृति के प्रतीकों द्वारा आधुनिक अत्याचार, अपहरण, कामुकता और भ्रष्टाचार इत्यादि को समाप्त करना चाहता है । एतदर्थ पन्त ने "शील और शक्ति के प्रतीक राम, करुणा और सद्हृदयता की प्रतीक सीता, अनन्त पौरुष बल के प्रतीक लक्ष्मण, अहं के प्रतीक रावण, प्रमाद के प्रतीक कुंभकर्ण, प्रेरणा के प्रतीक हनुमान और कटुत्व की प्रतीक कैकेयी का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है -

"अहम् वृत्ति रावण, लंका दुर्नीति गढ़,
विषय बप्र, बन्दी चिति-इन्द्रिय वन में,

मुक्त हुई तुम, मिटा अविद्या भय तम,
हनुमत् प्रेरित जगी चेतना जन में[1]।"

यहाँ कवि ने रावण को अहमवृत्ति, लंका को कुबुद्धि और हनुमान को प्रेरणा और चेतना का प्रतीक बताया है ।

लोकायतन की सीता मिथकीय प्रतीकों के अवतरण का स्पष्ट उदाहरण है । सीता धरती से उत्पन्न होती है इसलिये जड से विकसित चेतन की प्रतीक है । इतना ही नहीं वह एक ऐसी शक्तिस्वरूपिणी हो जो अविकसित मानव को विकास की ओर प्रेरित करती रहती है इसलिये वह चेतना पृथ्वी पर समाहित हो जाती है । इस प्रकार सीता की प्रतीकात्मक अर्थवत्ता को पन्त जी ने धरती माता के द्वारा और भी स्पष्ट किया है -

"प्रीति ज्योति तुम मेरे उर की अकलुष
सत्य शिखा अंतरतम, स्वयं प्रकाशित,
बाट जोहती धरती के धीरज से -
श्री, समग्रता में हो जग में स्थापित[2]।"

लोकायतन में और एक प्रसंग पर भी कवि ने सीता को नवीनयुग चेतना का प्रतीक माना है । कवि का अभिप्राय है कि सीता की भाँति नवीन युगचेतना के प्रसार में अनेक कठिनाइयाँ हैं, अनेक बाधायें हैं । अग्निपरीक्षा संकट समय का प्रतीक है । सीता की भाँति गाँधीजी को भी जीवन पर्यन्त अनेक अग्नि परीक्षायें देनी पड़ीं -

---

1· लोकायतन - पन्त, पृ·16
2· वही, पृ·27-28

"हृदय वीर पृथ्वी की युग सीता
अग्निपरीक्षा देते चिर नूतन
धरती ही धरती पर पावक पग
चित् शोणित की ज्वाला सी पावन[1] ।"

6·3·2· ऐतिहासिक प्रतीक

उनके काव्य में प्रयुक्त कतिपय ऐतिहासिक प्रतीक विभिन्न विचारधाराओं की सांकेतिक अभिव्यक्ति करते हैं । कवि ने हिंसा, लूटमार अनाचार, रक्तपात और बर्बरता की सांकेतिक अभिव्यक्ति जैसे गजनी, गोरी नादिरशाह आदि ऐतिहासिक पात्रों के प्रतीकों के द्वारा कराई है -

"गजनी गोरी नादिर-से
भेड़िये निरीह जनों पर
टूटे, लूटे स्त्री सुत घर,
जन नगर किये वन खंडहर[2] ।"

वे ईसा और गौतम को परोपकार, प्रेम और अहिंसा की मनोवृत्तियों के प्रतीक मानते हैं ।

6·3·3· साहित्यिक प्रतीक

साहित्यिक प्रतीक के प्रयोग के प्रति पन्तजी अधिक सतर्क नहीं रहे इसलिये उनकी रचानाओं में साहित्यिक प्रतीकोंका अभाव है ।

1· लोकायतन - पन्त, पृ·574

2· वही, पृ·150

लोकायतन में ऐसा एक प्रसंग आया है -

"देव मनुज पशु का नव रूपान्तर कर
आप व्यास बन गायें जन युग का जय,
नव युग के वाल्मीकि निकल बाँबी से,
गढ़ें छन्द में चिन्मूल्यों का आशय ।"[1]

यहाँ प्रयुक्त व्यास और वाल्मीकि दोनों ही साहित्यिक प्रतीक हैं । व्यास नये साहित्य स्रष्टा का, वाल्मीकि गाँधी का और बाँबी अवचेतना और अचेतन स्थिति का प्रतीक है ।

6.3.4. राजनीतिक प्रतीक

पन्त ने राजनीतिक प्रतीकों के प्रयोग भी किये हैं । राजनीतिक हलचलों और गतिविधियों की सांकेतिक अभिव्यक्ति कराई है । इन प्रतीकों द्वारा पन्त के काव्य की राजनीतिक सचेतना पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । राजनीतिक प्रतीकों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

"भू जीवन लावण्य-सिन्धु यह,
लोक लवण रस से संपोषित,
लवण प्रतीक स्वराज्य मुक्ति का,
लवण सिन्धु अंचल में संचित ।"[2]

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.22
2. वही, पृ.82

यहाँ "लवण सिन्धु" राजनीति से गृहीत प्रतीक है । यह स्वाधीन भारतीय जन मानस की आकांक्षाओं का प्रतीक है । लोकायतन का "सुन्दरपुर" गाँव को कवि ने भारत का प्रतीक माना है । "सुन्दरपुर" भारत का प्रतीक है क्योंकि पन्त मानते हैं कि वैज्ञानिक ज्ञान तब तक अपूर्ण और अकल्याणकारी है जब तक उसका आध्यात्मिक शलाका मार्ग-दर्शन नहीं करती है ।[1]"

6·3·5· रूढ या परम्परागत प्रतीक

युग-युग से लगातार एक ही अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण कुछ प्रतीक रूढ हो गये हैं । युगों से एकही अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण परम्परागत प्रतीकों की भावनाशक्ति में कोई अन्तर नहीं आया । अमृत, चातक, घन, पियूष, विष और हंस आदि ऐसे ही कुछ परम्परागत और रूढ प्रतीक हैं जो युगों-युगों से एक ही अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण रूढ हो गये हैं । इन प्रतीकों में सजीवता और प्रभावोत्पादकता प्रचुर मात्रा में होती है और इसी कारण वे एक ही अर्थ में सीमित हो गये हैं -

मोती	ओस बिन्दुओं का रूढ और परम्परागत प्रतीक है ।
मिलिन्द	प्रेमी
आहत भ्रमर	प्रेमी
दो पक्षी	मानव का रूढ प्रतीक है ।
पिक	मिलन भावना
पपीहा	विरह भावना

1· सुमित्रानंदन पन्त जीवन और साहित्य, शांति जोशी - द्वितीय खण्ड, पृ·575

6.3.6. <u>अध्यात्म चेतना के प्रतीक</u>

"परवर्ती रचनाओं में आकर वह एक चिन्तक और दार्शनिक बन गया, अतः इस काल के प्रतीकों में चिन्तन का प्रभाव है । कहीं उनपर वैदिक साहित्य की छाप है, तो कहीं अरविंद के दिव्य जीवन की[1] ।" अरविंद दर्शन से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं । उन्होंने "स्वर्ण" शब्द का प्रयोग अत्यधिक किया है । "स्वर्ण" शब्द को शुभ्र चेतना का प्रतीक माना है

"समाधिस्थ बैठा युग
ज्वालामुखी शिखर पर !
दुर्निवार कुछ रुका हुआ
प्रतिपल के पीछे[2] ।"

यहाँ "ज्वाला मुखी शिखर" क्रांति और युगपरिवर्तन की चरम-सीमा का प्रतीक है ।

"गाता मैं अनुराग राग
अंतः प्रहर्ष के
स्वर - भर तन्मय, -
खो जाता निःसीम नील में
अमित प्रेम के
सागर-अनुभव में लय[3] ।"

---

1. आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीक विधान - डॉ. नित्यानंद शर्मा, पृ.30
2. किरणवीणा - पन्त, पृ.162
3. गीतहंस - पन्त, पृ.14

पन्तजी ने यहाँ हृदय की गहराई केलिये "नि:सीम नील" के प्रतीक का प्रयोग किया है ।

"अशुभ छँटे,
शुभ का करना पड़ता संवर्धन,
तम से लड़
कटता न तमस-क्षण !
उसे मिटाती
ज्योति किरण
छू तत्क्षण ।"[1]

"ज्योति-किरण" अध्यात्मचेतना और "तमस्" अधोचेतना का प्रतीक है ।

"उतर रही उषायें भू पर
जन मन तम को कर आलोकित,
स्वर्ण रश्मि स्वातंत्र्य सूर्य जग
जन भू छोर करे दिग् प्लावित[2] ।"

"उषायें" और "स्वर्णरश्मि" क्रमशः आशा, प्रफुल्लता और अध्यात्म चेतना के प्रतीक हैं ।

1· गीतहंस - पन्त, पृ·18
2· लोकायतन - पन्त, पृ·113

"अन्तर्मन के स्वर्णनील में उड
मनोभावना मधुपिक सी गाती,
रजत अनिल कर साँसों से सुरभित,
इच्छायें रम तन्मय हो जातीं[1]।"

"स्वर्णनील" आध्यात्मिक ज्योतिसंपन्न अंतश्चेतना का प्रतीक है। "रजत अनिल" नवीन आध्यात्मिक संचेतना के शुभागमन का प्रतीक

"किस तडित स्पर्श से जाने कब
खुल पडता उर का वातायन,
सौ सौ सुषमा के शुभ्र शरद
हँस उठते अंतर में पावन[2]।"

यहाँ "तडित स्पर्श" दिव्य चेतना के अनुभव का प्रतीक है।

"हमको अदृश्य पावक से
गढनी भू प्रतिमा जीवित,
जड धरा योनि हो स्वर्णिम,
अध्यात्म रश्मि से गर्भित[3]।"

यहाँ "अदृश्य पावक" मानव हृदय में अन्तर्निहित शुद्ध सात्विक शक्ति अर्थात् अध्यात्म चेतना का प्रतीक है।

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.453
2. किरणवीणा - पन्त, पृ.20
3. लोकायतन - पन्त, पृ.183

"आओ विद्युत पायल झंकृत कर जाओ,
शोभा की चंपक ज्वाला में लिपटाओ[1] ।"

"विद्युत पायल" आध्यात्मिक ज्योति संपन्न चेतना का प्रकृति प्रतीत है ।

"यह दीप सूर्य
अब हृदय ज्योति"[2] ।

"दीपसूर्य" ज्योतिर्मय आत्मा का प्रतीक है ।

"जीर्ण युग पतझर वन से झांक
गूंजते रजत स्वर्ण मणि मौर,
मरंदो की पी सौरभ सांस,
स्वर्ण मधु हित आकुल जन भौंर[3] ।"

"रजत स्वर्ण मणि मौर" नवीन आध्यात्मिक सचेतना प्रधान संगीत का प्रतीक है । "स्वर्णमधु" अलौकिक आनंद का प्रतीक है ।

"ज्योतिलय में उठता तम कांप,
नाचता बाहर कढ चुपचाप,
अचेतन कीबांबी का सांप ।
और

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.223
2. किरणवीणा - पन्त, पृ.36
3. लोकायतन - पन्त, पृ.185

चित शिखर की किरणों से
आलोकित करना भू मन ।"[1]

यहाँ "ज्योतिलय" आध्यात्मिक प्रकाश का, "तम" भौतिकवादी अज्ञान का "चितशिखर" ऊर्ध्वचेतना के धरातल का प्रतीक हैं ।

"हिल न पंक में सका ऊर्ध्व-सरसिज,
उलझ गये निशि अलकों में शशि कर ।"[2]

यहाँ "पंक" अवचेतन का, "ऊर्ध्व सरसिज" दिव्य चेतना का "निशि अलक" अवचेतन के तम का और "शशिकर" दिव्यकिरणों का प्रतीक है ।

"पौ फटने से पहले" काव्य में कवि ईश्वर से प्रार्थना करता है कि इस दुनिया में भौतिक आत्मिक उन्नति प्रदान करें -

"स्वर्ण-भृंग सा गूंज
शुभ्र एकांत हृदय में
अंतर को कर लीन
लोक हित मधु-संचय में -
लाद गया अह, निबल पीठ पर
भू जीवन दु:ख-
विष ज्वाला पी
बरसाते उर-मेघ अमृत सुख ।"[3]

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.295
2. वही, पृ.435
3. पौ फटने से पहले - पन्त, पृ.132

"स्वर्ण-भृंग" और "उर-मेघ" आदि प्रतीकों के माध्यम से कवि ने स्वर्ण-भृंग बनकर दुःख रूपी विषज्वाला को पीकर हृदय को अत्यधिक आनंद प्रदान करने की आशा की है ।

इस प्रकार कल्पना के माध्यम से सृष्टि के नाना क्रिया-कलापों से, विशेषकर प्रकृति से अपने प्रतीक चुने हैं और उन्हीं के द्वारा अपनी विचारधारा को प्रकट किया है । कुछ प्रतीक निम्न प्रकार के हैं । इनका प्रयोग बार-बार भिन्नार्थों में किया गया है - "केंचुल", जीर्ण और मृत सिद्धान्तों, मतों और स्थितियों का, "शिखर" ऊर्ध्वचेतना के धरातल का, पतझड़"-परम्परागत मृतप्राय रूढ़ियों का आदि । रंगों का प्रतीकात्मक प्रयोग भी पन्त-काव्य की एक विशेषता है । "लोकायतन" में श्वेत, हरित, नील और अरुण आदि रंगों का प्रयोग दार्शनिक बातों के स्पष्टीकरण केलिये इधर उधर हुआ है ।

इस प्रकार निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि पन्त की प्रतीक-योजना में एकरसता न होकर वैविध्य है । उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों से अपने प्रतीकों को चुना है । उनकी रचनाओं में अतीत संस्कृति से गृहीत प्रतीकों के प्रयोग खूब हुए हैं । इन मिथकीय प्रतीकों के अन्तर्गत हम रामायण युगीन और महाभारत युगीन प्रतीकों को रख सकते हैं । पन्त में ऐतिहासिक, साहित्यिक और राजनीतिक प्रतीकों के प्रयोग की प्रवृत्ति भी दृष्टिगोचर होती है । उन्होंने रूढ परम्परागत प्रतीकों के साथ ही साथ अध्यात्मचेतना अथवा ऊर्ध्वचेतना के प्रतीकों के प्रयोग प्रचुर मात्रा में किये हैं । इस कोटि के प्रतीकों के प्रयोग पन्त ने इसलिए किये हैं कि उनके परवर्ती काव्य पर अरविंद दर्शन का प्रचुर प्रभाव है ।

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.243

6.4. अप्रस्तुत - विधान

पन्तजी ने अलंकार का प्रयोग रस-सिद्धि के साधन के रूप में किया है। उन्होंने अलंकार को काव्य का आवश्यक तत्व स्वीकार नहीं किया। लेकिन उन्होंने अलंकार की उपेक्षा भी नहीं की। अलंकार को पन्तजी ने सौंदर्य और चमत्कार का पर्याय माना है। उनका कथन है कि "जब कविता को स्वयं ही सुन्दर है तब उसे अलंकार की आवश्यकता माना गया

"तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार।
वाणी मेरी, चाहिये तुम्हें क्या अलंकार[1]।"

पन्त ने अलंकारों को भावाभिव्यक्ति का विशेष द्वार कहा है। उन्होंने अलंकार और भाषा के संबंध को अनिवार्य और आवश्यक माना है। "पल्लव" की भूमिका में उन्होंने अलंकार के विषय में कहा है - "अलंकार केवल वाणी की सजावट केलिये ही नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के भी विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि केलिये, राग की पूर्णता केलिये आवश्यक उपादान हैं, वे वाणी के आचार, व्यवहार एवं रीति, नीति हैं, पृथक् स्थितियों के पृथक् स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं - वे वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न, पुलक, हाव-भाव हैं[2]।" अतः स्पष्ट है कि कवि ने अलंकारों को साधन माना है, साध्य नहीं। पन्तजी ने मुख्य रूप से सादृश्य मूलक अलंकारों का प्रयोग किया है। उनकी अलंकार-योजना को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं -

---

1. ग्राम्या - पन्त, पृ. 103
2. पल्लव - पन्त, पृ. 32

6·4·1· परम्परागत अलंकार

6·4·2· पाश्चात्य अलंकार

6·4·1· परम्परागत अलंकार

इसमें अनुप्रास अलंकार है -

"मुग्धा वय के मधु मारुत
स्पर्शों से कंपित थर थर[1] ।"
xx xx xx
कोमल मृणाल की बाहें,
उत्फुल्ल कमल मुख मंडल[2] ।"

6·4·1·1· मालोपमा

एक उपमेय केलिये विभिन्न उपमानों का प्रयोग होने पर मालोपमा अलंकार होता है -

"पंखुड़ियों - से नयन,
प्रवालों से अरुणाधर,
मृदु मरन्द से मांसल स्तन
बाहें लतिका से सुन्दर[3] ।"

1· लोकायतन - पन्त, पृ·194

2· वही, पृ·195

3· गीतहंस - पन्त, पृ·68

6·4·1·2· उपमान

"सहज खिला होगा
लावण्य लता सा
प्रियतन ।"[1]

"प्रियतन" मूर्त प्रस्तुत केलिये "लावण्यलता" अमूर्त अप्रस्तुत का प्रयोगकर कवि ने अपनी सूझ-बूझ का परिचय दिया है ।

"स्पर्श शुभ्र !
अनिमेष कमल-से
खिले हृदय के भाव बोध दल
लुब्ध भ्रमर सी गूँजा करती
मधुर प्रीति स्मृति
घेरे प्रतिपल ।"[2]

और सूखा ठूंठ-सा भंगुर जीवन,
अस्थिशेष
ज्यों पतझर का बन ।"[3]

यहाँ प्रथम उदाहरण में "हृदय-भाव" अमूर्त उपमेय केलिये मूर्त "कमल" का उपमान, "स्मृति" उपमेय केलिये "भ्रमर" मूर्त अप्रस्तुत का प्रयोग हुआ है । दूसरे उदाहरण में "जीवन" अमूर्त केलिये "ठूंठ" मूर्त उपमान का सुन्दर प्रयोग हुआ है ।

1· गीतहंस - पन्त, पृ·44
2· वही, पृ·58
3· वही, पृ·80

"रुई में लिपटे पावक-सा,
दाहक तरुणी का क्वाँरापन ।"[1]

यहाँ "क्वाँरापन" अमूर्त उपमेय केलिये पावक मूर्त उपमान का प्रयोग हुआ है ।

पन्तजी ने मिथकीय उपमानों का प्रयोग भी किया है -

"ऋषि अगस्त्य सा लवण सिन्धु को,
पी हँस हँस अंजलि-पुट में भर ।"[2]

यहाँ महात्मा गाँधी केलिये कवि ने अगस्त्य के मिथकीय उपमान का प्रयोग कर गाँधीजी के चरित्र में उत्कर्ष दिखाया है ।

6.4.1.3. <u>उत्प्रेक्षा</u>

जब उपमेय की उत्कृष्टता का निरूपण करने केलिये उसकी उपमान के रूप में परिकल्पना होती है तब उत्प्रेक्षा अलंकार होता है ।

"जगा हो जन समुद्र में ज्वार,
डूबा युग-भूतट उमडी क्रांति,
प्रलय मेघों से जब युग ज्योति
धरा पर उतरी-समता, शांति ।"[3]

यहाँ पर कवि ने उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग किया है ।

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.76
2. वही, पृ.82
3. वही, पृ.399

6·4·1·4· काव्यलिंग

जहाँ समान अर्थवाले किसी कथन के अर्थ का किसी कारण के द्वारा समर्थन होता है वहाँ पर काव्यलिंग अलंकार होता है -

"जन-भू विकास-पथ में चिर,-
अनगढ़ अतीत छाया भर,
भावी अंचल में रक्षित
जीवन का स्वर्ग मनोहर !
तुम चाहो, गत दृष्टा-से,
हो सकते चिद् नभ में लय,
सब मानो, मानवता की
वह भू पर हार पराजय !"[1]

रेखांकित अंश केलिये ऊपर सभी हेतु हैं । अत: काव्यलिंग अलंकार है ।

6·4·1·5· निदर्शना

जहाँ दृष्टान्त सा प्रस्तुत किया जाय वहाँ निदर्शना अलंकार होता है -

---

1· लोकायतन - पन्त, पृ·209

"अमलतास के स्वर्णिम मुकुटों से
हरित वनानी लगती आभूषित,
रंग स्पर्श से नव मधु पावक के
भू - यौवन हो उठता रस पुलकित !
दृष्टि अंध करती पुष्पों की रज,
मदिर गंध से मलय अलक गुंफित,
त्वच-रंग किसलय से दिशि-अंग मांसल
कुंतल-घन छाया करती मोहित[1]।"

यहाँ क्रमशः दो दो पंक्तियों में चार उपमेय तथा उपमान परस्पर बिम्ब-प्रतिबिम्ब प्रदर्शित करते हैं। अतः यहाँ निदर्शना अलंकार है।

6·4·1·6· दृष्टान्त

इस अलंकार के माध्यम से कवि ने नारी मुक्ति की प्रक्रिया का वर्णन किया है -

"पुष्पवृन्त से युक्त, मुक्त रहता ज्यों प्रतिक्षण,
हृदय सुरभि से भरता वह अंचल समीर का !
स्त्री भी बंधी रहे अपने गृह से, प्रियजन से,
भाव सुरभि वह वितरित करती रहे विश्व में
हृदय गंध रज, मुक्त प्रीति मधु बाँटे जन में !
मुक्त करो स्त्री का उर, मुक्त करो उर स्त्री का,
वह पद नत दृग नर की छाया सी, नहीं रहे[2]।"

1· लोकायतन - पन्त, पृ·455,456

2· सत्यकाम - पन्त, पृ·91,92

6·4·1·7· अपह्नुति

"सत्यकाम" में इस अलंकार के माध्यम से तारुण्य की विकास दशा में एक किशोरी के कल्पना-तरंगों में खो जाने का चित्र खींचा है। उसका रूप, रस, बोध बहिरंग संसार में तरंगित होता है। उसकी चेतना इन्द्रिय बोध के स्तर पर संश्लिष्ट स्वर में कार्य करती है -

"छुओ मेरा करतल, निर्मल सरसी जल यह,
ये अँगुलियाँ चंचल लहरें, पकड़ो इनको।"[1]
xx xx xx
भाव पाश में भर लो मुझको लता कुंज यह
लिपटाये जैसे कोमल तनु व्रतति प्रतति को!"[2]

इसमें "सरसी जल" और तरंग के उपमानों से लता और कुंज की सघनता से, सघन मिलन का भाव व्यंग्य सिद्ध होता है। यहाँ वाच्यार्थ "छुओ मेरा करतल, अँगुलियाँ अथवा पाश में भर लो" तीव्र और स्पष्ट है। "लो" अव्यय सहज समर्पण का व्यंजक है। इस प्रकार यहाँ व्यंजक शब्दों की प्रयुक्ति कला से गुणवत्ता उत्पन्न हुई है।

6·4·2· पाश्चात्य अलंकार

पन्तजी पर आंग्ल कवियों में वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स तथा टेनिसन का प्रभाव है। उनकी लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में मानवीकरण विशेषण विपर्यय आदि अलंकार है।

1· सत्यकाम - पन्त, पृ·109

2· वही, पृ·111

6·4·2·1· मानवीकरण

मानवीकरण के प्रयोग से क्रिया के अर्थ में विस्तार होता है ।

"रश्मि करों से छू उर के तारों को
पद्म पद्म पर कर तंद्रिल अलि मुखरित ।"[1]

यहाँ "रश्मि करों से छूकर" मानवीकरण है । "चेतना" का मानवीकरण देखिये -

चेतने, ज्योतित,
चित्रकूट से नीचे धरा कुहर में
उतर, अचेतन तिमिर जहाँ चिर निद्रित !"[2]

"वायु" का मानवीकरण ऐसा दिखाया है -

"कोमल रोमिल वायु रेशमी हिम-स्पर्शों से
प्राण शक्ति के पावक को करती उद्दीपित !"[3]

उषा का मानवीकरण -

"देखा उसने, वधू उषा झीने तमिस्र का
अवगुंठन अब उठ रही अर्धस्मित मुख से ।"[4]
xx xx xx

1· लोकायतन - पन्त, पृ·7

2· वही, पृ·7

3· सत्यकाम - पन्त, पृ·24

4· वही, पृ·71

"छन्द-विधान, शास्त्रकारों द्वारा कविता पर कोई निष्प्रयोजन आरोपण नहीं है, वह कविता की आत्मा में मार्मिक अभिनिवेश के परिणाम स्वरूप उपलब्ध संरचना का विधान है । तभी तो कवियों को छंदआत्मसंभूत अभिव्यक्ति का मुख प्रतीत होते रहे हैं।[1]"

पन्तजी ने अपने काव्य-सौंदर्य और शिल्प के संवर्धन केलिये छन्दों का प्रयोग किया है । उनकी अधिकांश रचनाओं में मात्रिक छंदों का प्रयोग हुआ है । "कला और बूढा चाँद" काव्य संग्रह में पन्त ने छन्द बन्धनों के विरुद्ध विद्रोह किया । यहीं से उन्होंने मुक्त छन्द और अनुकान्त छन्द के क्षेत्र में पदार्पण किया । मात्रिक छन्दों के विषय में पन्त का अपना कथन इस प्रकार है - "हिन्दी का संगीत केवल मात्रिक छन्दों में ही अपने स्वाभाविक तथा स्वास्थ्य की संपूर्णता प्राप्त कर सकता है, उन्हीं के द्वारा उसके सौंदर्य की रक्षा की जा सकती है । वर्णवृत्तों की नहरों में उसकी धारा अपना चंचल नृत्य, अपनी नैसर्गिक मुखरता, कल्-कल् छल् छल् तथा अपने क्रीडा, कौतुक, कटाक्ष एक साथ ही खो बैठती है हिन्दी का संगीत ही ऐसा है कि उसके सुकुमार पद-क्षेप केलिये वर्णवृत्त पुराने फैशन के चाँदी के कडों की भाँति बडे भारी हो जाते हैं, उसकी गति शिथिल तथा विकृत हो जाती, उसके पदों में वह स्वाभाविक नूपुर-ध्वनि नहीं रहती है।[2]"

पन्त के कथनानुसार हिन्दी का संगीत केवल मात्रिक छंद ही में अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की संपूर्णता प्राप्त कर सकता है।[3]

---

1. कविता की तीसरी आँख - प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ.43
2. शिल्प और दर्शन - पन्त, पृ.18
3. पल्लव - पन्त, पृ.35

उन्होंने मात्रिक छंदों में मंदगामी, क्षिप्रगामी और मध्यगामी आदि विभिन्न प्रकार के चरणों का प्रयोग करके राग और संगीत की रक्षा की है ।

पन्तजी ने अपने काव्य में मात्रिक छन्दों में अहीर, पद्धरि, अरिल्ल, डिल्ला छन्द, तरल नयन, योग, मुक्ता, कोकिला, हीर, रोला, सखी, सुलक्षणा आदि का प्रयोग किया है ।

6·5·1· अहीर

इस छन्द का प्रयोग पन्तने प्रचुर मात्रा में किया है ।

"खोलो बुद्धि कपाट
झरती ज्योतिधार,
जग विकास क्षेत्र
निराकार साकार ।[1]"

प्रथम चरण में दो चौकल और एक त्रिकल, दूसरे चरण में दो चौकल और त्रिकल, तीसरे चरण में एक द्विकल, एक चौकल और पंचक चौथे चरण में एक छक्कल और एक पंचक से बना यह 11 मात्राओं का छन्द है ।

1· लोकायतन - पन्त, पृ·427

6·5·2· पद्धरि

"राजद्रोह अब धर्म हमारा,
भू अभिशाप विदेशी शासन,
वह भौतिक, नैतिक, आध्यात्मिक
महानाश का दारुण कारण।"[1]

यह 16 मात्राओं का "पद्धरि" छन्द है। इस छन्द के अन्त में लघु का प्रयोग होना चाहिये। परन्तु पन्तजी ने इस में स्वच्छन्दता बरती है। इस नियम का प्रयोग हुआ भी है और नहीं भी।

6·5·3· अरिल्ल

"विजय हुई भारत आत्मा की
खण्डित नहीं हुआ जन भू मन
शान्तिनिकेतन के ऋषि आये,
वृत का करवाने उद्यापन।"[2]

चरण, मात्रा व अन्य लक्षण "पद्धरि" के समान होने से यह "अरिल्ल" छन्द है। अरिल्ल छन्द के अन्त में गुरु और लघु दोनों ही का विधान होता है। अरिल्ल छन्द के विषय में पन्तजी ने कहा है -

---

1· लोकायतन - पन्त, पृ·93
2· वही, पृ·97

सोलह मात्रा का अरिल्ल छन्द भी निर्झरिणी की तरह कल्-कल् छल्-छल् करता हुआ बहता है। अरिल्ल भी बाल-कल्पना के पंखों में खूब उड़ता है[1]।

6·5·4· डिल्ला छन्द

"युग-युग का पशु-बल संघर्षण
शुभ-स्पर्श पा जिसका संस्कृत
सहज हो उठे अंत: शासित,
मानवीय महिमा से मंडित[2]।"

यह 16 मात्राओं का समप्रवाही छन्द है। डिल्ला के अंत में गुरु लघु का नियम है। पन्त ने इस परम्परागत नियम का पालन नहीं किया।

6·5·5· तरल नयन

"बांसों के वन सा जलता युग मन,
अणु विस्फोटों का निदाघ भीषण
वहाँ खोजता शाश्वत सुख तन्मय
बंधूक पुष्पों - से आशा के क्षण[3]।"

यह 18 मात्राओं का छन्द है।

1· पल्लव - पन्त, पृ·43-44

2· लोकायतन - पन्त, पृ·113

3· वही, पृ·428

6·5·6· योग

"वाणी, शुभ्र निर्बिम्बमयी वीणा पर
बरसाओ चित्पावक कण स्वर्णिम स्वर।
मुक्त कल्पना हंस लोक मानस में
खोले-शोभा-पंख-दिगंत अगोचर।"[1]

यह बीस मात्राओं का "योग" छन्द है। इसकी 20 मात्रायें समप्रवाही होती हैं। कहीं आठ पर यति अन्यथा बिना यति के चरण भी होते हैं।

6·5·7· सुगंदा

इसमें पन्तजी ने परम्परागत नियमों की अवहेलना की है। यह 22 मात्राओं का सन्निकर्ष सुगंदा छन्द है -

"आत्मिक स्तर पर कर एकांगी प्रभु दर्शन
तुम बना न पाई भू को शोभत प्रांगण।
प्रस्तर में कर चिन्मय को प्राण प्रतिष्ठित
मति देख न पाई मानव ईश्वरजीवित!"[2]

1· लोकायतन - पन्त, पृ·5
2· वही, पृ·226

6·5·8· कोकिला

"रे उसे जानना सत्य ज्ञान का अर्जन,
उसको न जानना महानाश का कारण !
भूतों में स्वर्णिम ऐक्य बोध कर अर्जित
जड़ भू पर शाश्वत जीवन करना निर्मित ।"[1]

यह 22 मात्राओं का छंद है । इसमें 16 मात्राओं पर यति होती है ।

6·5·9· हीर

यह छन्द कोमल भावों की अभिव्यक्ति केलिये उपयुक्त है -

"उफनाता उद्वेलित दुर्गम जीवन सागर
पदनत जिनके सम्मुख लगता रहा निरन्तर -
पर्वत-सा संकल्प लोक तृण तरणी पर धर
पार कर गये जो अकूल भव जलनिधि दुस्तर ।[2]

इसमें 23 मात्रायें हैं ।

1· लोकायतन - पन्त, पृ·238
2· गीतहंस - पन्त, पृ·241

6.5.10. रोला

24 मात्राओं के छन्दों में रोला एक मुख्य छन्द है। यह छन्द पन्त को विशेष प्रिय है। गद्यपथ में उन्होंने रोला के विषय में लिखा है - "हिन्दी में रोला छन्द अन्त्यानुप्रासहीन कविता के लिये विशेष उपयुक्त जान पड़ता है, उसकी साँसों में प्रशस्त जीवन तथा स्पन्दन मिलता है। उसके तुरही के समान स्वर से निर्जीव शब्द भी फड़क उठते हैं। ऐसा जान पड़ता है, उसके राजपथ में मेल लगा हो, प्रत्येक शब्द "प्रताल शोभा इन पादपानां" तरह तरह के संकेत तथा चेष्टायें करता है, हिलता डुलता आगे बढ़ता है[1]। इसके आगे "पल्लव" में पन्त ने लिखा है - "रोला जहाँ बरसाती नाले की तरह अपने पथ की रुकावटों को लाँघता तथा कलनाद करता हुआ आगे बढ़ता है[2]।"

"तुम बसंत में लिपटी होगी शरद सौम्य स्मित
भेद यही, मुख चन्द्र सलज होगा अकलंकित!
सहज प्रेम बाँटो, बन प्राण जलधि में तरणी,
मोह मुक्त हों राम, प्रेयसी तुम, जग जननी[3]!

रोला के अन्त में लघु-लघु और गुरु दोनों ही होते हैं। इसमें 14 मात्राओं पर यति होती है।

---

1. पल्लव - पन्त, पृ.42-43
2. वही, पृ.43
3. किरणवीणा - पन्त, पृ.93

"प्रार्थना, दान, तीर्थाटन
उपवास नियम व्रत साधन,
दोनों ही धर्मों में था
नैतिक जीवन मूल्यांकन ।"[1]

यह सखी छन्द है । प्रत्येक चरण में 14 मात्रायें हैं किन्तु इस उदाहरण में चारों चरणों का अन्त्यानुक्रम समान नहीं है । प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ चरणों का अन्त्यानुक्रम समान है किन्तु तृतीय चरण का अन्त्यानुक्रम तीन चरणों से भिन्न है । अतः यहाँ त्रिसम सखी छन्द का प्रयोग हुआ है । पन्तजी को सखी छन्द के प्रत्येक चरण में अन्त्यानुप्रास अच्छा नहीं लगता, दूर-दूर तुक रखने से अधिक करुण हो जाता है और अन्त में भगण अथवा जगण रखने से इसकी लय में स्वर-भंग आ जाता है, जो करुण रस के संचार में सहायता देता है ।

"कचनार कली रंग भीनी, उमगी निर्दल डालों पर
कहती वंशी विस्मित उर, यह कौन श्वसित मधुर पतझर ।"[2]

यह 14 मात्राओं के "कोकिला" छन्द का त्रिसम रूप है । इसमें अन्तिम तीन चरणों का अन्त्यानुक्रम एक समान है ।

"ज्योत्सना सा श्रम स्वर्णांचल
लिपटा मृदु देह लता पर -
फूलों के शिखरों से हो
झरता मरंद रस निर्झर ।"[3]

1· लोकायतन - पन्त, पृ·428

2· वही, पृ·187

3· वही, पृ·205

यहाँ 14 मात्राओं का त्रिसम "सुलक्षणा" छन्द है । यह सप्तक की दो आवृत्तियों के योग से बना छन्द है । इसकी सातवीं और चौदहवीं मात्रायें प्राय: लघु होती हैं ।

6·5·12· मिश्र छन्द

मिश्र छन्द में किन्हीं दो छन्दों के चरणों का सम्मिश्रण होता है । मिश्र छन्द में पूर्ववत ही चरणों की आवृत्ति भी होती है । यह छन्द प्राय: चार चरण के योग से बनता है परन्तु आवश्यकतानुसार चरण चार से भी अधिक हो सकते हैं । चरणों की संख्या कवि स्वयं निश्चित करता है -

"तुम्हीं अचेतन जड में, देवि, निर्वर्तित,
प्राणों में प्रहसित, मानस में दीपित,
हृदय कमल में स्थित, आत्मा में केन्द्रित,
युग-युग में चैतन्य ज्योति में विकम्पित ।"[1]

यहाँ प्रणय और पीयूषवर्षी छन्द का मिश्रण करके मिश्र या संयुक्त छंद का निर्माण कवि ने किया है ।

6·5·13· नवीन छन्द

विकर्ष का साधारण अर्थ है क्रमायोजन । इस वर्ग के छन्द के सम विकर्ष और विषम विकर्ष दो भेद होते हैं । नव विकर्षाधार वर्ग के छन्द मुक्त छन्दों से इस अर्थ में भिन्न होते हैं कि इस वर्ग के छन्दों के चरणों और परिसंख्यान को अनिश्चित क्रम से स्थान नहीं दिया जाता जैसा कि मुक्त छन्द में होता है ।

1· लोकायतन - पन्त, पृ· 18

शृंगार छंद की लय पर 16,12 मात्राओं के योग मे एक नवीन मात्रिक छन्द का प्रयोग किया है । इसे "नंदन छंद" कहा गया है ।[1]" इसका विषम चरण शृंगार का है, समचरण शृंगार के अन्तिम जगण को घटाकर 12 मात्राओं मे बनता है । इन दोनों चरणों की लय का आधार एक ही है, अत: दोनों का संयोग अनुकूल है । इस छंद में उल्लास, हर्ष और शुभाशंसा की व्यंजना अधिक होती है, अत: संभोग शृंगार और प्रकृति-वर्णन के अनुकूल हैं । इसके आविष्कारक एवं प्रयोक्ता पन्तजी ही है ।

"ऊषा लाज लोहित मुर बाला सी
मोहित मानस क्षितिजों पर आती,
षड ऋतुओं की धूप छाँह ओढे
मधु अनन्त यौवन धारा भाती ।[2]"

यह 18 मात्राओं का समद्विपदी में एक नवीन छंद है ।

6·5·14· विदेशी छंद

पन्तजी ने मुक्तछन्द में अतुकान्त काव्य-रचनायें की हैं । उन्होंने मुक्तछन्द के अतुकान्त प्रयोग "कला और बूढा चाँद" शीर्षक काव्य संग्रह में किये हैं । इस काव्य संग्रह की अधिकांश कवितायें मुक्त छन्द में है ।[3] मुक्तछन्द में पन्त अमेरिका के प्रसिद्ध कवि वाल्ट विह्टमेन से प्रभावित हुए है उन्होंने छन्द-विधान में कुछ और परिवर्तन भी किये । उन्होंने पंक्तियों को छोटा-बडा करके कविता की सुन्दर आकृतियाँ बनायीं । इसमें संभवत: वे एडिथ सिटवेल से प्रभावित हुए हैं[4] ।"

---

1 आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना - डॉ·पुत्तूलालशुक्ल,पृ·301
2· लोकायतन - पन्त, पृ·428
3· हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव - डॉ·रवीन्द्रसहाय वर्मा,पृ·214
4· हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव - डॉ·रवीन्द्रसहाय वर्मा,पृ·215

6.5.15. शोक गीति

"एलिजी" छन्द का प्रयोग भी छायावादी काव्य में हुआ है। पन्तजी ने शोक-गीति का प्रयोग परवर्ती रचनाओं में "शशि की तरी" में किया है। "शोक गीति" की रचना अपनी इष्ट की मृत्यु के शोक और सन्ताप से प्रेरित होकर की जाती है।[1]"

"शशि की तरी" में एक बालिका की मृत्यु का वर्णन है -

"मृत्यु कहाँ अब ? तुमको पाकर
स्मृति में लिपटा मरण स्वयं
बन गया भावमय जीवन -
तुम में ही रहता हूँ अब मैं
भावमुते, तन्मय तुम में ही
मेरा प्रति हृत्स्पंदन।[2]"

6.5.16. मुक्त छन्द

मुक्त छन्द ध्वनि, लय और संगीत की मैत्री पर चलता है। यह कल्पना और भावना के उत्थान पतन, आरोह-अवरोह के अनुसार चलता है। पन्त ने मुक्त छन्द के विषय में लिखा है -

---

1. आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधायें - निर्मला जैन, पृ.406
2. शशि की तरी - पन्त, पृ.26

"यह छन्द कल्पना तथा भावना के उत्थान पतन, आवर्तन विवर्तन के अनुरूप संकुचित प्रसारित होता, सरल तरल, ह्रस्व दीर्घ गति बदलता रहता है[1]।" मुक्तछन्द स्वच्छंद का ही एक भेद होता है। स्वच्छंद छंद में एक ही छन्द केलिये भिन्न-भिन्न चरणों की योजना करके छन्द की रचना होती है, मुक्त छन्द में लय प्रधान होती है। अत: मुक्त छन्द लयानुसार चलता है। मात्रा व अन्य नियमों और लक्षणों का पालन मुक्त छन्द में नहीं होता है। मुक्त छन्द में मात्रा और चरण दोनों ही अनियमित होते हैं। पन्तजी ने इस संदर्भ में लिखा है - "मुक्त काव्य आंतरिक-ऐक्य, भाव-जगत् के साम्य को ढूँढता है। उसमें छन्द के चरण भावानुकूल ह्रस्व दीर्घ हो सकते हैं[2]।" निराला जी ने लिखा है - "मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है, और कवियों की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना[3]।"

परवर्ती रचनाओं में "गीतहंस", "किरणवीणा", और "पतझर एक भावक्रांति" में कहीं कहीं मुक्तछन्द का प्रयोग किया है।

"राजहंस तुम,
मेरे कवि,
रस मानस वासी,
चिदाकाश में उड
अनंत छवि
पंख खोलकर
बरसाते गोरी अनुभूति

---

1. पल्लव - पन्त, पृ.44
2. वही, पृ.44
3. परिमल - निराला, पृ.12

हृदय में भास्वर -
प्यार निरंतर कर
जीवन मन के
स्मित अंबर ।"[1]

यह 9,10,8,15,6 और 7 मात्राओं का अतुकान्त मुक्त छन्द है । इसमें आदि से अन्त तक भाव और मात्रा का सामंजस्य बना हुआ है । कहीं-कहीं कवि ने अनुप्रास मिलाने का प्रयास किया है ।

इस प्रकार पन्तजी ने अपनी छन्द योजना में वैविध्य का ध्यान रखा है । उन्होंने एक ही छन्द के अनेक प्रयोग कर हिन्दी कविता में एक नई पद्धति का श्रीगणेश किया है । परम्परागत और नवीन दोनों ही प्रकार के छन्दों का प्रयोग उनके काव्य में खुलकर हुआ है । "नंदन छंद" के प्रयोक्ता और प्रणेता भी पन्तजी ही हैं । छंद के क्षेत्र में उनका महत्वपूर्ण योगदान है ।

6.6. काव्यरूप

काव्य रूप शिल्प का एक मुख्य अंग है । इसके द्वारा काव्य की बिखरी हुई सामग्री को एक सूत्र में पिरोकर, गूंथकर प्रस्तुत करना संभव है । काव्यरूप की दृष्टि से भारतीय समीक्षा पद्धति में श्रव्यकाव्य के दो भेद किये हैं - एक प्रबन्ध और दूसरा मुक्तक । प्रबन्ध में पूर्वापर का तारतम्य होता है ।

---

1. गीतहंस - पन्त, पृ.71

मुक्तक में इस तारतम्य का अभाव रहता है । प्रबन्ध में छन्द एक दूसरे से कथानक की श्रृंखला में बन्धे रहते हैं । उनका क्रम उलटा पलटा नहीं जा सकता, वे एक दूसरे की अपेक्षा रखते हैं । मुक्त छन्द पारस्परिक बन्धन से मुक्त होते हैं, वे स्वत: पूर्ण होते हैं ।

पन्त की रचनाओं में "लोकायतन" और "सत्यकाम" दो प्रबन्ध काव्य हैं । इस में "लोकायतन" में कवि ने विषयवस्तु, कथावस्तु, उद्देश्य, चरित्र-चित्रण, भाषा और शब्द-चयन तथा रस और भाव-व्यंजना में नवीनता और मौलिकता का समावेश किया है । "सत्यकाम" वैदिक-पृष्ठभूमि पर लिखा हुआ एक आधुनिक महाकाव्य है । दोनों की विशद चर्चा में ने इसके पहले की है ।

दो महाकाव्यों को छोड़कर बाकी परवर्ती सभी रचनाओं में प्रगीत ही मुख्य हैं । प्रगीत आधुनिक काव्य की प्रिय विधा है । पन्तजी ने लघु प्रगीतों के साथ दीर्घ प्रगीतों की रचना की है ।

6·7· निष्कर्ष

लोकायतन और परवर्ती रचनाओं के अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि पन्तजी के ये परवर्ती काव्य कथ्य की दृष्टि से ही नहीं बल्कि काव्यभाषा, प्रतीकविधान, अप्रस्तुत योजना, बिम्ब विधान, छंद-योजना और काव्यरूप की दृष्टि से भी पठनीय हैं ।

पन्तजी की काव्य भाषा के विकास की दृष्टि से परवर्ती रचनायें महत्वपूर्ण हैं । प्रारंभिक रचनाओं की कोमलकांत पदावली इन रचनाओं में दार्शनिक एवं बौद्धिक हो गयी है । बौद्धिकता के कारण इस काल की भाषा अधिक सूत्रात्मक और प्रौढ हो गयी । दार्शनिक शब्दावली का प्रयोग इस कारण की सभी रचनाओं में दर्शित है । इन रचनाओं में अधिमानस, अतिमानस, ऊर्ध्वमन आदि अनेक दार्शनिक पारिभाषिक शब्दों की प्रचुरता है । पन्तजी ने इन काव्यों में अनेक नये शब्दों का निर्माण किया है । इसके अलावा परवर्ती काव्य में अर्थ और गति के अनुसार अनेक पर्यायवाची शब्द, नये बहुवचन शब्द, स्त्रीलिंग और पुल्लिंग नियमों का लंघन आदि दिखाई पड़ते हैं ।

परवर्ती रचनाओं में वैदिक दार्शनिक प्रतीकों की बहुलता है । "लोकायतन" में सीता का प्रतीकात्मक चित्रण सर्वाधिक सराहनीय है । अप्रस्तुत विधान को कवि ने काव्य का आवश्यक तत्व नहीं स्वीकार किया । लेकिन उन्होंने अलंकार की उपेक्षा नहीं की । अलंकारों को भावाभिव्यक्ति का विशेष द्वार कहा है । परवर्ती रचनाओं में मुख्य रूप से तीन तरह के बिम्ब-ऐन्द्रिय बिम्ब, मानस बिम्ब और इतर बिम्ब दिखाई पड़ते हैं । मिथकीय बिम्बों में लोकायतन के इन्द्र का बिम्ब बहुत ही प्रभावशाली है । दार्शनिक तत्वों से भरे हुए उनके दार्शनिक बिम्ब परवर्ती रचनाओं की एक बड़ी उपलब्धि है ।

छंद के क्षेत्र में पन्तजी की देन सराहनीय है । उन्हें "नंदन छंद" के आविष्कर्ता मानते हैं । काव्यरूप की दृष्टि से "लोकायतन" और "सत्यकाम" दोनों आधुनिक युग के प्रसिद्ध प्रबन्ध काव्य हैं । इनमें लोकायतन महाकाव्योचित औदात्य से सम्पृक्त विशालकाय महाकाव्य है । आधुनिक युग में भी बृहत्काय महाकाव्य की सफल रचना संभव है - पन्तजी ने यह दिखा दिया है । आधुनिक काव्य की सर्वाधिक प्रचलित काव्य विधा प्रगीतों की दृष्टि से पन्तजी के परवर्ती काव्य महत्वपूर्ण हैं ।

सातवाँ अध्याय

लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में प्रकृति-चित्रण

सातवाँ अध्याय

7 लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में प्रकृति-चित्रण

"साधारण बोलचाल में प्रकृति मानव का प्रतिपक्ष है अर्थात् मानवेतर ही प्रकृति है - वह संपूर्ण परिवेश जिसमें मानव रहता है, जीता है, भोगता है और संस्कार ग्रहण करता है । और भी स्थूल दृष्टि से देखने पर प्रकृति मानवेतर का वह अंश हो जाती है जो कि इन्द्रियगोचर है - जिसे हम देख, सुन और छू सकते हैं, जिस की गन्ध पा सकते हैं और जिसका आस्वादन कर सकते हैं[1] ।" "नाना भाव भूमियों को, नाना अनुभूति प्रसंगों को और नाना युगकालों को पार करती गिरि कोयल की यह स्वर्ण-जाल सी तान हिन्दी मानस के "तुहिन-वन" में आज भी छाई हुई है । प्रकृतिसे साहचर्य और निसर्ग से तादात्म्य कवि पन्त के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता है[2]

---

1. रूपाम्बरा - अज्ञेय, पृ॰1
2. कवि की दृष्टि - भारत भूषण अग्रवाल, पृ॰17

प्रकृति के संबंध में पन्तजी की धारणा ऐसी है - "प्रकृति से मेरा क्या अभिप्राय है, शायद इसे मैं न समझ सकूँगा । अगर किसी वस्तु को बिना सोचे-विचारे, केवल उसका मुख देखकर मेरे मन ने स्वीकार किया है, तो वह प्रकृति है । वह शायद मेरा ही एक अंग है, सबसे स्निग्ध, उज्ज्वल और व्यापक अंग जिसके प्रशान्त अन्तस्तल में सब प्रकार के सद्-असद् उच्च-क्षुद्र तथा सुख-दु:ख अपने आप जैसे घुलमिलकर एकाकार हो जाते हैं । उसकी एकान्त क्रोड में बैठकर मैं अपने को सब से बड़ा अनुभव करता हूँ, जो अनुभूति मुझे और किसी के सम्मुख नहीं हुई छुटपन में दूसरों ने मुझे सदैव अपनी विकृतियों, संकीर्णताओं, कठोरताओं, निर्दयताओं और ढिठाइयों को दबाने का प्रयत्न किया है । अशिष्टता, रूखाई तथा असभ्यता का सामना करने में अपने को अक्षम पाने के कारण मैं सदैव दूसरों की अयोग्यता के सामने भी संकोचवश सिकुड़कर रहा हूँ । किन्तु प्रकृति ने अपने आँगन में मुझे सदैव खुलकर खेलने को उकसाया है । उसने मेरे अनेक मानसिक घावों को अपने प्रेम-स्पर्श से भर दिया है, मेरी अनेक दुर्बलताओं को अपनी प्रेरणाओं के प्रकाश से धोकर मानवीय बना दिया है । इस प्रकार जो सर्वप्रथम पुस्तक मुझे देखने को मिली, वह प्रकृति ही है[1] ।"

खड़ीबोली के प्रकृति-काव्य का स्वर्ण-काल गढ़ने में पन्तजी का महान प्रदेय सर्वोपरि है - "अपने पथ के साथियों एवं अन्य समकालीनों की तुलना में अप्रतिम । अत: पन्त का प्रकृति-काव्य छायावादी परिधि में ही श्रेष्ठ नहीं, आधुनिक हिन्दी कविता के संपूर्ण परिसर में सर्वोत्कृष्ट है[2] ।"

छायावादी कवियों में पन्त को प्रकृति का सुकुमार कवि माना जाता है । वे मूलत: निसर्ग के कवि हैं और

---

1. शिल्प और दर्शन - पन्त, पृ.185
2. गंधवीथी - पन्त, पृ.13

उनके संपूर्ण काव्य में प्रकृति का विशेष प्रभाव है । प्रकृति उनके काव्य का प्रेरणास्रोत है । पन्त का जन्म प्रकृति के सुरम्य प्रदेश कूर्मांचल में हुआ और प्रकृति की गोद में ही उनका शैशव व्यतीत हुआ । मातृ-स्नेह से वंचित बालक पन्त केलिये प्रकृति जननी की तरह स्नेहमयी थी । पन्तजी ने स्वयं स्वीकार किया है - मेरे किशोर प्राण मूक कवि को बाहर लाने का सर्वाधिक श्रेय मेरी जन्मभूमि के उस नैसर्गिक सौंदर्य को है, जिसकी गोद में पलकर मैं बड़ा हुआ हूँ । प्रकृति निरीक्षण और प्रकृति-प्रेम मेरे स्वभाव के अभिन्न अंग ही बन गये हैं, जिनमें से मुझे जीवन के अनेक संकट क्षणों में अमोघ सान्त्वना मिली है ।[1]" आगे वे कहते हैं "कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है । कवि जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मैं घंटों एकान्त में बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण, मेरे भीतर एक अव्यक्त सौंदर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था । जब कभी मैं आँखें मूंदकर लेटता था तो वह दृश्य-पट, चुपचाप मेरी आँखों के सामने घूमा करता था । अब मैं सोचता हूँ कि क्षितिज में सुदूर तक फैली, एक के ऊपर एक उठी ये हरित नील धूमिल, कूर्मांचल की छायांकित पर्वत

"जो अपने शिखरों पर रजत मुकुट हिमाचल को धारण की हुई हैं और अपनी ऊँचाई से आकाश की अवाक् नीलिमा को और भी ऊपर उठायी हुई हैं, किसी भी मनुष्य को अपने महान् नीरव संमोहन के आश्चर्य में डुबा कर,

---

1. रश्मिबंध - पन्त, पृ.8

कुछ काल केलिये, भुला सकती है और यह शायद पर्वत प्रान्त के वातावरण ही का प्रभाव है कि मेरे भीतर विश्व और जीवन के प्रति एक गंभीर आश्चर्य की भावना, पर्वत ही की तरह निश्चय रूप से अब स्थित है।[1] ।"

प्रकृति पन्त केलिये सब कुछ थी । "प्रकृति के रूप को देखकर मैं अनेकानेक बार आत्म-विस्मृत हो चुका हूं । जैसे माँ बच्चे को अपनाती है वैसा प्रकृति ने मुझे अपनाया है । उसने मेरे चंचल मन की आकुल व्याकुलता को, जिसे मैं किसी पर प्रकट नहीं कर सका हूं और न स्वयं ही समझ सका हूं - अपने में ले लिया है । प्रकृति के मुख का निरीक्षणकर मेरे भीतर अनेक गहरी अनुभूतियाँ उतरी हैं । संसार के छोटे-मोटे संघर्षों तथा जीवन के कटु-तिक्त अनुभवों के परे उसने एक व्यापक पुस्तक की तरह खुलकर मेरे भीतर अनेक महानुभूतियाँ, सान्त्वनायें, स्नेह, ममत्व की भावनायें तथा अवाक् अलौकिक अपने को भुला देनेवाली शक्तियों का स्पर्श अंकित किया है[2] ।"

"कवि केवल कवि ही नहीं, सामाजिक व्यक्ति भी होता है । प्रकृति के प्रति जीवन और जगत् की मान्यतायें भी, उसके व्यक्तिगत वय-विकास के साथ-साथ बदलती जाती है । कवि स्वयं ज्यों-ज्यों मानसिक रूप में प्रगति करता है त्यों-त्यों द्वन्द्वात्मक रूप से प्रकृति के रंगों का और स्वरों का आशय भी उसकेलिये परिवर्तित होता गया है[3] ।"

यह ध्यान देने योग्य है कि पन्त के कवि-व्यक्तित्व के विकास के साथ ही प्रकृति के प्रति इनके दृष्टिकोण में परिवर्तन होता गया ।

---

1. आधुनिक कवि - 2 -- पर्यालोचन - पन्त, पृ.8
2. शिल्प और दर्शन - पन्त, पृ.185
3. सुमित्रानंदन पन्त काव्यकला और जीवन-दर्शन, शचीरानी गुर्टू, पृ.63

कल्पना की उन्मुक्तता वय-विकास के साथ घटती गयी है और अनुभूति एवं चिन्तन का प्रभुत्व क्रमश: बढ़ता गया है । उनकी आरंभकालीन कृतियों पर दृष्टिपात करें तो यह विकासक्रम स्पष्ट मालूम होगा ।

"वीणा" में बालकवि की प्रकृति और माँ-विषयक प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है । उस समय कवि के मन में प्रकृति के प्रति जिज्ञासा की भावना और उसके गुणों पर मोहित होकर तादात्म्य प्राप्त करने की इच्छा थी । लेकिन "पल्लव" में प्रकृति सजीव एवं साकार हो गयी है । कवि ने प्रकृति में अपने भावों का प्रतिबिम्ब ही नहीं देखा, उसका प्रभाव भी अपने पर पाया । "वीणा और पल्लव में कवि का दृष्टिभेद उसके समूचे परवर्तीकाव्य की कुंजी है, उसमें कवि के भोक्ता से दर्शक और फिर बाद में द्रष्टा, बन जाने का रहस्य छिपा हुआ है[1] । गुंजन की प्राकृतिक रचनाओं के मूल में आनंद एवं सौंदर्य की भावना सजग है । इस पर नारी-भावना का आरोप प्रचुर मात्रा में है । "युगान्त" में प्रकृति पर मानवतावाद का प्रभाव है । इसमें प्रकृति को गौण और मानवको अधिक महत्व दिया है ।

सन् 1947 में "स्वर्णकिरण" प्रकाशित हुई जिसमें दूसरे प्रकार के कवि पन्त का आभास पाठकों को मिलता है । "जो मांसल, रूपाभामयी भौतिक दृष्टि पंत की "युगवाणी", "ग्राम्या" में थी वह जैसे खो गयी और अब प्रकृति का वायवी भाव-रूप शेष रह गया । अब वीणा, पल्लव, गुंजनकाल का बाल-सुलभ कौतूहल नहीं है· और ग्राम्या, युगवाणीवाली रस-सिक्त आसक्ति । अब तो जैसे प्रकृति केवल प्रतीक-विधान का आधारमात्र रह गयी है[2] ।" "उत्तरा" की भूमिका में पन्त ने कहा है "हम प्रवृत्तियों के पशुपन को मनुष्यत्व के सौंदर्य गौरव से मण्डित (नहीं) कर सकेंगी ।"[3]

1· कवि की दृष्टि - भारतभूषण अग्रवाल, पृ·19

2· सुमित्रानंदन पन्त काव्यकला और जीवन दर्शन - शचीरानी गुर्टू, पृ·76

3· उत्तरा - पन्त, पृ·15

पन्त का यह विश्वास उनके मौलिक प्रकृतिवाद का ही नया रूप है ।

आलोचक श्री रामचन्द्रशुक्ल ने जो कहा वही कविता और प्रकृति के विषय में सच है "अनन्त रूपों में प्रकृति हमारे सामने आती है - कहीं मधुर, सुसज्जित या सुन्दर रूपों में, कहीं रूखे, बेडौल या कर्कश रूप में, कहीं भव्य, विशाल या विचित्र रूप में, कहीं उग्र, कराल या भयानक रूप में । सच्चे कवि का हृदय इसके इन रूपों में लीन होता है क्योंकि उसके अनुराग का कारण अपना खास सुखभोग नहीं, बल्कि चिर साहचर्य द्वारा प्रतिष्ठित वासना है । प्रकृति के साधारण-असाधारण सब प्रकार के रूपों में रमानेवाले वर्णन हमें वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति आदि संस्कृत के प्राचीन कवियों में मिलते हैं । असाधारणत्व की रुचि सच्ची सहृदयता की पहचान नहीं है । शोभा और सौंदर्य की भावना के जिनमें मनुष्य जाति के उस समय के सहचरों की वंश-परम्परागत स्मृति वासना के रूप में बनी हुई है जब वह प्रकृति के खुले क्षेत्र में विचरती थी, वे ही पूरे सहृदय या भावुक कहे जा सकते हैं[1] ।"

ऐसे ही सच्चे, भावज्ञ कवियों में, जिनकी तरफ आचार्य शुक्लजी ने इशारा किया है, श्री सुमित्रानंदन पन्त का स्थान शीर्षस्थ है । प्रकृति उनके जीवन की धात्री, माँ, शिक्षिका, प्रेयसी, संगिनी, सखी सब कुछ रही है । उसने उनके व्यक्तित्व और जीवन का सच्चे अर्थों में निर्माण किया है और उन्होंने भी पूर्ण तन्मयता से उसके विभिन्न रूपों और झाँकियों को बडी सूक्ष्मता और कौशल से अभिव्यंजित करते हुए उसके अंतरतम की गूढ से गूढ एवं रहस्यमय स्थितियों का उद्घाटन करने में सफलता प्राप्त की है ।

---

1. चिन्तामणि भाग 1 - रामचन्द्रशुक्ल, पृ.149

नारी-वेष्टिनी प्रकृति एक सजीव सत्ता के रूप में उनके काव्य में उपस्थित हुई है । सौंदर्यचेतना के युग में उन्होंने नारी-वेष्टिनी प्रकृति से इतना तादात्म्य स्थापित कर लिया है कि उसने अपने को नारी-रूप में ही अंकित कर दिया है । इस प्रकार प्रकृति को स्वतंत्र सजीव सत्ता रखनेवाली नारी के रूप में चित्रित करने के कारण उनकी कविताओं में सर्वात्मवादी रुचि, मानवीकरण, अमूर्त का मूर्त्तभिधान के अतिरिक्त नारी और प्रकृति का अविरल रूप-विपर्यय या पारस्परिक रूपान्तर मिलता है । इस प्रकार इनकी प्रकृति कविताओं में नारी सौंदर्य और प्रकृति-सौंदर्य का सतत संगम है । "पन्तजी की कविताओं में प्रकृति का "प्रेयसी-रूप" ही अधिकतर चित्रित हुआ है, जो कवि के रागी मन के सर्वथा अनुकूल है । इसी प्रेयसी-भाव ने कवि के प्रकृति-चित्रों को रागात्मकता से ओतप्रोत कर दिया है । अतः यह आदिम कवियों के उस आरण्यक राग से भिन्न है, जो प्रकृति को उपादान-सामग्री बना देता है या प्रकृति को ब्रह्म की नाना स्थूल अभिव्यक्तियों में से एक मान लेता है[1]।"

प्रकृति-सौंदर्य और नारी-रूप को एक प्राण कर देने की यह प्रवृत्ति आचार्य शुक्ल को पसन्द नहीं थी । आचार्य शुक्लजी ने छायावाद पर लिखते समय उक्त प्रसंग में यह धारणा व्यक्त की है कि "प्रकृति के नाना रूपों के सौंदर्य की भावना सदैव स्त्री-सौंदर्य का आरोप करके करना उक्त भावना की संकीर्णता सूचित करता है । सौंदर्य की भावना सर्वत्र स्त्री का चित्र चिपकाकर करना खेल सा हो जाता है । उषा सुन्दरी के कपालों की ललाई, रजनी के रत्न जटित केश-कलाप, दीर्घ-निःश्वास और अश्रु-बिन्दु तो रूढ हो ही गये हैं, किरणें, लहर, चन्द्रिका, छाया, तितली सब अप्सरायें या परियाँ बनकर ही सामने आने पाती हैं । इसी तरह प्रकृति के नाना व्यापार भी चुम्बन, आलिंगन, मधुदान, कामिनी की क्रीडा इत्यादि में अधिकतर परिणत दिखाई देते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति की

---

1. गन्धवीथी - पन्त, पृ.28

नाना वस्तुओं और व्यापारों का अपना-अपना अलग सौंदर्य भी है, जो एक ही प्रकार की वस्तु या व्यापार के आरोप द्वारा अभिव्यक्त नहीं हो सकता।[1]" डॉ॰ कुमार विमल की दृष्टि में प्रकृति की रंजक रहस्यमयी सूक्ष्मता को हृदयावर्जक मूर्तता मिल जाती है और सहज मानवीकरण के कारण प्रकृति सौंदर्य की अनुभव-गम्य रमणीयता बढ़ जाती है[2]।"

"छायावाद काल की प्रकृति कविताओं पर शैली, वर्ड्सवर्थ, कीट्स और टेनिसन का प्रभाव पाया जाता है। इन कवियों में भी वर्ड्सवर्थ के प्रांजल प्रकृति प्रेम ने पन्त को अधिक प्रभावित किया है[3]।" यह सर्वविदित है कि प्रकृति के प्रति विशेष आकृष्ट रहने के कारण ही वर्ड्सवर्थ को अँग्रेज़ी साहित्य में "प्रकृति का श्रेष्ठ पुरोहित" कहा गया है। इस दृष्टि से हम पन्त को भी आधुनिक हिन्दी कविता के संदर्भ में "प्रकृति का श्रेष्ठ पुरोहित" कह सकते हैं[4]।" प्रकृति के संबंध में वर्ड्सवर्थ की मुख्य धारणा यह है कि संपूर्ण सृष्टि में जो अनन्त सर्जनात्मक चेतना छिपी हुई है, वही प्रकृति है। अर्थात् प्रकृति के विविध रूपाकारों में एक निश्चित आध्यात्मिक अर्थवत्ता छिपी हुई है[5]।"

"आलोचकों ने वर्ड्सवर्थ को "पहाड़ों का कवि" कहा है और पन्त भी बहुत अंशों में "पहाड़ी कवि" है - केवल जन्मस्थान की दृष्टि से ही नहीं, काव्यगत कथ्य की दृष्टि से भी। कारण, पर्वत के बिना पन्त के प्रकृति-काव्य की उर्वरता का अनुमान नहीं किया जा सकता। वर्ड्सवर्थ को जैसे भी पहाड़ मिले हों, पन्त को पहाड़ों के सम्राट हिमालय ने अपनी गोद में

1· हिन्दी साहित्य का इतिहास - आ॰ रामचन्द्र शुक्ल, पृ॰675
2· गन्धवीथी - पन्त, पृ॰29
3· साठ वर्ष एक रेखांकन - पन्त, पृ॰32-33
4· गन्धवीथी - पन्त, पृ॰34
5· वही, पृ॰36

पाल-पोसकर बड़ा किया है । पन्त पर्वताधिराज हिमालय की गोद में पले हैं और वड्सवर्थ अपने इलाके की पहाड़ियों की गोद में । इसलिये ऊर्ध्वता का जो चरम शीर्ष पन्त की प्रकृति कविताओं में है, वह वर्ड्सवर्थ की प्रकृति कविताओं में नहीं ।[1]" इन दोनों की प्रकृति कविताओं का अन्तर यह है कि पन्त में कल्पना की आपेक्षिक प्रमुखता है और वर्ड्सवर्थ में यथार्थानुभूतियों की सौंदर्य चेतना के युग के बाद समाज चेतना के युग में पन्त का प्रकृति-बोध किंचित् परिवर्तित हो गया । इस काल में उनका झुकाव अब प्रकृति से अधिक मनुष्य की ओर हो गया । कवि भाव-सत्य की अपेक्षा रूप-सत्य की ओर अग्रसर हो रहा था । इसलिए समाज चेतना के युग के प्रकृति चित्र सौंदर्य चेतना के प्रकृति चित्रों की अपेक्षा अधिक यथार्थ और वस्तुसम्पृक्त हो गये हैं ।

समाज चेतना के बाद पन्त की काव्य-साधना में फिर एक अन्तर्मुख परिवर्तन आया । इस अन्तर्मुख परिवर्तन को आध्यात्मिक चेतना काल कह सकते हैं । "इस काल की प्रकृति-कविताओं में एक आध्यात्मिक संस्पर्श व्याप्त है । अतः इस खण्ड की कविताओं को "रश्मिपदी" प्रकृति काव्य भी कहा जा सकता है ।[2]" आध्यात्मिक चेतनाकाल की प्रकृति कविताओं में दृश्य जगत् की अदृश्य छवि प्रधान है । कवि ने इस काल में प्रकृति को अध्यात्म के वातायन से देखा है । यह अध्यात्म मानव-चेतना के बहिरन्तर रूपान्तर का सक्रिय योग देनेवाला है ।

इस प्रकार पन्तजी की कविताओं का आनुक्रमिक विश्लेषण से पता चलता है कि सौंदर्यचेतना के बीतते-बीतते पन्तजी की दृष्टि सांस्कृतिक संचरण की ओर उन्मुख हो गयी और आध्यात्मिक चेतना की स्थिति तक आते-आते इनका कवि-मन ऋत-सम्बोधि में रम गया । आध्यात्मिक चेतना में कवि केलिये प्रकृति केवल "रूप दर्शन" न रहकर "अधिदर्शन" भी बन गयी है ।

1· गन्धवीथी - पन्त, पृ·37
2· वही, पृ·42

कई आलोचकों का कहना है कि इस अवधि की प्रकृति कविताओं में कलापक्ष गौण पड़ गया है[1]।" इस काल में कवि की धारणा यह है कि "चेतना" ही "सत्ता" का परिचालन कर सकती है, क्योंकि यह गोचर जगत् "चेतना सागर" का [illegible] सलिलावरण मात्र है। "जगत् जीवन के प्रति ऐसी गहन धारणा और चिन्तन की अधिकता के कारण "चेतनस्पर्श-काल" की कविताओंमें नैवन्धिक गुण का समावेश हो गया है[2]।" दार्शनिक धारणाओं के कारण प्रकृति भी कवि केलिये दिव्यचेतना का ही अधिकरण बन गयी है। सौंदर्य चेतनाकाल में प्रकृति मानवी थी लेकिन इस काल में आध्यात्मिक विभावनाओं के कारण "मानवी" से "देवी" बन गयी है। दोनों काल की प्रकृति का यही अन्तर शायद, शान्तिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में इस प्रकार ध्वनित हुआ है - "पल्लवकाल में प्रकृति राधा और शकुन्तला थी, स्वर्णकिरण में सन्ध्या और गायत्री है। यद्यपि दोनों एक ही नैसर्गिक वातावरण की उपज हैं, तथापि दोनों में भावना और मनीषा का अन्तर है[3]।" इस प्रकार इस काल की प्रकृति भावना में भागवत् चेतना की दीप्ति बिखरी-निखरी सी दीखती है। इसलिये इन कविताओं में कवि "दर्शक" से अधिक "दार्शनिक" बन गया है और उसकी दृष्टि दृश्य जगत् की अरूप सुषमा तथा प्रकृति-रूपों की भावात्मक व्यंजना पर अधिक केन्द्रित हो गयी है।

संक्षेप में पन्त ने हिन्दी कविता को स्थूल प्रकृति-सौंदर्य से उबारकर सूक्ष्म प्रकृति सौंदर्य की ओर प्रेरित किया है और अपनी प्रकृति-कविताओं के माध्यम से आत्मेतर सृष्टि-प्रसार में छिपे भाव-तत्व के साथ रागात्मक संगति स्थापित करने की चेष्टा की है। इन्होंने प्रकृति-काव्य को "बाह्य उपाधि" से हटाकर "आन्तर हेतु" की ओर उन्मुख किया है। सहज संवेदन, विचार और अरूप चिन्तन पन्त के प्रकृति काव्य की क्रमिक विकास दशायें हैं।

---

1. गन्धवीथि - पन्त, पृ.43
2. वही, पृ.44
3. साकल्य - शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ.144

सौंदर्य चेतना में प्रकृति की चाक्षुष छवियों से उत्पन्न की सहज संवेदन, समाजचेतना में परिवर्तित जीवन दृष्टि के कारण विचार और आध्यात्मिक चेतना में उच्च त्रिदल की ऊर्ध्वोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण अरूप चिन्तन की प्रमुखता है । "छायाकाल और नवदृष्टिकाल की प्रकृति कविताओं में रूप-सौष्ठव की प्रधानता है तथा चेतनास्पर्शीकाल की कविताओं में रूप और तादात्म्य भाव की ।"[1] "जो भी हो परवर्ती रचनाओं में कवि का जन्म-सहचर गिरि-कोयल अब भी कवि के प्राणों में मुखर है । कवि मानो अपने भविष्यदर्शन के प्रयास से थककर कभी कभी अपना मन बहलाने केलिये उसकी तान सुनने लग जाता है और तब कुछ ऐसी रचनाओं की सृष्टि हो उठती है, जिन में हम प्रकृति के उन रंग-गंध-गतिमय चित्रों का फिर पा जाते हैं जिनके दर्शन ने पंत को कैशोर्य में उद्वेलित कर दिया था और जिनकी स्मृति आज भी उन्हें मोहित कर लेती है ।"[2]

लोकायतन और परवर्ती पन्त की काव्यकृतियों में प्रकृति संबंधी अधिकांश रचनायें कवि की दार्शनिक विचारधारा को पुष्ट करती हैं । जीवन की भांति प्रकृति में भी पन्त ने अलौकिक विराटता और भव्यता के दर्शन किये हैं । अतीन्द्रिय जगत और मानसिक स्थिति को अभिव्यक्त करने केलिये उन्होंने अनेक भव्य प्राकृतिक दृश्यों और उपकरणों को चुना है । इन्हीं कृतियों के प्रकृति चित्रण के निम्न लिखित प्रकार द्रष्टव्य है -

7.1. प्रकृति का नैसर्गिक सौंदर्य चित्रण ।

7.2. बिम्बविधान ।

7.3. प्रतीक रूप ।

7.4. मानवीकरण ।

7.5. रहस्यमय रूप ।

---

1. गन्धवीथि - पन्त, पृ.46

2. कवि की दृष्टि - भारत भूषण अग्रवाल, पृ.32

7.1. प्रकृति का नैसर्गिक सौंदर्य चित्रण

आरंभकालीन प्रकृति वर्णनों के सौंदर्य में "गुंजन" की "चाँदनी", परवर्ती रचनाओं में "पतझर एक भावक्रांति" और "शंखध्वनि" की "चन्द्रकला" और "चाँदनी" कवितायें उदाहरण हैं। यत्रतत्र नैसर्गिक सौंदर्य के साथ-साथ अध्यात्म चित्रण की प्रवृत्ति शुरू से थी। "गुंजन" की "चाँदनी" कविता के अन्त में अपनी वैचारिक प्रवृत्ति के कारण इस संश्लिष्ट चित्र को अस्ति-नास्ति के धरातल पर अनिर्वचनीय कहकर जग और चाँदनी में अद्वैत स्थिति देखने लगते हैं - "वह है, वह नहीं, अनिर्वच, जग उसमें वह जग में लय
साकार चेतना-सी वह जिसमें अचेत जीवाशय[1]।"

चाँद पन्तजी के शब्दों में स्वर्गिक कलश है जो भू अंचल में स्नेह सुधा - रस की वृष्टि कर रहा है -

"आज पूर्णिमा का सरोज-सा फुल्ल, सुधाकर,
कितना सुन्दर लगता, राजहंस सा तिरता
वह स्वर्गिक सौंदर्य सा उसी भाव से
स्नेह सुधारस वृष्टिकर रहा भू अंचल में[2]।"

चन्द्रकला को नीलाभ गगन में उदित होते देखकर कवि के मन में कई भावनायें जाग उठीं। कवि चाँद से भी अधिक चाँद की कला को चाहता है। कवि की दृष्टि में उस शोभा-अंकुर में सारी विधि की कला समा गयी है -

---

1. गुंजन - पन्त, पृ.91
2. शंखध्वनि - पन्त, पृ.14

"वह न भृकुटि, नग, अमि ही,
मन की नाव मनोहर,
प्राणों के मोहित मागर तिर
मुझे अनश्वर
शोभा के जग में पहुंचाती,
जहाँ निरन्तर
झूलते दृग मम्मुख
अनिन्द्य आनन्द दिगन्तर ।"[1]

"धूप" का सुन्दर चित्र उन्होंने "अतिमा", "गुंजन", "शंखध्वनि" में खींचा है । "अतिमा" के वर्णन में उन्मुक्त कल्पना-छवियाँ स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हैं । यह धूप आगे "गुंजन" की दार्शनिक प्रकृति के अनुसार कवि के समक्ष मन को विराट आत्मा से संयुक्त करने, प्यार करने, सुन्दरता में रहने आदि से संबंधित मनुष्य जीवन के महत्तर ध्येयों को भी प्रस्तुत करती है और ये सब अतिशय परिष्कृत और परिमार्जित रूप में पूर्ण काव्य-सौष्ठव के साथ उनकी इस रचना में व्यक्त हुआ है । परवर्ती रचना "शंखध्वनि" में पन्तजी ने "धूप का टुकड़ा" शीर्षक एक कविता लिखी है । इसमें सौंदर्य-चेतना युगीन कल्पना के उन्मेष के साथ उत्तरकालीन अतिचेतना का स्वरूप स्पष्ट परिलक्षित होता है -

"एक धूप का हँसमुख टुकड़ा, अलसाया है धरा धूल पर
चिड़िया के सफेद बच्चे सा - वह उड़कर, किरणों से रोमिल
पंख खोल, तरु पर चढ़ ओझल हो सकता फिर अमित नील में -
भू-रज में लिपटा भी शुभ्र धूप का टुकड़ा
वह रे स्वयं प्रकाशी, अखण्ड प्रकाशवान ।"[2]

---

1. पतझर एक भावक्रांति - पन्त, पृ.18
2. शंखध्वनि - पन्त, पृ.36

एक ही विषय पर लिखी ये कवितायें पन्त की आध्यात्मिक चेतना का स्वरूप हमारे समक्ष स्पष्ट करती हैं । प्रभात का एक सुन्दर वर्णन ऐसा है -

"उषा लाज लोहित मुग्धाला सी
मोहित मानस क्षितिजों पर आती,
षड्ऋतुओं की धूपछाँह ओढे
मधु अनंत यौवनधारा भाती ।"[1]

एक जगह सूर्य को माखन के कंदुक जैसा उज्वल बताया है -

"हँसता निदाघ रवि अंबर में
माखन के कंदुक सा उज्वल,
हिम वाष्पों का मृदु पट बुनती
सुरधेनु विचरित किरणें शीतल ।"[2]

रवि को एक अग्नि विहग जैसा वर्णन किया है -
"रवि को गिरता देख पंख-हत अग्नि विहग सा
धूम-क्षितिज में सोचा करता विस्मय-हतमन ।"[3]

सूर्यास्त का वर्णन ऐसा किया है -

"अस्तंगत दिनमणि की किरणें
अग्नि स्तम्भ सी जल में धंस कर
हरि के उर के तप्त शूल को
वाणी सी देती थी नि:स्वर ।
हल्के भूरे मेघों के पर
छितरे थे रानी रँग नभ पर

1· लोकायतन - पन्त, पृ·428
2· वही, पृ·641
3· सत्यकाम - पन्त, पृ·5

चितकबरे केंचुल - से जल पर,
रेंग रहे थे अंतिम रवि-कर ।[1] "

कथ्य के अनुसार "सत्यकाम" के पवित्र मंत्रों से गुंजरित विजन वन प्रांत में संध्या को एक अरण्य-मुनि के समान वर्णन किया है -

"संध्या उतर रही धीरे गैरिक दिगवसना,
समाधिस्थ लगता अरण्य, मुनि ध्यानावस्थित[2] । "

"सत्यकाम" में संध्यावेला का और एक सजीव चित्र उन्होंने खींचा है । उससे कवि की सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण पटुता हम समझ सकते हैं -

"सांध्य पक्षियों का कलरव थां मंद पड चुका,
पंक्तिबद्ध कुछ खग उडते चित्रित - से नभ में ।
एक पैर पर खडे, गौर ग्रीवायें मोडे,
रोमिल पंखों में थे शीश गडाये कुछ खग[3] । "

आध्यात्मिक चेतना के अंतिम चरणों में कवि प्रकृति के दर्पण में ही ईश्वर को पाता है । सृष्टि में व्याप्त सभी चराचरों के रोम-रोम में ईश्वर रहते हैं -

"ईश्वर मनुज हृदय में स्थित, अब लगता उसको,
व्याप्त सृष्टि के रोम रोम में भी वह बाहर ।

1· लोकायतन - पन्त, पृ·45

2· सत्यकाम - पन्त, पृ·4

3· वही, पृ·13

उसे प्रकृति दर्पण ही में देखा जा सकता,
इस अभिन्नता को न मानना ब्रह्म भ्रांति है[1] ।"

पर्वत प्रदेश का जीवन कवि केलिये बहुत ही रोमांचकारी था । परवर्ती सभी रचनाओं में जब मौका मिला है तब कवि ने पर्वत प्रदेश का सुन्दर वर्णन किया है -

"सद्य: स्फुट सौंदर्य राशि
सम्मोहन भरती मन में,
कितना विस्मयकर वैचित्र्य
भरा पर्वत - जीवन में[2] ।"

भूमि के स्वर्ग कश्मीर का सुन्दर वर्णन किया है । इंद्रनील नभ, मरकत हरित शैल श्यामल हरि धरित्रि कश्मीर की शोभा से कवि मन तृप्त नहीं है । क्योंकि वहां के अभिशापित दरिद्र लोगों की दशा कवि को आकुल बनाती है -

"गाता सर सरिता झरनों में गिरि का गीत-मुखर जल,
फूलों के रंगों की घाटी, हँसता मुक्त दिगंचल ।
xx xx xx
शोभा से दिग् विस्मित हृदय नमन करता ईश्वर को,
मन देता धिक्कार नरक कृमि - से दरिद्र हत नर को[3] ।"

---

1. सत्यकाम - पन्त, पृ.78-79
2. पतझर एक भाव क्रांति - पन्त, पृ.66
3. शंखध्वनि - पन्त, पृ.131

हिमालय का वर्णन उन्होंने आरंभ कालीन कृतियों के समान जहाँ-जहाँ अवसर मिला है वहाँ-वहाँ किया है -

"शैलाधिराज था हिम पर्वत
मरकत भू आसन पर शोभित,
करतीं परिक्रमा शोभा नत
षड् ऋतुएँ नव यौवन मुकुलित[1]।"

ऋतुओं में वर्षा, शरद, हेमंत और शिशिर का सुन्दर प्राकृतिक वर्णन लोकायतन में हुआ है ।

वर्षा-ऋतु पर्वत-ऋतुओं की सम्राज्ञी है । उसके मस्तक पर सुरधनुरूपी मोर मुकुट शोभित है । आकाश बिन्दु मुक्ताओं से मंडित एक छत्र है -

"सित बाष्प-चँवर-शोभा वीजित,
दिग् गर्जन से आगम घोषित[2]।"

"पर्वत प्रदेश की प्रिय राका शशिमुखी शरद[3]"
आनंद स्पर्श से शृंगों को सौंदर्य-सम्मोहित बनाती है । वह राजहंसिनी सी भू पर निस्वर पायल से चलती है -

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.640
2. वही, पृ.642
3. वही, पृ.643

"बिछती गिरि वन में, गृह मंत्र में
स्मिति शेफाली कलियाँ झर झर ।[1]"

हेमंत और शिशिर में सारे पर्वत प्रदेश कुहरों से परिवृत हो जाता है । पल भर सारी पृथ्वी हिममय बन जाती है -

"हिम, दुग्ध-फेन, मार्दव कोमल,
झरता रोमिल रूई सा हिम,
चाँदी के फाहों सा उज्वल -
हँस उठती रोमांचित रिमझिम[2] ।"

शरद्काल के निर्मल आकाश और उग्र निरंकुश अधिनायक भीष्म ग्रीष्म के बाद कवि जाड़ों के शुभागमन की प्रतीक्षा इस प्रकार करता है -

"जो मानव के नम्र
मनोभावों का दर्पण,
स्वागत करता मन
जाड़ों के शुभागमन का[3] ।"

हिमऋतु के सौंदर्य का वर्णन कवि ने यों किया है -

"हिम ऋतु का सौंदर्य
अनिर्वचनीय रहा नित ।
स्वर्ग अप्सरायें फहरातीं
गिरि प्रांतर पर
मसृण रूपहले रेशम का
बुन स्वप्निल आँचल[4] ।"

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.644
2. वही, पृ.644
3. आस्था - पन्त, पृ.149
4. वही, पृ.229

बहुत कम ही छायावादी कवियों ने विदेश की प्रकृति का वर्णन किया है । पन्तजी ने विदेश की यात्रा करके वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य और वैभवों का सुन्दर वर्णन किया है । "आल्पस्" पर्वत श्रृंगों को देखकर उन्हें अपनी जन्मभूमि की याद आयी -

"शुभ्र हिमशिखर किरीटित भाल,
हरित, फर-तरु रोमांचित ढाल,
घाटियाँ मखमल की मृदु ज्वाल,
नील दर्पण थे निर्मल ताल[1] ।"

जिनेवा, फ्रांस, रोम, यूनान, मिश्र, स्वीडन, आंग्ल देश आदि सभी देशों के वर्णन भारत भूमि के वर्णन जैसे लगते हैं । "स्वीडन" के जलप्रपताओं का वर्णन हिमालय के प्रान्तर प्रदेशों का वर्णन जैसा लगता है -

"स्फटिक श्रृंगों के तीव्र प्रपात,
गलित हिम जल के मुकुर तडाग,
घाटियों के प्रसन्न दिक् प्रांत
प्रकृति सुषमा का अचल सुहाग[2] ।"

नार्वे के चीड वृक्षों की वन भूमि को देखकर कवि को भारत जैसा ही लगता है -

"उग्र गिरि चट्टानों के ढाल,
हरे गहरे सागर - से ताल,
सैकडों मधु मक्खी - से द्वीप,
नार्वे का वैचित्र्य विशाल[3] ।"

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.387
2. वही, पृ.394
3. वही, पृ.394

"लंदन" के एक प्रभात का वर्णन उन्होंने ऐसा किया है -

"भले ही कज्जल का आकाश
धुएँ में रंगता हो पट गात,
तुहिन कण जाली मुख पर डाल
नहाती मुग्ध रश्मि स्मित प्रात ।"[1]

7.2. बिम्ब विधान

सौंदर्य चेतना की रचनाओं में बिम्बों की जो चमत्कार थी वह आध्यात्मिक चेतना में नहीं दिखाई पड़ती ।

परवर्ती रचनाओं में प्रकृति का प्रयोग बिम्बात्म रूप में भी किया गया है । दार्शनिक सिद्धांतों की विवेचना में विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम यहाँ प्राकृतिक बिम्ब बनते हैं । इसकी विशद चर्चा पिछले अध्याय में की है ।

अस्ताचलगामी सूर्य केलिये पन्त ने रंग बिम्ब का प्रयोग किया है । सूर्य का चित्र रक्तिम ताम्रकलश कहने पर स्वयं ही नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है -

---

1. लोकायतन - पन्त, पृ.396

"रजत - वारि दिन का उडेलकर
रक्तिम ताम्र कलश सा भास्कर
ज्योति-रिक्त अब, डूब डूब-सा
करता पश्चिम सागर तट पर ।[1]"

संध्या को एक विराट पक्षी कीतरह सुन्दर बिम्ब वर्णन किया है -

"हिरण्मयी संध्या मणि-छाया पंख खोल जब
अंतरिक्ष में उड़ती मौन विराट् विहग सी ।[2]"

वस्तु बिम्ब में किसी वस्तु का चित्रांकन कराने केलिये मूर्त प्रस्तुत और उपमान का प्रयोग मुख्य रूप से होता है । पन्त के वस्तु बिम्बों में रूप और रंग का विशेष महत्व है । पन्तजी ने प्राकृतिक पदार्थों के अनेक बिम्ब अंकित किये हैं । उनके अधिकांश वस्तु बिम्ब प्रकृति से ग्रहण किये गये हैं । एक वस्तु के चित्रांकन और उसके रूप का बोध कराने केलिये पन्त ने विभिन्न वस्तुओं के वस्तु बिम्बों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं -

"टूटी चूडी सा चाँद
न जाने निर्जन नभ में
किस की मृदुल
कलई से गिर पडा ।
हाय, दूज की चाँद
कौन, जग से अदृश्य,
गोरी होगी वह ।[3]"

1· पौफटने से पहले - पन्त, पृ·134

2· सत्यकाम - पन्त, पृ·4

3· किरणवीणा - पन्त, पृ·43-44

यहाँ कवि ने दुर्हेज केलिये टूटी चूडी के वस्तु बिम्ब का प्रयोग किया है ।

"गंधक के पर्वत जलते थे
छठे नरक में -
घोर घृणित दुर्गन्ध वायुओं में थी फैली ।
सडे मांस के अंबारों से
गलित पीप की नदियाँ बहतीं
मासन सी ही गीली पीली ।
कालेकलमष के
मोटे चमडे से बादल
छाये थे -
बिजली से पैने दाँत किटकटाते
गिद्धों से झपट रहे थे[1] ।"

यहाँ बादल के आकार को मूर्तित किया गया है । बादल केलिये "मोटे चमडे" के वस्तु बिम्ब का प्रयोग किया गया है । अंतिम दो पंक्तियों में ध्वनि बिम्ब है ।

एक जगह पन्तजी ने ग्रामवधू के मूर्तीकरणकेलिये कई प्राकृतिक उपमानों का प्रयोग एक साथ करके ग्रामवधू के रूप, रंग, आकार तथा चेष्टाओं का अलंकृत बिम्ब खींचा है -

---

1. किरणवीणा, - पन्त, पृ.173

"ग्रामवधू यह विस्मय - स्फारित
जल में डूबे नभ सी चितवन,
या वह तीसी सिली छरहरी
गीले नीले निरलस लोचन ।"[1]

वर्षाकाल में गरजनेवाले बादल का कवि ने यों वर्णन किया है -

"ऊँचे उडनेवाले पुष्पक
वारिद भरते उन्मद गर्जन,
शत तडिल्लताओं से वेष्टित
तिरते नभ में गिरि - से गज तन ।"[2]

कवि ने "लोकायतन" में प्राकृतिक वस्तुओं के सहारे सीता का एक सुन्दर भाव और चाक्षुष बिम्ब अंकित किया है ।

"ध्यान मग्न अनिमेष, मौन, नत चितवन
नील कमल दल मूँदते जाते प्रतिपल,
युग संध्या के घने सुनहले तम - से
कंधों पर लहराते कोमल कुंतल ।
xx x xx
मोड सुघर घुटने, बैठी वह निश्चल,
शुभ्र श्रेणि जघनों से धन्य कुशासन,
कनक कौश पट बांधे कृश कटि तट पर
धरे चिबुक करतल पर स्थिर नत आनन ।"[3]

1· लोकायतन - पन्त, पृ·61
2· वही, पृ·642
3· वही, पृ·8-9

इस में भू चेतना स्वरूपा सीता का कल्पनाजन्य ध्यानावस्थित रूपचित्र अनुपम है, पाठक को मुग्ध कर देता है । वहाँ कुशासन पर अपने घुटने मोड ध्यानमग्न बैठी भू-चेतना स्वरूपा सीता का सात्विक भावतरंगों से मंडित रूप-बिम्ब प्रस्तुत हुआ है । कवि उसके रूप आकार का विस्तार से वर्णन कर ऐन्द्रिय बिम्ब खड़ा कर देता है, मानो सीता अपनी सात्विक गरिमा से विभूषित हो हमारे सामने ही बैठी है । उसकी नतचितवन निर्निमेष और मौन है । पलकों केलिये नीलकमल दल का अप्रस्तुत प्रयुक्त हुआ है जो रूप साम्य एवं गुणसाम्य पर आधारित है । दीर्घ एवं काली आँखों केलिये नील कमल का उपमान परम्परा से चला आ रहा है । यहाँ युग संध्या पर ध्यानावस्थित सीता का वर्णन किया गया है । संध्या होते ही कमलदल का मूँद जाना लोकप्रसिद्ध है । पलकरूपी कमलदल मूँदते जा रहे हैं । मूँदती पलकों केलिये नीलकमलदल का अप्रस्तुत विशेष सार्थक है । कंधे पर लहराते कोमल कुन्तलों केलिये "युग संध्या के घने सुनहले तम "अत्यन्त भाव व्यंजक है और रूप साम्य पर आधारित है । संध्याकालीन सुनहला तम अत्यन्त मोहक एवं हृदयाकर्षक होता है । सीता के सघन कुन्तल सुनहले तम के समान है क्योंकि आगे की पंक्ति में कवि ने बताया है कि वह चन्द्रमुखी है । चन्द्रमुख की सुनहली आभा से कन्धे पर लहराते काले कुन्तलों का थोड़ा बहुत सुनहला दिखाई देना स्वाभाविक है ।

संध्याकालीन पूर्णचन्द्र काले धब्बों से लांछित है । सीता का चन्द्रमुख भी इस लांछन से बच नहीं पाया है । उसके भाल-मुकुर पर गत जीवन के लांछन का स्मृति कज्जल अंकित है । कहने का तात्पर्य यह है कि भू-चेतना सीता के वास्तविक महत्व को पहचानने की क्षमता गत पशुयुग की चेतना में नहीं थी । "दर्पण" का प्रयोग अत्यन्त भावपूर्ण है । मुख को हृदय का दर्पण कहा जाता है । सीता का माथा उनके अन्तस्तल में व्याप्त कलंक-स्मृति को व्यक्त कर रहा है । चन्द्रमुखी सीता चिन्ताग्रस्त एवं म्लान है । यह म्लानता चन्द्रमा के लांछन से समता रखती है ।

किन्तु युगप्रभात होने को है और प्रभात में जैसे ही अधखुले क्षितिजों पर वातावरण की सुनहली किरणें ज्योतिरेखा फैलाती हैं वैसे ही एक नवीन युग के आगमन की सूचना पाकर सीता का मानस मुक्तोज्वल स्मिति से चमकने लगता है । शुभ्र पयोधर केलिये प्रीति-सिंधु शिखर तथा "स्वर्ग मर्त्य के मधु उभार" ये दो उपमान दिये गये हैं, जो सार्थक हैं । चन्द्र के प्रति सागर का प्रेम सर्व-विदित है । चन्द्रमा के प्रभाव के कारण सागर तरंगायित हो उठता है । सीता के मानस में जो प्रेमसिन्धु है, वह भावी मर्त्य केलिये तरंगित हो रहा है । वक्षहार जीवन-मूल्यों की अमूल्य मणियों से गूँथा हुआ है और अक्षय प्रकाश से मण्डित है । वह कुशासन पर अपने शुभ्र श्रोणिजघनों को लगाये बैठी है, सुन्दर घुटने मुड़े हुए हैं । कटि कृश तथा सूक्ष्म है उस पर स्वर्णिम कौशेय बंधा हुआ है । अपने करतल पर चिबुक रखे, नत आनन बैठी है । सीता का यह बिम्ब अत्यन्त मोहक, ऐन्द्रिय एवं चित्रात्मक है ।

पर्वत प्रदेश को रंगीन चिड़िया के समान वर्णित है । यह एक सुन्दर प्राकृतिक बिम्ब है -

"कितने रंगों के पंखों से हो तुम भूषित
ओ गिरि-विहगिनि, रश्मि-ज्वाल शोभा में वेष्टित,
रंग-कुबेर बनाया लगता तुम को विधि ने
सुरधनुओं की रत्न-तूलि से कर तन चित्रित ।"[1]

---

1. पतझर एक भावक्रान्ति - पन्त, पृ.22

7·3· प्रतीक रूप

लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में पन्तजी अरविंद दर्शन से प्रभावित होने के कारण अनेक दार्शनिक प्रतीकों का प्रयोग किया है। कवि प्राकृतिक उपकरणों की कल्पना नाना रूपों में करता है और अभिव्यक्ति के समग्र उन्हें प्रतीक रूप में प्रस्तुत कर देता है। विश्व की वर्तमान स्थिति को प्रकट करना हो या भावी समाज की स्वर्णिम झाँकी का दिग्दर्शन अथवा दार्शनिक सिद्धान्तों की विवेचना, सभी प्रकार के विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम यहाँ प्राकृतिक प्रतीक बनते हैं। लोकायतन और परवर्ती रचनायें भी प्रतीकों से अछूता नहीं है। इसकी भी विशद चर्चा पिछले अध्याय में किया है।

अतिचेतनाकाल में पन्त ने श्रृंगारिक परिवेश में भी प्रकृति का संश्लिष्ट चित्रण किया है। कहीं कहीं ऐसे चित्रण अति स्पष्ट और यथार्थ की वर्जित सीमा तक पहुँच गये हैं। उदा·

"झुँक पड़ते कलियों के वतारे भा सुन मधु गुंजन कर रज गंध श्रवण ।
ज्वाला पंख फूलों में खिल उठती धरा योनि जी कामायें मादन[1]

यहाँ धरा योनि रस या चित् सृष्टि का प्रतीक है, इसीलिये चिर यौवना प्रकृति के अंगों में नूतन सौंदर्य क्रान्ति फूट पड़ती है और नव वसन्त की आत्मा अग जग में रूप दृष्टि का सम्मोहन भरने लगती हैं।

1· लोकायतन - पन्त, पृ·430

"स्वर्ग धेनुयें पूँछ उठाकर रम्भा रहीं सुन मर्म मौन स्वर,
अन्त: सलिला स्वर्गंगा के तीर विचर रस-कातर ।"[1]

यहाँ स्वर्ग धेनुयें स्वर्गिक सुख, शिव या कल्याण का प्रतीक बनकर प्रस्तुत हुई हैं । अन्त:सलिला, आनंद, पवित्रता और वृहत्तर चेतना की प्रतीक है ।

जीवन की बीती वयसन्धियों को चित्रित करने केलिये कवि ने प्रकृति के उपादानों को चुन लिया है । वसंत, ग्रीष्म, वर्षा और शरद मानव जीवन के प्रतीक बन गये हैं । बाल्य, यौवन, प्रौढ और बुढापा के प्रतीक रूप में इन चारों ऋतुओं का वर्णन कवि ने किया है -

"इसमें कुछ संदेह नहीं -
कुसुमित वसंत वय
बीत चुकी अब, कृच्छ्र ग्रीष्म
सुरधनु वर्षा भी
नहीं रहे अब ! मुझे शरद की
ज्ञान-नीलिमा के
आँगन में विचरण करना
सौम्य प्रौढि में ।"[2]

परवर्ती काव्यों में सर्वाधिक प्रयुक्त प्राकृतिक प्रतीक निम्नलिखित हैं -

"सोने का पंछी-स्वर्णिम गीत गानेवाले कवि
सुनहला पर्वत - नवीन आध्यात्मिक चेतना
स्वर्णशिखर - नव्यचेतना

1· किरणवीणा - पन्त, पृ·3
2· आस्था - पन्त, पृ·129

स्वर्णविभा - नवीन चेतना
अरुण ज्वाल - नवचेतना
रजतातप - आत्मनिर्माण
भू - यौवन - नवीन चेतना
भू - जीवन - भौतिकवादी भावनायें
सागर - चेतना आदि

7·4· मानवीकरण

पन्त-काव्य में प्रकृति के मानवीय रूप के शत-शत मोहक चित्र मिलते हैं। सौंदर्य चेतना के काल में ऐसे अनेक सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। लेकिन आध्यात्मिक चेतना में भी इसकी कमी नहीं है।

कवि ने एक नदी का सुन्दर मानवीकरण किया है। मानवजीवन की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण इसमें किया है। बचपन में मनुष्य उछल-कूदकर जीता है। युवावस्था में मदोन्मत्त होकर विचरता है। प्रौढावस्था में सभी यादों को समेटकर संयमित होकर, शान्त जीवन बिताता है। यौवनप्राप्त युवती के रूप में नदी का वर्णन ऐसा किया है -

"नव जल भार समेट
पीन छवि अंगों में भर
युवती बन तुम भेंटोगी[1]
कूलों को नि:स्वर।"

---

1 पतझर एक भावक्रांति - पन्त, पृ·69

हवा का ऐसा मानवीकरण किया है । पन्त जी ने प्रकृति के कठोर रूप का भी सजीव वर्णन किया है - बिजली रूपी अश्वों के रथ पर चढ़कर हवा अडिग पर्वतों के पंजरों को थर-थर कँपा देती है । समुद्र फेनोच्छ्वसित साँप के समान फन उठाकर नाचता है । अरण्य-विटपों के केशजाल को पकड़कर, सिंहों के समान भीषण होकर, बछड़ों से लीलाप्रिय होकर बहनेवाली हवा का सुन्दर वर्णन किया है -

"रुद्र पृश्नि के पुत्र मरूत् भी महत् शक्तिमय,
पिंगल विद्युत् अश्वों के स्यंदन पर चढ़कर
जब वे आते, गाते और गरजते दुर्वह,
अडिग पर्वतों के पंजर कँप उठते थर् थर् ।
सिन्धु विलोडित होते फेनोच्छ्वसित नचा फन,
मत्त गजों से पैठ रौंदते वे अरण्य को,
केशजाल कानन विटपों के खींच, नोंच कर ।
सिंहों - से भीषण वे, बछड़ों - से क्रीडा प्रिय,
दुग्ध धार, मधु, घृत बरसाते उर्वर भू पर ।"[1]

गिरिमाला की पृथु श्रोणी पर लेटनेवाले आकाश का मानवीकरण ऐसा किया है -

"शिखरों के वक्षों में डूब
दरियों के जघनों पर मोहित,
गिरिमाला की पृथु श्रोणी पर
लेटा रहता नभ सुख विस्मृत ।"[2]

1· सत्यकाम - पन्त, पृ·6,7
2· लोकायतन - पन्त, पृ·617

ब्राह्म मुहूर्त के बाद वधू उषा ने तमिस्र का अवगुंठन उठा दिया । जब प्रकाश की पहली सुनहली किरण पृथ्वी पर आयी तब भूमि के सभी पशु-पक्षी और मानव सक्रिय हो गये । निशि के प्रतिनिधि वन्य-काक प्रभात के अग्रदूत बन गये । सभी गायें दुग्ध-भार से अपने वत्सों को बुलाने लगीं । कवि ने उषा का ऐसा सुन्दर मानवीकरण किया है -

"धन्य उषे, दिव दुहिते, दुहो प्रकाश धेनुएँ,
भुवनों के पात्रों में भर चेतना दुग्ध नव ।"[1]

इसमें उषा, प्रकाशरूपी गायों को दुह रही है । चैतन्य रूपी नये दूध को भुवनों के पात्रों में वह भर रही है । उषा के इस चित्रण में एक नूतनता दिखाई पड़ती है । छायावादी काव्यों में ऐसा सुन्दर प्रकृति चित्रण दुर्लभ है ।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्रकृति के ऐसे मानवीकृत रूप-चित्रों के मूल में पन्तजी की आध्यात्मिक चेतना का प्रभाव वर्तमान है ।

7·5· <u>रहस्यमय रूप</u>

"ओ रहस्य-अंगुलि,
इंगित पा मौन तुम्हारा
मुझे बुलाता - सा
अकूल का नील किनारा ।

1· सत्यकाम - पन्त, पृ·72

परा - चेतना लेखा - सी,
नभ उर में अंकित
तुम्हें अमृतमयि, करता
तन मन सहज समर्पित ।[1]"

प्रकृति सौंदर्य पर आत्मविस्मृत होनेवाला कवि हमें एक रहस्यमय संसार की ओर ले जाता है । इन पंक्तियों में कवि ने रहस्यमयी प्रकृति के अनिंद्य सौंदर्य का वर्णन किया है । "पल्लव" की "मौननिमंत्रण" कविता की छाया है । चन्द्रकला की शोभा देखकर कवि में एक समर्पण की भावना जागृत हो गयी । ये रहस्यमयी एक अलौकिक सत्ता का आभास देती हैं । "रहस्यमयी अंगुली", "परा चेतना" आदि शब्दों में उनका आध्यात्मिकबोध लक्षित होता है ।

कवि स्वयं पूछता है कि मेघों से मेरा क्या संबंध है ? मेघों के कोमल स्वप्नों से कवि के अन्तर का दुःख एकदम खो जाता है । आध्यात्मिक विचारधारा से प्रभावित कवि अंत में इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि मातृ प्रकृति के विस्मय संबंध के अतिरिक्त और कोई निकट संबंधी उसे नहीं है -

"जाने क्या संबंध गूढ
मेघों से मेरा
रिमझिम झिम सुन
मन अनजाने हर्षित होना ।[2]"

1· पतझर एक भाव क्रांति - पन्त, पृ·19
2· आस्था - पन्त, पृ·61

7·6· निष्कर्ष

पन्तजी की परवर्ती रचनाओं के प्रकृति चित्रण की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उनके द्वारा प्रस्तुत सूर्य, चन्द्र, धूप, वर्षा, पतझर, हिम, वसन्त, हिमालय, तृण, तरु, पत्ते आदि सभी प्राकृतिक उपकरण वह विस्तृत आयाम प्रस्तुत करते हैं जहाँ अखण्ड, चिरन्तन, श्रीसुषमा और पवित्रता का वातावरण है जो अपने पुलक - स्पर्श से कवि तथा उनके पाठकों के भी अन्तःकरण को सात्विक बनाता है । प्रकृति के इस जग से एकरस होकर कवि का व्यक्तित्व भी विश्व-जीवन का अंग बन जाता है । आध्यात्मिक चेतना के इस चरण में कवि का रचनात्मक मन स्थूल वनस्पतियों, पशु-पक्षियों आदि को अतिक्रमित कर एक दिव्य विभा से भूषित हो उठता है । प्रकृति का यही दिव्य अजेय और अनामय सौंदर्य पन्त के मन को अपनी ओर आकर्षित करता है जो मनुष्य को भी पावक स्पर्शों से छूकर तीर्थ-स्नात, तन्मय, अन्तःकेन्द्रित और अपनी असीमता की पवित्रता में सद्यःस्मित करता है[1] ।" निश्चित ही यह शुभ्र सौंदर्य सत्, चित् और आनंदमयी सृष्टि का अभिन्न अंग है ।

पन्तजी की प्रकृतिपरक कवितायें हिन्दी साहित्य की अक्षय निधि हैं । लोकायतन और परवर्ती रचनायें भी प्रकृति के सौंदर्यांकन की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं । यद्यपि पन्तजी के सौंदर्यचेतनायुग के काव्यों के प्राकृतिक सौंदर्य चित्रों की मोहक समृद्धि उनमें नहीं है फिर भी प्रकृति के अनिंद्य सौंदर्य मुग्ध एक विचारशील कवि का अनुरागी मन परवर्ती रचनाओं की कई पंक्तियों में झांकता है, ऐसा कहा जा सकता है ।

****

1· शंखध्वनि - पन्त, पृ·22

आठवाँ अध्याय

उपसंहार

आठवाँ अध्याय

8 • उपसंहार

पिछले अध्यायों के अनुशीलन से लोकायतन तथा अन्य परवर्ती रचनाओं की प्रमुख विशेषतायें उद्घाटित हो चुकी हैं। पन्तजी के काव्य-व्यक्तित्व की सब से बड़ी विशेषता यह है कि जीवन के प्रति उनकी सहज उन्मुखता। "वीणा" से लेकर "संक्रांति" तक की उनकी काव्य-यात्रा में यह जीवनोन्मुखता सदैव भिन्न भिन्न आयामों में प्रकट होती रही है। उनके लिये जीवन-दर्शन का महत्व नहीं, जीवन-दृष्टि का महत्त्व होता है। पंतजी की यह जीवनदृष्टि बहुत ही गतिशील है। उनकी जीवन-दृष्टि आद्यन्त मुख्यत: दो प्रेरक तत्वों से परिचालित हुई है - पूर्णता की खोज और सामंजस्य की खोज।

पन्तजी की खोज प्रारंभ से पूर्णजीवन की ओर रही है। कोई दर्शन, कोई वाद, कोई संप्रदाय, कोई दृष्टि उस खोज की सारी शर्तों को पूरा नहीं कर पाती। इसीलिये गांधी, मार्क्स और अरविन्द से पन्त पूरी तरह सहमत नहीं थे। अपने विलक्षण भाव-दृष्टि के द्वारा वे जीवन की पूर्णता की परिकल्पना करते थे। पूर्ण से पूर्णतर की ओर जाना पन्त का लक्ष

सौंदर्य-चेतना, सामाजिक चेतना और आध्यात्मिक चेतना के क्रम से इस खोज का विकास प्रायः निरूपित किया जाता है । इसलिये उन्हें संपूर्णता के कवि कहना उचित है । क्योंकि पन्तजी ने उपर्युक्त तीनों दिशाओं में व्याप्त अपनी कविताओं के द्वारा समग्र जीवन को समझने की कोशिश की है ।

उनकी जीवन-दृष्टि को निर्धारित करनेवाली दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता सामंजस्य भावना है । जीवन के वैषम्यों, अनेकताओं और विरोधों में पन्तजी एक सामंजस्य की खोज करते रहते हैं । वे मानव के अन्तः और बाह्य, ऊर्ध्व और समतल संचरण के समन्वय का प्रयास करते थे । पन्त के लोकायतन और परवर्ती काव्य एक प्रकार से सामंजस्य के ही काव्य हैं । इस प्रकार भौतिकता तथा आध्यात्मिकता इन दोनों का समन्वय करनेवाला पन्त-काव्य जीवन की संपूर्णता का काव्य है ।

"लोकायतन" युग जीवन का महाकाव्य है । उसमें पृथ्वी के जीवन का राग-शोक, दुःख-दैन्य और पाप-ताप दिखाई पड़ता है । जीवन के गहन स्तरों के विश्लेषण और भवसागर के प्रचण्ड मन्थन से पन्तजी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पृथ्वी के धूल भरे जीवन की सहजता से ही मानव जीवन सफल हो सकता है । इस काव्य में जो रहस्यमयता है उसके पीछे एक नये सौन्दर्य जीवन की दार्शनिक परिकल्पना स्पन्दित हो रही है । इस रचना का उद्देश्य आधुनिक युग के आध्यात्मिक दारिद्र्य और बौने मूल्यों की स्वीकृति से उत्पन्न सामाजिक अधोगति को दूरकर मानव के मनोन्नयन के द्वारा सामूहिक मुक्ति प्राप्त करना है । लोकायतन में कवि आस्थावादी हैं । इसलिये मनुष्य के सतत विकास में उन्हें विश्वास है । वे आधुनिक मानव-समाज के "बहिरन्तर" को विकसित कर उसे श्री अरविंद की तरह एक आत्म-योग के रूप में देखना चाहते हैं । इसे प्राप्त करने केलिये वे मनुष्य के बहिरन्तर जीवन का उन्नयन चाहते हैं ।

उनकी दृष्टि में लोक संगठन केलिये मन-संगठन आवश्यक है । वे लोगों का भौतिक और आध्यात्मिक विकास चाहते हैं । उनकी दृष्टि में वैयक्तिक मोक्ष के बदले सामूहिक मोक्ष ही श्रेष्ठ है । लोकायतन में कवि कल्पना की अन्तर्दृष्टि से एक नवीन आदर्श लोक की सृष्टि करता है । वर्तमान से एक नवीन आदर्श लोक की सृष्टि करता है । वर्तमान से ऊपर उठकर मंगलप्रद सुखमय भविष्य का अंकन करना ही इस महाकाव्य का लक्ष्य है । यह सर्वांगीण चेतना का काव्य है क्योंकि मानव जाति के सर्वांगीण विकास केलिये अधिक महत्व दिया है ।

परवर्ती रचनाओं में इधर उधर कवि की चेतनात्मक अनुभूतियाँ बिखरी पड़ी हैं । इन में से अधिकांश कविताओं में दार्शनिकता एवं सामाजिक दृष्टि का समन्वय है । कवि की राय में भौतिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति भी महत्वपूर्ण है । कवि ने आज के भावनात्मक संघर्ष के अंधकार को दूरकर आशापूर्ण प्रकाश की कामना की है । कहीं कहीं उनकी दार्शनिक भावना सरल, सुबोध और मर्मस्पर्शी हो गयी है । कवि ने बाह्यक्रांति आन्तरक्रांति के बिना अपूर्ण मानी है । उन्होंने अपनी रचनाओं से नवजागरण का संदेश दिया है । उनकी दृष्टि में भारत का जीवन-बोध नैतिक संस्कृति और परिस्थितियों के अधीन न होकर सदैव आत्मबोध की व्यापक दृष्टि से अनुप्राणित रहा है । कुछ रचनाओं में जीवन की गंभीर अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है । कहीं-कहीं युग-संघर्ष का यथातथ्य वर्णन है । अधिकांश रचनाओं में उनकी आस्तिकता एवं आशावाद ही लक्षित होता है । आज के लोग आंतरिक मूल्यों की अपेक्षा बाह्य वस्तुगत मूल्यों पर अधिक ज़ोर देते हैं । पन्तजी ने लोगों के इस दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने की कोशिश की है ।

पन्तजी समन्वयवादी हैं । आध्यात्मिकता और भौतिकता का समन्वय ही उनकी परवर्ती रचनाओं का प्रधान लक्ष्य है । उन्होंने वैदिक औपनिषदिक सत्य को धरती के जीवन पर सफल बनाने का प्रयत्न किया है । अंतिम रचनाओं में प्रकृतिप्रेम, आशावादी समन्वयात्मक दृष्टि, सामासिक विचार-धारा, यांत्रिक सभ्यता के प्रति विरोध, नारी स्वातंत्र्य के प्रति आग्रह और आक्रोश, मानव सेवा को ईश्वर सेवा का पर्याय मानना, सत्यं शिवं सुन्दरं की भावना आदि कई विचार धारायें दर्शित होती है । "सुन्दर से सुन्दरतर, सुन्दरतर से सुन्दरतम" गानेवाले पन्तजी अपने काव्य-जीवन के अंतिम चरण में "सुन्दरं" से बढ़कर सत्यं शिवम् के अन्वेषक हो गये । इस प्रकार लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में आध्यात्मिक चेतना को विभिन्न सामाजिक संदर्भों में स्थापित किया है । उन्होंने भावी मानव समाज में सुख और शान्ति केलिये भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय चाहा है । परवर्ती सभी कृतियों में यही दर्शोन्मुख सामाजिक भावना लक्षित होती है ।

छायावादी कवियों में आध्यात्मिकता से सर्वाधिक प्रेरित होकर विस्तृत काव्यसृजन में रत होनेवाले अकेले कवि पन्तजी हैं । अन्य छायावादी कवियों ने आध्यात्मिकता से ओतप्रोत इतनी पंक्तियाँ नहीं लिखी हैं । पन्तजी की परवर्ती रचनाओं में अरविंद की आध्यात्मिकता, उपनिषदों की विचार-धारा, अद्वैतवाद, मार्क्सवाद, गांधीवाद और नवमानवतावाद का प्रभाव दिखाई पड़ता है । इन में से मुख्य रूप से पन्तजी ने अरविंद-दर्शन को अपनाया है । उनकी दार्शनिकता की केन्द्रबिन्दु बहिरन्तर समन्वय है । "वसुधैवकुटुम्बकम्" की भावना उनकी अंतिम कृतियों में ज्यादा प्रतिबिम्बित होती है । कोमल भावना के प्रेमी पन्तजी की परवर्ती रचनायें विश्वप्रेम में परिणत होती हैं और वे स्नेह के सूत्र से सब को पिरोने के पक्ष में हैं ।

यही उनकी नवीन विश्व-भावना अथवा विश्वमानव की कल्पना है । दर्शन के क्षेत्र में कवि ने भारतीय चिन्तन को एक नयी दिशा दी है । इन रचनाओं में उन्होंने शंकर-दर्शन के "जगन्मिथ्या" की उपेक्षा कर भू जीवन के सत्य की प्रतिष्ठा की है । इस प्रकार छायावादी काव्यपरम्परा में लोकायतन और परवर्ती रचनायें दार्शनिकता के क्षेत्र में एक अनोखा स्थान रखती हैं ।

लोकायतन और परवर्ती काव्यों के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त रचनायें मात्र दार्शनिक तथा आध्यात्मिक विचारों की अभिव्यक्तियाँ नहीं हैं । उपर्युक्त रचनाओं में यत्र-तत्र सामयिक जीवन की छाप पड़ी है । पन्तजी युगचेतना से एक दम असंपृक्त रहकर काव्य-सृजन करनेवाले कवि नहीं । इसी कारण से आध्यात्मिक विचारों की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जानेवाली लोकायतन तथा उनकी परवर्ती रचनाओं में भी सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों ने अभिव्यक्ति पायी है । यह पन्तजी के कविकर्म की ओर एक विशिष्टता समझनी चाहिये । "लोकायतन" में भावी युग में समाज की संरचना किस प्रकार होगी उसका सुन्दर चित्रण भी किया है । उनकी सामाजिकता का मुख्य विषय - नवीन जीवन मूल्य, ग्राम और शहरी जीवन, मध्यवर्गीय जनता, समाज में नारी का स्थान, कर्मण्यता का उद्बोधन, आदर्श समाज की स्थापना आदि है । आपात्कालीन वातावरण की समस्यायें भी कवि के मन में प्रतिध्वनित हो गयीं । उसका नग्न-चित्रण "गीत-अगीत" और "संक्रांति" की कविताओं में लक्षित होता है । कवि की मान्यता है कि भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति केवल अमीरों केलिये आवश्यक नहीं बल्कि ये सभी केलिये सुलभ होनी चाहिये । यही उनके नवीन दार्शनिक समाजवाद का मुख्य तत्व है । "लोकायतन", "गीत-अगीत", "संक्रांति" आदि रचनाओं में उनकी राजनीतिक विचारधारा मुखरित है । "लोकायतन" में "हरि" के माध्यम से कवि ने शासन-व्यवस्था के

पन्तजी समन्वयवादी हैं । आध्यात्मिकता और भौतिकता का समन्वय ही उनकी परवर्ती रचनाओं का प्रधान लक्ष्य है । उन्होंने वैदिक औपनिषदिक सत्य को धरती के जीवन पर सफल बनाने का प्रयत्न किया है । अंतिम रचनाओं में प्रकृतिप्रेम, आशावादी समन्वयात्मक दृष्टि, समसामयिक विचार-धारा, यांत्रिक सभ्यता के प्रति विरोध, नारी स्वातंत्र्य के प्रति आग्रह और आक्रोश, मानव सेवा को ईश्वर सेवा का पर्याय मानना, सत्यं शिवं सुन्दरं की भावना आदि कई विचार धारायें दर्शित होती है । "सुन्दर से सुन्दरतर, सुन्दरतर से सुन्दरतम" गानेवाले पन्तजी अपने काव्य-जीवन के अंतिम चरण में "सुन्दरं" से बढ़कर सत्यं शिवम् के अन्वेषक हो गये । इस प्रकार लोकायतन और परवर्ती रचनाओं में आध्यात्मिक चेतना को विभिन्न सामाजिक संदर्भों में स्थापित किया है । उन्होंने भावी मानव समाज में सुख और शान्ति केलिये भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय चाहा है । परवर्ती सभी कृतियों में यही दर्शोन्मुख सामाजिक भावना लक्षित होती है ।

छायावादी कवियों में आध्यात्मिकता से सर्वाधिक प्रेरित होकर विस्तृत काव्यसृजन में रत होनेवाले अकेले कवि पन्तजी हैं । अन्य छायावादी कवियों ने आध्यात्मिकता से ओतप्रोत इतनी पंक्तियाँ नहीं लिखी हैं । पन्तजी की परवर्ती रचनाओं में अरविंद की आध्यात्मिकता, उपनिषदों की विचार-धारा, अद्वैतवाद, मार्क्सवाद, गांधीवाद और नवमानवतावाद का प्रभाव दिखाई पड़ता है । इन में से मुख्य रूप से पन्तजी ने अरविंद-दर्शन को अपनाया है । उनकी दार्शनिकता की केन्द्रबिन्दु बहिरन्तर समन्वय है । "वसुधैवकुटुम्बकम्" की भावना उनकी अंतिम कृतियों में ज्यादा प्रतिबिम्बित होती है । कोमल भावना के प्रेमी पन्तजी की परवर्ती रचनायें विश्वप्रेम में परिणत होती हैं और वे स्नेह के सूत्र से सब को पिरोने के पक्ष में हैं ।

यही उनकी नवीन विश्व-भावना अथवा विश्वमानव की कल्पना है । दर्शन के क्षेत्र में कवि ने भारतीय चिन्तन को एक नयी दिशा दी है । इन रचनाओं में उन्होंने शंकर-दर्शन के "जगन्मिथ्या" की उपेक्षा कर भू जीवन के सत्य की प्रतिष्ठा की है । इस प्रकार छायावादी काव्यपरम्परा में लोकायतन और परवर्ती रचनायें दार्शनिकता के क्षेत्र में एक अनोखा स्थान रखती हैं ।

लोकायतन और परवर्ती काव्यों के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त रचनायें मात्र दार्शनिक तथा आध्यात्मिक विचारों की अभि-व्यक्तियाँ नहीं हैं । उपर्युक्त रचनाओं में यत्र-तत्र सामयिक जीवन की छाप पड़ी है । पन्तजी युगचेतना से एक दम असंपृक्त रहकर काव्य-सृजन करनेवाले कवि नहीं । इसी कारण से आध्यात्मिक विचारों की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जानेवाली लोकायतन तथा उनकी परवर्ती रचनाओं में भी सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों ने अभिव्यक्ति पायी है । यह पन्तजी के कविकर्म की ओर एक विशिष्टता समझनी चाहिये । "लोकायतन" में भावी युग में समाज की संरचना किस प्रकार होगी उसका सुन्दर चित्रण भी किया है । उनकी सामाजिकता का मुख्य विषय - नवीन जीवन मूल्य, ग्राम और शहरी जीवन, मध्यवर्गीय जनता, समाज में नारी का स्थान, कर्मण्यता का उद्बोधन, आदर्श समाज की स्थापना आदि है । आपात्कालीन वातावरण की समस्यायें भी कवि के मन में प्रतिध्वनित हो गयीं । उसका नग्न-चित्रण "गीत-अगीत" और "संक्राति" की कविताओं में लक्षित होता है । कवि की मान्यता है कि भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति केवल अमीरों केलिये आवश्यक नहीं बल्कि ये सभी केलिये सुलभ होनी चाहिये । यही उनके नवीन दार्शनिक समाजवाद का मुख्य तत्व है । "लोकायतन", "गीत-अगीत", "संक्राति" आदि रचनाओं में उनकी राजनीतिक विचारधारा मुखरित है । "लोकायतन" में "हरि" के माध्यम से कवि ने शासन-व्यवस्था के

अन्यायों का वर्णन किया है । जनतंत्र शासन में साधारण जीवन जीना बहुत मुश्किल है । "संक्रांति" में 1977 के निर्वाचन से जो परिवर्तन हुआ उसका पन्तजी हार्दिक स्वागत करते हैं और साथ ही जनतंत्र के कार्यान्वयन में दृष्टिगत दोषों के प्रति भी वे चिन्तित हैं । आपात्काल में देश में जो राजनीतिक और सामाजिक अन्याय हुए उनका अंकन अंतिम रचनाओं से मिलता है । हम कह सकते हैं कि सामाजिक और राजनीतिक विचारधारा में भी उन्होंने एक दार्शनिक एवं समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाया ।

लोकायतन और परवर्ती रचनायें कथ्य की दृष्टि से ही नहीं बल्कि काव्य भाषा, प्रतीकविधान, अप्रस्तुत योजना, बिम्ब विधान, छंद-योजना और काव्यरूप की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है । पन्तजी की काव्यभाषा के विकास की दृष्टि से परवर्ती रचनायें महत्वपूर्ण हैं । इन काव्यों की भाषा अधिक गद्यात्मक, बौद्धिक एवं नयी कविता की भाषा के निकट है । फिर भी दार्शनिक रंग इस की भाषा में सर्वत्र मिलता है । इन काव्यों में पन्तजी ने अनेक नये शब्दों का प्रयोग किया है । इसके अलावा अर्थ और गति के अनुसार अनेक नये बहुवचन शब्द, स्त्रीलिंग और पुल्लिंग नियमों का लंघन आदि दिखाई पड़ते हैं । इन रचनाओं में वैदिक दार्शनिक प्रतीकों और बिम्बों की प्रधानता है । लेकिन उन्होंने अलंकारों की उपेक्षा नहीं की । छंद के क्षेत्र में उनकी देन है "नंदन छंद" । इन रचनाओं में उन्होंने छन्द के अलावा बाह्य एवं आभ्यंतर लय को अधिक प्रतिष्ठा की है । काव्यरूप की दृष्टि से "लोकायतन" और "सत्यकाम" बहुत ही महत्वपूर्ण महाकाव्यात्मक उपलब्धियाँ हैं ।

इन सभी विशेषताओं के अतिरिक्त "लोकायतन" और परवर्ती रचनाओं में यत्रतत्र प्रकृति के मनोमुग्धकारी रूप भी देखने को मिलता है । लेकिन उन प्राकृतिक वर्णनों में भी एक दार्शनिकता की झलक दिखाई देती

संक्षेप में लोकायतन और परवर्ती रचनायें पन्तजी की काव्य यात्रा की नूतन दिशा की परिचायक हैं। पन्तजी के काव्यजीवन का यह तीसरा चरण बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि आरंभिक अवस्था में केवल गीत और प्रगीत लिखनेवाले पन्त जी ने दो महाकाव्यों - "लोकायतन" और "सत्यकाम" की रचना इस काल में ही की है। ऐसा लगता है कि इन काव्यों तक आते आते वे अपनी रोमांटिक अवस्था को छोड़कर एक नवीन क्लासिकी अवस्था लेकर चल रहे हैं। पन्त जी की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उनकी कृतियों के साथ उनके व्यक्तित्व का सुन्दर सामंजस्य हुआ है। उनके कृतित्व का विकास एक प्रकार से उनके व्यक्तित्व के विकास का ही द्योतक है। पन्त-काव्य के अध्येताओं को चिन्तन की एक नयी भूमि की ओर आकर्षित करनेवाली उपर्युक्त रचनाओं का आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास में अपना महत्व है।

सहायक ग्रन्थ सूची

श्री सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य

1 अतिमा — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण सं॰2015

2॰ आस्था — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1973

3॰ उत्तरा — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली तृतीय संस्करण 1968 द्वितीय संस्करण सं॰2012

4॰ कला और बूढा चाँद — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1960

5॰ किरणवीणा — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र॰ संस्करण 1967

6॰ ग्राम्या — भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, आठवाँ सं॰1972

7॰ गीतहंस — लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद, प्र॰सं॰1969

8॰ गीत-अगीत — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र॰सं॰1977

9· गुंजन — भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद,
आदर्श आवृत्ति 1972
दशम संस्करण संवत् 2018

10· गंधवीथी — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं·1973

11· ग्रन्थि — भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग
चतुर्थ संस्करण संवत् 2014

12· ग्राम्या — भारती भण्डार, लीडर प्रेस,
इलाहाबाद, षष्ठ संस्करण
पाँचवाँ संस्करण संवत् 2013

13· चिदम्बरा — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,
चतुर्थ संस्करण 1973, द्वितीय सं·1966

14· चित्रांगदा — राजकमल एण्ड सन्ज, दिल्ली,
प्र·सं·1959

15· पतझर एक भावक्रांति — राजपाल एण्ड सन्ज़, काश्मीरी गेट,
दिल्ली-6, प्रथम संस्करण,1969

16· पल्लव — राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
आठवाँ संस्करण, 1977
सातवाँ संस्करण 1963

17· पल्लविनी — राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
चतुर्थ संस्करण सं·2020

18. पुरुषोत्तम राम — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण

19. पौ फटने से पहले — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
प्र०सं० 1967

20. मुक्तियज्ञ — राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
प्र०सं० 1965

21. युगपथ — भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग
प्रथम संस्करण 1949

22. युगवाणी — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
चतुर्थ संस्करण 195

23. युगांत — भारती भंडार
चतुर्थ सं०
दिल्ली

27· वाणी — भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, द्वितीय संस्करण 1963

28· वीणा — भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण सं·2007

29· वीणा - ग्रन्थि — भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1945

30· शब्दध्वनि — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6, प्रथम संस्करण 1971

31· शशि की तरी — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6 प्रथम संस्करण 1971

32· शिल्पी — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6 प्रथम संस्करण 1951

33· सत्यकाम — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6, प्रथम संस्करण 1975

34· समाधिता — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6 प्रथम संस्करण 1973

35· सौवर्ण — भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण 1963

36· संक्रांति — लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1977

37· संयोजिता — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1969

38· स्वर्णकिरण — भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद चतुर्थ संस्करण 1971 तृतीय संस्करण संवत् 2020

39· स्वर्णधूलि — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1956 संस्करण 1959

40· स्वर्णिम रथचक्र — लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1968

पन्त की गद्य रचनायें

41· सुमित्रानंदन पन्त — छायावाद पुनर्मूल्यांकन लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1965

42· सुमित्रानंदन पन्त — शिल्प और दर्शन रामनारायणलाल बेनी माधव इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1961

43· सुमित्रानंदन पन्त — साठ वर्ष एक रेखांकन राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1960

44· सुमित्रानंदन पन्त — श्री सुमित्रानंदनपन्त स्मृतिचित्र (अभिनंदन अनुष्ठान) राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1960

45· सुमित्रानंदन पन्त — आधुनिक कवि 2
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
ग्यारहवीं आवृत्ति, द्वितीय संस्करण,
आठवाँ संस्करण ।

अन्य सहायक ग्रन्थ

46· अज्ञेय — हिन्दी साहित्य का आधुनिक परिदृश्य
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1967

47· अज्ञेय — आलवाल
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,
द्वितीय संस्करण 1977

48· अज्ञेय — स्रोत और सेतु
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1978

49· अज्ञेय — रूपाम्बरा
भारतीय ज्ञानपीठ, सं·1960

50· अज्ञेय — साहित्य और समाज परिवर्तन की
नाशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दि
प्र·सं·1985

51· डॉ· अन्नपरेड्डी श्रीरामरेड्डी - पन्त काव्य में सौंदर्य भावना
हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ
प्रथम संस्करण 1976

60· कान्ता पन्त — पन्त की काव्यभाषा शैली-वैज्ञानिक विश्लेषण
लोकभारती, इलाहाबाद, प्र·सं· 1981

61· डॉ· विश्वर सुल्ताना — पन्त काव्य में कला शिल्प और सौंदर्य
सजीव प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र·सं· 1984

62· डॉ· कुमार विमल — छायावाद का सौंदर्य शास्त्रीय अध्ययन
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
प्र·सं· 1970

63· डॉ· कुमार विमल — महादेवी का काव्य सौष्ठव
अनुपम प्रकाशन, पटना, प्र·सं· 1983

64· डॉ· कुमार विमल — आधुनिक हिन्दी काव्य
अर्चना प्रकाशन, बिहार, प्र·सं· 1964

65· कैलाश वाजपेयी — आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, प्र·सं· 19

66· डॉ· केदारनाथ सिंह — आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्बविधान
भारतीय ज्ञानपीठ, प्रकाशन जुलाई 197

67· डॉ· एन·पी· कुट्टनपिल्लै — पन्त काव्य में बिम्ब योजना
दक्षिण प्रकाशन, गांधी बाज़ार,
हैदराबाद, प्र·सं· 1964

68· कृष्णदत्त पालीवाल — सुमित्रानंदन पन्त, साहित्य अकादेमी, प्र·सं· 1985

69· डा· कृष्णा शारदा — आधुनिक हिन्दी काव्य पर अरविंद दर्शन का प्रभाव
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण, संवत् 2029

70· प्रो क्षेम — छायावाद के गौरव चिह्न
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी
प्रथम संस्करण 1962

71 डा· गणपतिचन्द्र गुप्त — हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास
भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़-2,
प्रथम खण्ड, संस्करण 1965

72· गजानन माधव मुक्तिबोध — समीक्षा की समस्यें,
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1982

73· गोपालदास नीरज तथा सुधा सक्सेना — सुमित्रानंदन पन्त कला, काव्य और दर्शन
आत्माराम एण्ड संस, काश्मीरी गेट,
दिल्ली-6, प्र·सं· 1963

74· डा· एन· चन्द्रशेखरन नायर — प्रतीकी कवि सुमित्रानंदन पन्त
श्रीनिकेतन प्रकाशन, त्रिवेन्द्रम

75· डॉ॰ चंद्रकला — सुमित्रानंदन पन्त
मंगल प्रकाशन, जयपुर, सं॰ 1965

76· चित्रा शर्मा — कामायनी में प्रतीकविधान
पंचशील प्रकाशन, जयपुर-3,
सं॰ 1972

77, डॉ॰ देलिशैव — सुमित्रानंदन पन्त - आधुनिक हिन्दी
कविता में परम्परा और नवीनता
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र॰सं॰ 1970

78· जगदीशदत्त शर्मा — पन्त काव्य में अंग्रेजी अलंकार
अखिल भारतीय विक्रम परिषद्,
मुजफ्फर नगर, प्र॰सं॰ 1970

79· जानकीवल्लभ शास्त्री — त्रयी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,
सं॰ 1970

80· डॉ॰ जितराम पाठक — आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना
का विकास
राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद-6, प्रथम-
संस्करण 1976

81· तनसुखराम गुप्त — निबंध प्रभाकर
सूर्य-प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली
संस्करण 1987

82· डॉ॰ तारकनाथ बाली — सुमित्रानंदन पन्त और उत्तरा
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा,
सं॰ 1955

83· डा· द्वारिकाप्रसाद सक्सेना — हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
द्वितीय संस्करण 1971

84· देवव्रतशर्मा — निराला के काव्यबिम्ब और प्रतीक
आशा प्रकाशन गृह, नई दिल्ली,
संस्करण 1973

85· देवेन्द्रशर्मा इन्द्र — रश्मिबंध तथा सुमित्रानंदन पन्त,
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा,
प्रथम संस्करण 1961

86· देवेन्द्र इस्सर — साहित्य और आधुनिक युग बोध
कृष्णा ब्रदर्स, कचहरी रोड,
अजमेर, प्र·सं· 1973

87· डा· नगेन्द्र — सुमित्रानंदन पन्त
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-6
प्रथम संस्करण 1967
साहित्य रत्न भण्डार, आगरा,
अष्टम संस्करण, संवत् 2014

88· डा· नगेन्द्र — हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास
(दशम भाग)
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
संस्करण संवत् 2028

89. डॉ॰ नगेन्द्र — आधुनिक हिन्दी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
संस्करण 1962

90. नामवरसिंह — छायावाद
सरस्वती प्रेस, बनारस, सं॰ 1955

91. डॉ॰ नित्यानंदशर्मा — आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीक विधान
साहित्य सदन, देहरादून,
प्रथम संस्करण जन्माष्टमी 2023

92. डॉ॰ निर्मल बरूणी — पन्त साहित्य आत्मकथात्मक परिदृ
राष्ट्रभाषा प्रकाशन, दिल्ली ।
प्रथम संस्करण 1977

93. निर्मला जैन — बदलते परिप्रेक्ष्य
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,
संस्करण 1968

94. निर्मला जैन — आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधा
नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
प्रथम संस्करण 1963

95. निराला — पन्त और पल्लव
गंगा पुस्तकमाला कार्यालय
लखनऊ, प्रथमावृत्ति 1949

96· निराला — प्रबन्ध पद्म
राजेन्द्र नगर, पाटना
द्वितीय संस्करण 1965
गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ
चतुर्थावृत्ति 1966

97· डॉ· नेमनारायण जोशी — सुमित्रानंदन पन्त का नवचेतना काव्य
1937-1967 ई·
एस·चन्द एण्ड कंपनी,
राम नगर, नई दिल्ली ।

98· डॉ· नेमनारायण जोशी — चिन्तन अनुचिन्तन
संघी प्रकाशन, जयपुर,
सं· 1975

99· नेमीचन्द्र जैन — बदलते परिप्रेक्ष्य
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
प्रथम संस्करण 1968

100· आ· नंददुलारे वाजपेयी — आधुनिक काव्यरचना और विचार
सार्थी प्रकाशन, सागर, सं·1962

101· आ· नंददुलारे वाजपेयी — कवि सुमित्रानंदन पन्त
दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया
लिमिटेड, नई दिल्ली, प्र·सं·1971

102· आ· नंददुलारे वाजपेयी — कवि निराला
वाणी वितान, प्रकाशन,
वाराणसी, प्र·सं·1965

103· डॉ· पुत्तूलाल शुक्ल — आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना
लखनऊ विश्वविद्यालय,
विक्रमाब्द 2014

104· डॉ· प्रतापसिंह चौहान — पन्त का काव्यदर्शन
प्रत्यूष प्रकाशन, कानपुर
संस्करण 1963

105· डॉ· प्रतापसिंह चौहान — पन्त काव्य और अरविंद दर्शन
युगवाणी प्रकाशन, कानपुर,
सन् 1955

106· प्रभाकर श्रोत्रिय — कविता की तीसरी आँख,
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
नई दिल्ली, प्र·सं· 1980

107· डॉ· प्रमोदसिन्हा — छायावादी कवियों का सांस्कृतिक दृष्टिकोण
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
संस्करण 1976

108· प्रेमलता बाफना — पन्त का काव्य
साहित्य सदन, देहरादून, सं· 1969

109· डॉ· प्रेमशंकर — हिन्दी स्वच्छंदतावादी काव्य
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,
भोपाल, सं· 1974

110· डॉ· ब्रिजरानी भार्गव — पन्त के काव्य में कल्पना का कर्तृत्व
बाफना प्रकाशन, जयपुर,
संस्करण 1972

111· भारत भूषण अग्रवाल — प्रसंगवश,
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण 1970

112· " " — कवि की दृष्टि
दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया
लिमिटेड, दिल्ली, प्र·सं·1978

113· डॉ· भगवतीप्रसाद शुक्ल — आंचलिकता से आधुनिकता बोध,
ग्रन्थम, कानपुर, प्रथम संस्करण 1972

114· डॉ· भैरूलाल गर्ग — स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में
सामाजिक परिवर्तन,
चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण 1979

115· भोलानाथ — आधुनिक हिन्दी में सांस्कृतिक
पृष्ठभूमि
प्रगति प्रकाशन, आगरा, सं·1969

116· डॉ· मधोरानी — आलोचक पन्त
नटराज पब्लिशिंग हाउस, करनाल,
प्रथम संस्करण 1984

117· " " — वर्डसवर्थ और पन्त की काव्यचेतना
चिन्ता प्रकाशन, राजस्थान, प्र·सं·19

118· यशदेव — पन्त का काव्य और युग
किताब महल, इलाहाबाद, सं· 1951

119· डा· रघुवंश — समसामयिकता और आधुनिक हिन्दी कविता
केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, प्रथम संस्करण 1972

120· रमेशचन्द्र शाह — छायावाद की प्रासंगिकता
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1973

121· डा· रवीन्द्रसहायवर्मा — हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव
पद्मजा प्रकाशन, कानपुर
प्रथम संस्करण दीपावली 2011

122· डा· राजेन्द्र प्रसाद — तार सप्तक के कवियों की समाज-चेतना
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र·सं·

123· डा· रामकुमारसिंह — आधुनिक हिन्दी काव्यभाषा
ग्रन्थम, कानपुर, प्रकाशन 1965

124· सं· राजेन्द्र बहादुरसिंह — आधुनिक हिन्दी काव्य और कवि
नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण 1962

125· रामचन्द्र शुक्ल — हिन्दी साहित्य का इतिहास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी,
चौथा संस्करण, संवत् 2003

126· रामचन्द्र शुक्ल — चिन्तामणि
इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड,
प्रयाग, प्रथम संस्करण 1967

127· डॉ० रामजी पांडेय — सुमित्रानन्दन पन्त - व्यक्तित्व और कृतित्व
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली,
सं० 1982

128· रामधारीसिंह दिनकर — संस्कृति के चार अध्याय
उदयाचल प्रकाशन, पाटना,
तृतीय संस्करण 1958

129· रामधारीसिंह दिनकर — पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण
आत्माराम एंड संज, दिल्ली,
सन् 1957

130· डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी — आधुनिक काव्य कला और दर्शन
साहित्य भवन, इलाहाबाद,
संस्करण 1973

131· डॉ० रामरतन भटनागर — सुमित्रानंदन पन्त
यूनिवर्सल प्रेस, इलाहाबाद
सं० 1964

132.	डॉ॰ रामेश्वरलाल खंडेलवाल	जयशंकर प्रसाद - वस्तु और कला नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली । प्रथम संस्करण 1968
133.	विद्यानिवास मिश्र	रीतिविज्ञान राधाकृष्ण प्रकाशन, सं॰ 1973
134.	विनयकुमार शर्मा	युगकवि पन्त की काव्यसाधना हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली संस्करण 1962
135.	विश्वम्भर मानव	सुमित्रानंदन पन्त किताब महल, इलाहाबाद संस्करण 1962, 1951
136.	विश्वम्भर मानव	पन्त और लोकायतन किताब महल, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1970
137.	डॉ॰ विश्वंभरनाथ उपाध्याय	पन्तजी का नूतन काव्य और दर्शन साहित्यरत्न भंडार, आगरा सन् 1956
138.	शचीरानी गुर्टू	सुमित्रानंदन पन्त काव्यकला और जीवन दर्शन आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली द्वितीय संस्करण 1957

139· शम्भूनाथ चतुर्वेदी — नया हिन्दी काव्य और विवेचना
नन्द किशोर एण्ड सन्स, वाराणसी,
प्र·सं· 1964

140· शान्ति जोशी — सुमित्रानंदन पन्त जीवन और साहित्य
(प्रथम खण्ड)
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं· 1970

141· शान्ति जोशी — सुमित्रानंदन पन्त जीवन और साहित्य
(द्वितीय खण्ड)
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं· 197

142· शान्तिप्रिय द्विवेदी — ज्योतिविहग
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
संवत् 2008

143· शिवप्रसाद सिंह — उत्तर योगी श्री अरविन्द
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
द्वितीय संस्करण 1985

144· श्यामसुन्दरदास — साहित्यालोचन
इंडियन प्रेस, प्रयाग, परिवर्धित संस्करण।

145· डॉ· श्याम बहादुर वर्मा — श्री अरविंद विचार दर्शन
अरविंद प्रकाशन, दिल्ली।
प्रथम संस्करण 1974

146· डॉ· श्याम नंदन किशोर — आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधि
बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर,
प्रथम संस्करण 1967

147· डॉ· सत्यकाम वर्मा — महाकवि पन्त
भारतीय प्रकाशन, नई दिल्ली,
सं· 1964

148· डॉ· सरजू प्रसाद मिश्र — आधुनिक हिन्दी कविता के चार दशक
अजब पुस्तकालय, कोल्हापुर, सं· 1974

149· डॉ· सुधाकर शंकर कलवडे — आधुनिक हिन्दी कविता में-
राष्ट्रीय भावना
पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्र·सं· 1973

150· सुलेखा शर्मा — काव्य शिल्प के आयाम
आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1971

151· डॉ· सुधीन्द्र — हिन्दी कविता में युगान्तर
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली ।
दूसरा संस्करण 1957

152· डॉ· सुरेन्द्र माथुर — काव्य बिम्ब और छायावाद
ज्ञान भारती प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण 1969

153· डॉ· सुरेशचन्द्र गुप्त — आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धांत
हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, सं· 1963

154· सूर्यप्रसाद दीक्षित — पंतजी का गद्य
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं· 1969

अंग्रेज़ी किताबें

164. Sri. Auravindo : K.R. Srinivasa Iyangar, Arya Publishing House, Calcutta, 1945

165. Sri. Aurobindo on Himself and on the Mother - Sri. Aurobindo Ashram, Pondicherry, 1953

166. Biographia Literaria : S.T. Coleridge, First edition, 1907

167. Chambers Encyclopaedia : Vol. VII Ed: 1926

168. Encyclopedia Britiania : Vol XXVI P. 284

169. The Future poetry : Sri. Aurobindo Ashram, Pondicherry, 1953

170. Heritage of Symbolism : Bawara, G. M.

171. The Ideal of Karmayogin : Sri. Aurobindo Ashram, Pondicherry, 1950

172. Imaginism : S.K. Coffman, First edition

173. The Imagery of Keats and Shelly : Fegle

174. The Life Divine : A Brief study, VI Chandrasekharam, Sri. Aurobindo Library, Madras, 1946

175. The Life Divine, Part I & II : Arya Publishing House, Calcutta, 1944

176. The Mother : Sri. Aurobindo Ashram, Pondicherry, 1964

177. The Synthesis of Yoga : Sri. Aurobindo Ashram, Pondicherry, 1955

178. Savithri: A Legend and a Symbol : Sri. Aurobindo Ashram, Pondicherry, 1954

179. Poetic Image : C. D. Lewis. London, 1947

180. Principles of Literary Criticism : Richards I. A. Thirteenth EDN. 1952

181. The Psychodynamics of Abnormal Behaviour : Brown J. F. New York, 1940

पत्रिकायें

1 आलोचना - 1965 अंक 3,6
2· उपलब्धि - 1969 मार्च
3· कल्पना - 1965 मई
4· धर्मयुग - 1970 जनवरी
5· तुलसीदल (अरविंद विशेषांक) - अगस्त 1970
6· नया प्रतीक - जून 1978
7· नई धारा - मई 1964, अप्रैल-मई 1978
8· माध्यम - जून 1965
9· वातायन - अगस्त 1965
10· सरस्वती - मार्च, अगस्त 1965
11· समीक्षा - दिसम्बर 1973
12· दि इलस्ट्रेटड वीकिली ओफ इण्डिया - 1964 मई